Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidiscipilary Quarterly International E-Journal

अक्टूबर - दिसंबर-2025

https://shodhutkarsh.com/

Issue 12,

Year 03 October-December 2025

ISSN 2993-4648

अतिथि संपादक - प्रो. आर. जयचंद्रन, केरल

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly international E- Research Journal
वर्ष-03 अंक - 12 अक्टूबर - दिसंबर -2025

सलाहकार मण्डल (Advisory Board)

Shri Jai Prakash Pandey
Director-Department of Education And Literacy, Ministery Of Education, Govt.Of India.
Prof. Prabha Shankar Shukla
Vice Chancellor North Eastern Hill University (NEHU) Shillong
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी पूर्व (OSD),महामहिम राष्ट्रपति 'भारत'
प्रो. दिनेश कुशवाह,रीवा (म.प्र.)
प्रो. राजेश कुमार गर्ग प्रयागराज (उ.प्र.)
प्रो. अनुराग मिश्रा द्वारका, नई दिल्ली
प्रो. के. एस. नेताम सीधी (म.प्र.)
डॉ.एम.जी. एच. जैदी पन्त नगर (उत्तराखण्ड)
डॉ.राजकुमार उपाध्याय 'मणि' बठिंडा (पंजाब)
डॉ. संगीता मसीह शहडोल (म.प्र.)
डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव मोतिहारी विहार
डॉ. अनिल कुमार दीक्षित,भोपाल (म.प्र.)
श्री संकर्षण मिश्रा ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड
प्रो.एम.यू.सिद्दीक़ी सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ. बी.पी. बडोला (हिमांचल प्रदेश)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर (महाराष्ट्र)
श्री प्रदीप कुमार- मूल्यांकक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- (झारखंड)
डॉ. निशा मुरलीधरन,वड़पलनी- चेन्नई
डॉ. अंजलि एस. एर्नाकुलम, (केरल)
श्री पांडुरंग एस. जाधव बेंगलुरु, (कर्नाटक)

संपादक मंडल
प्रधान संपादक -डॉ. एन. पी. प्रजापति सह संपादक - प्रो.यूरी बोत्वीकिन तारास शेव्चेंको कीव (युक्रेन), प्रो.सिराजुद्दीन नूर्मतोव (उज़्बेकिस्तान गणराज्य) प्रो. रीनू रानी मिश्रा (उत्तराखंड), डॉ. संतोष कुमार सोनकर अमरकंटक (म.प्र.)प्रो. मोहन लाल 'आर्य' निदेशक एवं डीन IFTM (U.P.) डॉ. बालेन्द्र सिंह यादव, उँचाहार–रायबरेली(उ.प्र.) डॉ.उमाकांत सिंह सिंगरौली (म.प्र.) कैप्टन डॉ.बाबासाहेब माने पुणे (महाराष्ट्र) प्रो। चंद्रकांत सिंह (धर्मशाला) डॉ. जगदीश कन्नौजे (इंदौर)

लेख भेजने के लिए :– Mail-ID-shodh utkasrsh@gmail.com नोट:- पत्रिका में प्रकाशित लेख / शोध आदि में विवाद की स्थिति में लेखक /शोधार्थी स्वयं जिम्मेदार होंगे. पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें:-
Website:–http:// www.shodhutkarsh.com
प्रकाशक :-
Radha publications
Mail id-radhapub@gmail.com **फोन** -087505 51515, 9350551515 **Website:**-https://radhapublications.com
पता :-4231, 1, Ansari Rd, Delhi Gate, Daryaganj, New Delhi, Delhi, 110002

दलित उत्कर्ष समिति द्वारा प्रकाशित

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E-Journal
वर्ष-03 अंक –12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025

Table of Content

S.N.	Title and Name of Autho(s)	Page No.
	संपादकीय -	5
1.	मातृभाषा एवं क्षेत्रीय बोलियों के संरक्षण की आवश्यकता एवं महत्व - **डॉ. निर्मल चक्रधर**	6-7
2.	लोककथाओं में निहित जीवन-मूल्य - **डॉ.अर्चना निगम**	8-9
3.	Chemical Impacts of Fly Ash Pollution from Thermal Power Plants on the Singrauli Region - **Vivek Verma**	9-11
4.	Child Rights: An In-depth Study on Violations of Human Rights of Children and New Approaches to Their Protection - **Dalganjan Singh**	12-16
5.	Climate Change and Human Life: An Empirical Study of the Malwa Plateau - **Dr. Rajendra Kochale**	17-18
6.	जलवायु परिवर्तन से रेशमकीट पालन पर प्रभाव - **डॉ. मदन सिंह वास्केल**	19-20
7.	Digital Media Literacy and Misinformation in Rural Uttarakhand: Insights from Empirical Data- **Dr.Srachna Sachdeva**	21-26
8.	रामायण में राम-शबरी प्रसङ्ग - तुलनात्मक समीक्षा- **डॉ. ममता गुप्ता**	27-31
9.	सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम(MSME)नीति में महिलाओं का स्थान(रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) - **डॉ.कमल राज सिंह उइके**	32-34
10.	विज्ञान और तकनीक में भारतीय पारंपरिक ज्ञान की भूमिका:समाजशास्त्रीय विश्लेषण-**मनजीत सिंह &डॉ. विश्व ज्योति**	34-37
11.	वैश्विक राजनीति में हिन्दी की भूमिका : सॉफ्ट पावर और सांस्कृतिक कूटनीति का विश्लेषण - **मौ० सुलेमान**	38-42
12.	हिन्दी उपन्यासों में वर्किंग वीमेंस का विवेचनात्मक अध्ययन - **आकांक्षा सिंह**	43-45
13.	दोहरी जिम्मेदारी का बोझ:भारतीय कामकाजी महिलाओं में कार्य-परिवार संघर्ष का विश्लेषण-**डॉ.अंजना सिंह**	45-46
14.	आलोचक के दृष्टि से गोदान का मूल्यांकन - **डॉ. निशा पटेल**	47-48
15.	विकसित भारत @ 2047 - **विनोद कुमार वर्मा &डॉ. के.एस. नेताम**	49-51
16.	नाट्यशास्त्र की अवधारणा एवं आधुनिक थिएटर कला- **डॉ. एकता गोस्वामी**	52-53
17.	'मृत्यु और हंसी':स्त्री स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष- **डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा**	54-56
18.	निराला के काव्य में सामाजिक दृष्टि - **डॉ. रचना लारिया**	56-58
19.	21वीं सदी के हिंदी यात्रा-वृतांत में अभिव्यक्त सांस्कृतिक परिवर्तन: वैश्वीकरण के युग की नई संवेदनाएँ- **रवि कुमार झा**	59-61
20.	'वापसी'' कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श'-**डॉ. श्रीमाया सी**	62-63
21.	गुलज़ार के गीत 'कल्लू-मामा' में मनोवैज्ञानिक चेतना- **अंकुर नाविक**	63-64
22.	हिन्दी की सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट : कारण, परिणाम और समाधान - **भुवनेश बैरागी**	65-67
23.	दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य का अनुशीलन-**संजीव कुमार वर्मा&डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय**	67-70
24.	पुरुषार्थ चतुष्टय का पारस्परिक समन्वय शांतिपर्व के विशेष संदर्भ में-**कैलाशचंद& डॉ. हरिओम**	71-74
25.	डिजिटल युग : हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर प्रभाव-**डॉ.राकेश कुशवाहा**	74-75
26.	हिन्दी सिनेमा में दलित पात्रों की छवि- **कमला रॉय &डॉ. सुषमा कुमारी**	76-77
27.	दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था का विश्लेषण - **दिनेश कुमार**	78-79
28.	मिथक और साहित्य - **सिन्धु ए.**	80-81
29.	मैला आँचल उपन्यास में संघर्ष चेतना एवं जीवन मूल्य - **डॉ. लक्ष्मण भोसले**	82-83
30.	ऋता शुक्ल के उपन्यासों में मानवीय संवेदना - **प्रियंका कुमारी& डा. रेणु सिन्हा**	84-85
31.	कबीर के साहित्य में संघर्ष- चेतना एवं जीवन-मूल्य- **डॉ. जितेंद्र गौतम**	86-88
32.	टुसू पर्व में जीवन दर्शन - **देवेन्द्र साह**	89-91
33.	पारिवारिक संबंधों के बदलते स्वरूप और मालती जोशी की कहानियाँ: एक मूल्यांकन- **डॉ. रेणु सिन्हा & अनीता कुमारी**	91-93
34.	मीरा के काव्य में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना का अध्ययन - **विकास सिंह**	94-95
35.	धूमिल की पटकथा: लोकतंत्र की विडंबना और जनचेतना का दस्तावेज - **डॉ. मुक्तारानी कंचकार**	96-97
36.	'भोलाराम का जीव' में निहित प्रशासनिक भ्रष्टाचार और सामाजिक विसंगति का आलोचनात्मक विश्लेषण- **चित्रार्धनी पटेल**	98
37.	सिरमौर जिला के गिरिपार क्षेत्र में प्रचलित प्रसिद्ध पारंपरिक त्योहार'बूढ़ी दिवाली' एक सांस्कृतिक अध्ययन - **डॉ. मलकीयत सिंह & सविता**	99-101

38.वेणु गोपाल की कविता को पढ़ते हुए - **नंदकिशोर प्रसाद** **102-103**
39.'नौकर की कमीज़' और 'दीवार में एक खिड़की रहती थी': विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ-**डॉ.के.भार्गवन** **104-106**
40.From Equality to Excellence: The Role of Women in Transforming Organizational Culture – A Study of Varanasi District.- **Prof (Dr.) Vandana Pandey.** **107-109**
41.सिनेमा, नाटक और जनसंस्कृती - **डॉ. सुधामणि. एस** **110-111**

****

शोध की सार्थकता और हिंदी की भूमिका..

आज के सूचना-तकनीकी युग में अनुसंधान (Research) केवल प्रयोगशालाओं या अकादमिक गलियारों तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह राष्ट्र की प्रगति का मुख्य स्तंभ बन चुका है। ऐसे में 'शोध की समसामयिकता' (Contemporaneity of Research) और उसमें हिंदी की सहभागिता पर चर्चा करना अनिवार्य है। लंबे समय तक यह धारणा रही कि गंभीर शोध केवल अंग्रेजी या विदेशी भाषाओं में ही संभव है। लेकिन 2025 के बदलते वैश्विक परिदृश्य और 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के प्रभावी क्रियान्वयन ने इस मिथक को तोड़ा है। आज जब हम आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस, डेटा साइंस और जलवायु परिवर्तन जैसे विषयों पर काम कर रहे हैं, तो इन शोधों का लाभ जन-सामान्य तक पहुँचाने के लिए मातृभाषा की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। शोध की सार्थकता तभी है जब वह समाज की जमीनी समस्याओं का समाधान करे। यदि एक कृषि वैज्ञानिक आधुनिक तकनीक पर शोध करता है, लेकिन उसका निष्कर्ष गाँव के किसान तक उसकी अपनी भाषा में नहीं पहुँचता, तो वह शोध केवल फाइलों की शोभा बनकर रह जाता है। हिंदी, जो भारत की विशाल जनसंख्या की संपर्क भाषा है, शोध और समाज के बीच एक सेतु का कार्य कर सकती है।

वर्तमान में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) और विभिन्न भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (IITs) ने भी तकनीकी शब्दावली के हिंदी अनुवाद और हिंदी में शोध-पत्रों के प्रकाशन को प्रोत्साहन देना शुरू किया है। डिजिटल माध्यमों ने इस दिशा में क्रांतिकारी बदलाव लाने का कार्य कर रहे हैं। अब गूगल स्कॉलर और शोधगंगा जैसे प्लेटफार्मों पर हिंदी में शोध सामग्री की उपलब्धता बढ़ रही है, जिससे शोधार्थियों के लिए भाषा की बाधा कम हुई है।हालाँकि, अभी भी कुछ चुनौतियाँ शेष हैं, इन चुनौतियों में एक -दो बाधक मुद्दे -स्तरीय शोध पत्रिकाओं (Research Journal) की कमी और मानक पारिभाषिक शब्दावली का अभाव हैं। अंततः हमें अनुवाद पर निर्भर रहने के बजाय 'मौलिक लेखन' को बढ़ावा देना होगा। शोधार्थियों को यह समझना होगा कि भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम है, ज्ञान की गुणवत्ता का पैमाना नहीं।हिन्दी में शोध केवल भाषा के प्रति प्रेम का विषय नहीं है, बल्कि यह ज्ञान के लोकतंत्रीकरण (Democratization of Knowledge) की आवश्यकता भी है। जब भारत का युवा अपनी भाषा में मौलिक चिंतन और नवाचार करेगा, तभी हम 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत 2047' के लक्ष्य को वास्तविक अर्थों में प्राप्त कर सकेंगे। समय की मांग है कि हम शोध की गंभीरता को हिंदी की सरलता के साथ जोड़कर एक नई बौद्धिक क्रांति का सूत्रपात करें।

समय का चक्र निरंतर घूमता रहता है और प्रत्येक अंक के साथ 'शोध उत्कर्ष' अपनी यात्रा में एक नया पड़ाव तय करता है। इस अंक (अक्टूबर-दिसंबर) में हमने बहुविषयक शोधों का एक समृद्ध संग्रह प्रस्तुत किया है, जिसमें हिंदी साहित्य, भाषा-संरक्षण, सामाजिक न्याय, पर्यावरण, विज्ञान-तकनीक, महिला सशक्तिकरण, डिजिटल युग की चुनौतियाँ तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय मूल्यों की चर्चा प्रमुखता से उभरकर आई है। यह अंक मात्र शोध-पत्रों का संकलन नहीं, अपितु समकालीन समाज की बहुआयामी चिंताओं का दर्पण है।इस अंक में कई शोध-आलेख एवं एक विशेष लेख सम्मिलित हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं। इनमें डॉ. निर्मल चक्रधर द्वारा मातृभाषा एवं क्षेत्रीय बोलियों के संरक्षण की आवश्यकता पर गहन चिंतन, डॉ. अर्चना निगम द्वारा लोककथाओं में निहित जीवन-मूल्यों का विश्लेषण, विवेक वर्मा द्वारा सिंगरौली क्षेत्र में थर्मल पावर प्लांट्स से फ्लाई ऐश प्रदूषण के रासायनिक प्रभावों का अध्ययन, डॉ. राजेंद्र कोचले द्वारा मालवा पठार पर जलवायु परिवर्तन के मानव जीवन पर प्रभाव की empiric जांच, तथा डॉ. मदन सिंह वास्केल द्वारा रेशमकीट पालन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव जैसे पर्यावरणीय एवं कृषि-संबंधी महत्वपूर्ण शोध शामिल हैं।

साहित्यिक पक्ष को मजबूती प्रदान करते हुए डॉ. ममता गुप्ता द्वारा रामायण के राम-शबरी प्रसंग की तुलनात्मक समीक्षा, डॉ. निशा पटेल द्वारा 'गोदान' का आलोचनात्मक मूल्यांकन, डॉ. रचना लारिया द्वारा निराला के काव्य में सामाजिक दृष्टि, तथा आकांक्षा सिंह द्वारा हिंदी उपन्यासों में वर्किंग वीमेन का विवेचनात्मक अध्ययन जैसे आलेख साहित्य की गहराई को रेखांकित करते हैं।

समाजशास्त्र, राजनीति एवं संस्कृति के क्षेत्र में मौ. सुलेमान द्वारा वैश्विक राजनीति में हिंदी की भूमिका (सॉफ्ट पावर एवं सांस्कृतिक कूटनीति का विश्लेषण), मनजीत सिंह एवं डॉ. विश्वज्योति द्वारा विज्ञान-तकनीक में भारतीय पारंपरिक ज्ञान की भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, डॉ. कमल राज सिंह उइके द्वारा रीवा जिले के संदर्भ में MSME नीति में महिलाओं का स्थान, तथा रवि कुमार झा द्वारा 21वीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांत में वैश्वीकरण के युग की नई संवेदनाएँ जैसे विषय अत्यंत प्रासंगिक हैं।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल मीडिया साक्षरता एवं ग्रामीण उत्तराखंड में मिसइन्फॉर्मेशन (डॉ. स्रचना सचदेवा), हिंदी की सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट के कारण-परिणाम-समाधान (भुवनेश बैरागी), दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का अनुशीलन, तथा 'विकसित भारत @ 2047' (विनोद कुमार वर्मा) जैसे लेख राष्ट्र -निर्माण की दिशा में प्रेरक हैं।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इस अंक में स्त्री-स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, वृद्ध-विमर्श, मनोवैज्ञानिक चेतना (गुलज़ार के गीत 'कल्लू-मामा' में), तथा नाट्यशास्त्र की अवधारणा एवं आधुनिक थिएटर कला (डॉ. एकता गोस्वामी) जैसे विषयों पर भी गहन दृष्टिपात किया गया है।

' शोध उत्कर्ष' का उद्देश्य सदा से रहा है—गुणवत्तापूर्ण, मौलिक एवं समाज-उन्मुख शोध को मंच प्रदान करना। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ डिजिटल युग की चुनौतियाँ, जलवायु संकट, सांस्कृतिक क्षरण एवं सामाजिक असमानताएँ तेजी से बढ़ रही हैं, ऐसे शोधों की आवश्यकता और भी अधिक हो गई है जो न केवल समस्या की पहचान करें, अपितु समाधान की दिशा भी सुझाएँ। हम आशा करते हैं कि यह अंक शोधार्थियों, शिक्षकों, छात्रों एवं सामान्य पाठकों के लिए प्रेरणास्रोत बनेगा। आपके सुझाव, आलोचना एवं नवीन शोध-प्रस्तुतियाँ सदैव आमंत्रित हैं। संपादकीय मंडल की ओर से सभी योगदानकर्ताओं, पाठकों एवं शुभचिंतकों को हार्दिक धन्यवाद एवं शुभकामनाएँ।

****

-डॉ. आर. जयचन्द्रन
वरिष्ठ प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
केरल विश्वविद्यालय,
तिरुवनंतपुरम, केरल।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

मातृ भाषा एवं क्षेत्रीय बोलियों के संरक्षण की आवश्यकता एवं महत्व

डॉ. निर्मल चक्रधर
सहायक प्राध्यापक- हिन्दी
माता जीजाबाई शासकीय (स्वशासी) स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इंदौर

संस्कृत ग्रंथ में कहा गया है-

"अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

अर्थात- लक्ष्मण ! यद्यपि यह लंका सोने की बनी है, फिर भी इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है। (क्योंकि) जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान हैं।"[1]

इस सुंदर पद के निहतार्थ में यदि हम विचार करें तो जननी और जन्मभूमि से संबंधित मातृ भाषा का महत्व सहज ही समझा जा सकता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भी जननी और मातृभूमि का महत्व अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण को समझाते हैं। ऐसे में यदि हम सभी मातृ भाषा और मातृ बोली की आवश्यकता व महत्व को न समझ पाएँ, तो यह अज्ञानता ही माना जायेगा।

" 'भारत दुर्दशा' जैसे निबंध लिखकर इस देश को जगाने वाले महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मातृभाषा का महत्व कुछ इस प्रकार से बताया है-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल ॥
अंग्रेजी पढिके जदपि, सब गुन होत प्रबीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन ॥
विविध कला, शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु, निज भाषा माँहि प्रचार ॥"[2]

मातृभाषा (Mother Tongue) एवं बोली (Dialect) का महत्व मनुष्यों के बौद्धिक विकास, सांस्कृतिक विरासत और भावना के तल पर आपसी जुड़ाव से संबद्ध है। मातृ बोली और भाषा का प्रयोग हमें अपनी आदिम जड़ों, पारिवारिक, सामाजिक संस्कारों और प्राचीन विरासतों से जोड़कर रखती है। यह हमें युक्तियुक्त सोचने-समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। साथ ही अपनी बहुआयामी संस्कृति व समृद्ध परंपराओं को अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करने संबंधी प्रभावी माध्यम के रूप में कारगर भूमिका का निर्वहन करती है। यह किसी भी राष्ट्र और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए नितांत आवश्यक है। मातृभाषा और बोली के अधिकाधिक इस्तेमाल से व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व विकास होता है एवं उसकी आत्म-चेतना प्रबल होती है।

मातृभाषा एवं बोलियों के संरक्षण की आवश्यकता-

हमारी पहचान और संस्कृति का परिचायक- यह हमारी पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी अस्मिता का बोध कराती है एवं क्षेत्रीय वैशिष्ट्य का परिचायक होती है। यह हमें अपनी प्रचीन सभ्यता, परम्परागत रीति-रिवाजों और समृद्ध इतिहास से जोड़ती है, जिससे हमारी बहुआयामी सांस्कृतिक धरोहर सदैव सुरक्षित रहती है। ये बोली,भाषाएँ पुरातन ज्ञान, प्राचीन रीति-रिवाजों एवं समृद्ध ऐतिहासिक परंपराओं का खजाना होती हैं, जिन्हें संरक्षित एवं संवर्धित करने के लिए समुचित प्रयास आवश्यक है। अपनी भाषा बोलने से व्यक्ति अपनी जड़ों और विरासत से भावनात्मक रूप से जुड़ता है, जिससे सांस्कृतिक जागरूकता बढ़ती है।

संज्ञानात्मक जानकारी व बौद्धिक अभिक्षमता का परिचायक- एक बच्चा अपने परिवार एवं आसपास के परिवेश से जो बोली, भाषा सर्वप्रथम सीखता है, उसी भाषायी ज्ञान को वह आदर्श रूप में ग्रहण करके संरक्षित रखता है। यह उसकी भावी सोच का मार्ग प्रशस्त करती है और विशिष्ट कौशल का संवर्धन करती है।साथ हो द्विभाषी होने की स्थिति में व्यक्ति की संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं वैचारिक क्षमताएँ बढ़ती हैं। मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने से बच्चों के लिए सीखने का सुदृढ आधार प्रदान करता है, जिससे उनका मानसिक और बौद्धिक विकास बेहतर होता है।

भावनात्मक जुड़ाव- मातृभाषा एवं बोलियों के माध्यम से हम अपनी भावनाओं, विचारों और पीड़ाओं को सहजता से अभिव्यक्त कर सकते हैं, जिससे व्यक्ति अपने परिवार, मित्रों एवं समाज से गहराई से जुड़ पाता है। यह निजी भावनाओं, मनोविकारों यथा; प्रेम, दया, करुणा, सद्भावना इत्यादि को अभिव्यक्त करने और समझने में मदद करती है, जिससे भावानात्मक साझेदारी को बढ़ावा मिलता है।

आपसी समन्वय, संतुलन एवं संचार व्यवस्था में बढ़ोत्तरी- विविध क्षेत्रीय भाषाएँ लोगों को विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों से प्रभावी ढंग से जुड़ने में मदद करती हैं, जिससे सामाजिक समरसता एवं सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा मिलता है। विभिन्न लोक कलाओं, लोक गीतों एवं लोक नृत्यों के द्वारा राष्ट्र की समुन्नत समावेशी सांस्कृतिक अभिक्षमता में श्रीवृद्धि होती है। सांस्कृतिक समन्वय, क्षेत्रीय संतुलन एवं सुचारू संचार व्यवस्था के लिए भाषा महत्वपूर्ण आयाम होती है। मोबाइल पर कॉल करने से हमें उस क्षेत्र की भाषा में ही वाक् संदेश प्राप्त होने लगता है कि संबंधित व्यक्ति बातचीत के लिए उपलब्ध नहीं है। कृपया थोड़ी देर बाद प्रयास करें। यह समुदायों के बीच आपसी बंधन को मजबूत करती है और अधिक समावेशी समाज का निर्माण करती है।

शिक्षा और शासन व्यवस्था में सहायक- महात्मा गांधी ने 20 अक्टूबर, 1917 को गुजरात के भड़ौच में आयोजित शिक्षा सम्मेलन में कहा था - "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत हमें चुकानी पड़ती है, वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते हैं। इससे हमारे स्नातक अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। इससे हम नयी योजनाएं नहीं बना सकते हैं और यदि बनाते हैं, तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते हैं।"[3]

मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करना बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए नितांत आवश्यक है। "मातृभाषा में सीखने के अनेक लाभ हैं जिन्हें नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। सर्वप्रथम, जब विषय आपकी मातृभाषा में प्रस्तुत किए जाते हैं तो उन्हें समझना और आत्मसात करना अत्यंत सरल होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आपको भाषा की शब्दावली और संरचना की अच्छी समझ होती है, जिससे आप पढ़ाए जा रहे विषय पर ध्यान केंद्रित कर पाते हैं, न कि शब्दों या वाक्यांशों का मन ही मन अनुवाद करने में समय बर्बाद करते हैं। इसके अतिरिक्त मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग करने से आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और बेहतर स्मृति को बढ़ावा मिलता है। यह छात्रों को खुलकर अपनी बात कहने, प्रश्न पूछने और गलतियों के भय के बिना चर्चाओं में भाग लेने में सक्षम बनाता है। इससे कक्षा में उनकी भागीदारी बढ़ती है और शैक्षणिक प्रदर्शन में

सुधार होता है।"4 लोकतंत्र में सहज रूप से आम नागरिकों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए शासन तंत्र एवं विधायिका में मातृभाषा का प्रयोग आवश्यक है, जिससे विधि और शासन तक सबकी सहज सुलभता संभव हो सके। शिक्षा का माध्यम विद्यार्थी की मातृभाषा में होने से विद्यार्थियों को न केवल पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है अपितु इससे शिक्षक-विद्यार्थी संबंध भी प्रगाढ़ होते हैं। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 350A भी शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा के उपयोग को निर्धारित करता है। नई शिक्षा नीति-2020 में मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता को विशेष महत्व दिया गया है । मातृभाषा की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता के संदर्भ में 'नई शिक्षा नीति-2020 के निर्धारक समिति की गंभीरता का आकलन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि कुल 24 अध्यायों में विभाजित इस नीति के महत्वपूर्ण दो अध्याय मातृभाषा, शिक्षण माध्यम की भाषा एवं अनुवाद से संबंधित है। इसके साथ ही भारत की लुप्तप्राय भाषाओं को सहेजने की सार्थक गंभीर चिंता भी पहली बार राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विचारकों में दृष्टिगोचर हुई। इस नीति के अध्याय-4 एवं अध्याय-22 में ही शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृ भाषाओं की अनिवार्यता, विविध भाषाओं का संरक्षण, संवर्द्धन तथा अनुवाद कार्य के लिए समन्वित नीति निर्धारण के उपबंध समाहित किए गए । अध्याय-4 में मातृभाषा एवं/अथवा स्थानीय भाषा को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम और माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए यथासंभव क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का समुचित माध्यम बनाया जाना विनिर्धारित किया गया है। अध्याय-22 में सभी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त उन भाषाओं से संबंधित कला और संस्कृति के संवर्धन करने की बात कही गई है । वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बहुभाषिकता को वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण बताया गया है। इस नीति के अध्याय-22 में स्पष्ट है कि हमारी समृद्ध प्राचीन संस्कृति के सतत संरक्षण, समन्वित संवर्धन और समुचित प्रसार के लिए हमें उस संस्कृति से सुसंबद्ध भाषाओं की खोई हुई गरिमा को पुनः प्रतिस्थापित करना होगा । इसके लिए सार्थक रूप से पहली बार इस नई शिक्षा नीति में लुप्त हो चुकी और लुप्त प्राय भाषाओं पर गंभीर चिंता व्यक्त की गयी है। इसमें इस तथ्य को उल्लेखित किया गया है कि देश ने विगत 50 वर्षों में 220 भाषाओं को खो दिया है। युनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को लुप्त प्राय घोषित किया है। इनके अतिरिक्त आज भी अनेक विभिन्न बोली, भाषाएँ लगभग विलुप्ति के कगार पर हैं। यदि शिक्षा प्रणाली बहुभाषी होगी और भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाएगा, तो काफी हद तक इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। किसी भाषा के विलुप्त होने से पूरे समाज को अपूरणीय क्षति उठानी पड़ती है । हजारों वर्षों में सहेजी गयी भाषायी विरासत और शाब्दिक धरोहर नष्ट हो जाती है। उदाहरण के रूप में लें तो आदिवासी समाज की भाषाएँ आज सर्वाधिक हाशिए पर हैं और इन भाषाओं में अभिव्यक्त प्रकृति विषयक शब्द एवं अन्य विविध ज्ञान के भंडार का यदि संरक्षण नहीं होगा तो भाषा विलुप्त होने के साथ ही उससे जुड़ा ज्ञान भी स्वतः लुप्त हो जाएगा । इस तरह अंततः आदिवासी संस्कृति का समूचा अस्तित्त्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

इसी अध्याय में भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में समन्वित भाषाओं के समक्ष आसन्न संकट की बात भी उठायी गयी है । ये भाषाएँ भी अस्तित्व बनाये रखने संबंधी संकटों का सामना कर रही हैं। हमारी समस्त भाषाओं को कठिन चुनौतीपूर्ण स्थितियों से बचाने के लिए और उन्हें जीवंत और समयानुकूल बनाए रखने के लिए उच्च स्तरीय सार्थक प्रयासों एवं सतत व्यापक प्रचार-प्रसार का प्रवाह बनाए रखने की सिफारिश भी इस नीति में की गयी है। समसामयिक स्थितियों एवं परम्परागत अवधारणाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता बनाए रखने के लिए इन सभी भाषाओं के शब्दकोश और शब्द भंडार को लगातार अद्यतन करने एवं निरंतर प्रासंगिकता प्रदान करने की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है। ऐसा ही कार्य दुनिया के प्रायः अधिकांश देशों द्वारा अपनी भाषाओं की अस्मिता बनाए रखने के लिए किया जाता है। भारतीय भाषाओं के संदर्भ में कहें तो इस दिशा में अत्यंत मंथर गति से काम हुआ है । इसीलिए नई संकल्पनाओं,अवधारणाओं एवं प्रयोजनीयताओं को भारतीय भाषाओं में व्यक्त करने में समस्याएँ होती रही हैं।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के जन समुदायों की मातृ भाषाओं के संरक्षण से संबंधित भाषाओं और उनसे जुड़ी सरस संस्कृतियों को सहज ही बचाया जा सकता है। जागरूक राष्ट्र के लिए समाज के बहुभाषिक स्वरूप को बनाए रखना नितांत आवश्यक है। इसलिए नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में मातृभाषा में शिक्षण कार्य को प्रमुखता दी गई है। नयी शिक्षा नीति को लेकर आयोजित किये गए एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने इस नई शिक्षा नीति के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा था कि 'ये नए भारत की, नई उम्मीदों की, नई आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम है। पूरे भारत को नयी शिक्षा नीति से बहुत सारी अपेक्षाएँ हैं। समाज, राज्य और राष्ट्र का आधार- विविध बोलियाँ और भाषाएँ अनेकता में एकता की राष्ट्रीय भावना का निदर्शन कराती है। भारत जैसे बहुभाषी, बहु आयामी, विविध संस्कृति एवं विभिन्न आचार-व्यवहार वाले देश के लिए अपनी तमाम बोलियों एवं भाषाओं की गरिमा को बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है ।

वस्तुतः मातृभाषा सिर्फ़ एक भाषा नहीं है बल्कि हमारे विचार, हमारी भावनाएँ, हमारी अस्मिता और वैयक्तिक गरिमा का सहज परिचायक है। इसे अंगीकार करना, सतत संरक्षित और संवर्धित करना व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के संतुलित और समग्र विकास के लिए अनिवार्य है ।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. वाल्मीकि रामायण, Wikipedia https://hi.wikipedia.org जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी
2. निशा पाण्डेय ,अध्यापिका ,Aurum The Global School, https:// aurumschool.com, मातृभाषा (हिंदी) का महत्त्व
3. दिलीप कुमार सिंह, प्रबंधक (राजभाषा),भारत कोकिंग कोल लिमिटेड, धनबाद, Kurukh Times, https://kurukhtimes.com, नयी शिक्षा नीति और मातृभाषाएं
4. Language Unlimited, https://www.languagesunlimited.com मातृभाषा की शक्ति: भाषा सीखने और समझने पर इसका प्रभाव। - लैंग्वेज अनलिमिटेड

लोककथाओं में निहित जीवन-मूल्य

डॉ.अर्चना निगम
हिन्दी विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

सारांश (Abstract):- लोक साहित्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक स्मृति , सामूहिक चेतना एवं ज्ञान परंपरा का संवाहक होता है।लोककथाएँ लोक साहित्य का महत्त्वपूर्ण भाग हैं, जो बेहद सरल-सहज एवं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्रदान करती हैं।भारतीय लोककथाएँ भारतीय समाज के सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की अमूल्य धरोहर हैं। इनमें जनजीवन की सहजता, नैतिकता, सत्य, करुणा, परोपकार, श्रम, नारी सम्मान, परिवार भावना और धर्मनिष्ठा जैसे जीवन मूल्यों का सजीव चित्रण मिलता है। लोककथाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि जीवन जीने की कला सिखाने वाली शिक्षाप्रद कहानियाँ हैं। इस शोधपत्र के माध्यम से लोककथाओं में निहित जीवन मूल्यों के विश्लेषण को समझा जा सकेगा।

बीज शब्द:--लोकसाहित्य,लोककथाएँ,जीवन मूल्य,ज्ञान परंपरा

परिचय:-भारत की लोक परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। लोककथाएँ लोकजीवन की आत्मा कही जाती हैं। ये पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से चलती आईं और समाज के नैतिक ढाँचे को मजबूत बनाती रहीं। लोक कथाएँ विविध रूपों में विश्व मानस में व्याप्त हैं, किंतु उन्हें समझना और उनसे तारतम्य बैठाने के लिए उनके पीछे व्याप्त मनोविज्ञान को समझना अति आवश्यक है। व्यक्ति के क्रियाकलापों जैसे सद- असद,पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि को समझना और समझाने का अत्यंत सहज एवं महत्वपूर्ण साधन लोक कथाएँ हैं ।लोककथाएँ न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि ये समाज को शिक्षित करने का एक माध्यम होने के साथ-मानव जीवन मूल्यों की संवाहक भी हैं। इनमें निहित जीवन मूल्य समाज को मानवीयता, सहयोग और सत्य की राह पर चलने की प्रेरणा देते हैं। लोक कथाएं अनुभव एवं विवेक के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को महत्व देती हैं।

शोध समीक्षा:- लोककथाओं पर पूर्व में किए गए शोध कार्यों पर नजर डालने पर हम पाते हैं कि लोक साहित्य के प्रमुख अध्येताओं हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामकुमार वर्मा, कुमुद शर्मा, देवेंद्र सत्यार्थी, विजय दान देथा जैसे विद्वानों ने अपने शोध एवं लेखन में लोक कथाओं की जनजीवन से निकटता एवं इनमें छिपे मानवतावादी संदेशों पर विशेष बल दिया है ।उनका मानना है कि लोक कथाएँ व्यक्ति के भीतर सदैव सत्य के पक्ष में खड़े होने की प्रेरणा जगाती हैं। देवेंद्र सत्यार्थी ने लोक परंपरा को 'जन की आत्मा' कहा है।उनकी कृतियों में लोक कथाओं में निहित जीवन आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक कथाओं की संरचना,उनके कथन, शैली और चरित्र विन्यास पर प्रकाश डालते हुए इनमें निहित जीवन मूल्य जैसे सत्य,परिश्रम करुणा ,सम्मान सह-अस्तित्व , कर्तव्य भावना आदि के महत्व को दर्शाया है। आपका मानना था कि लोक कथा का नायक कोई असाधारण शक्तियों वाला पात्र नहीं बल्कि साधारण मनुष्य होता है और इसी साधारणता में उसकीअसाधारणता की सीख छिपी होती है। रामकुमार वर्मा ने अपनी कृतियों में लोक कथाओं के सामाजिक पहलू पर बल दिया है ।वे बताते हैं कि लोक कथाएं व्यक्ति को अपने समुदाय से जोड़ती हैं और जीवन को सहकारी दृष्टि प्रदान करती हैं। विजयदान देथा ने 14खंडों में राजस्थानी भाषा में 'बातां री फुलवाड़ी' नाम से लिखी अपनी लोक कथाओं के माध्यम से लोक कथाओं के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है ।

कुमुद शर्मा एवं शैलजा वाजपेयी ने भारतीय लोक कथाओं में नारी पात्रों की भूमिका का अध्ययन करते हुए पाया कि लोक कथाएँ महिलाओं को केवल परिवार की केंद्रीय धुरी के रूप में ही नहीं बल्कि संघर्षशील, धैर्यवान और मूल्य निष्ठ व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि लोक कथा में निहित जीवन मूल्य लैंगिक आधार पर भेदभाव नहीं करते बल्कि क्षमता और परस्पर सहयोग का संदेश देते हैं।

स्वरूप और उद्देश्य:-लोककथाएँ किसी विशेष व्यक्ति की रचना नहीं होतीं, वे सामूहिक चेतना की उपज हैं। इनका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ आत्मनियंत्रण, आत्म निरीक्षण ,नैतिक शिक्षाओं का प्रसार करना भी होता है। इनमें नायक,नायिका,पशु-पक्षी,राजा-रानी, विदूषक, भूत-प्रेत आदि पात्रों के माध्यम से जीवन के मौलिक दृष्टांत दिये जाते हैं।प्रसिद्ध लोक कथाओं जैसे पंचतंत्र ,जातक कथाएं,बातों की बगिया आदि में विभिन्न प्रकार के जीवन मूल्यों को दर्शाया गया है।जैसे-
सत्य और असत्य के संघर्ष की कहानियाँ।
कर्म और परिणाम का संबंध बताने वाली कथाएँ।
सामाजिक समरसता और नैतिकता का प्रचार करने वाली लोककथाएँ।

लोककथाओं में निहित प्रमुख जीवन मूल्य:-

सत्य और धर्म का पालन:- अधिकांश लोककथाओं में सत्य की विजय और असत्य के पतन का संदेश मिलता है। उदाहरणस्वरूप "सत्यवादी हरिश्चंद्र" की कथा जनमानस को सत्यनिष्ठा का संदेश देती है।

-परोपकार और सहानुभूति:- लोककथाएँ सिखाती हैं कि मानव जीवन का उद्देश्य दूसरों की सहायता करना है। जैसे पंचतंत्र की कहानियों में मित्रता, सहयोग और परोपकार का भाव प्रमुख है।

न्याय और समानता:- कई कथाएँ इस बात पर जोर देती हैं कि न्याय ही समाज का आधार है। राजा-प्रजा, गरीब-अमीर सभी के साथ समान व्यवहार जीवन का आदर्श मूल्य माना गया है।

परिश्रम और आत्मनिर्भरता:- लोककथाओं में परिश्रम का महत्त्व बार -बार प्रतिपादित होता है। "कौवा और घड़ा",कछुआ और खरगोश जैसी कथाएँ संदेश देती हैं कि बुद्धि और श्रम से हर कठिनाई को पार किया जा सकता है।

नारी सम्मान: भारतीय लोककथाएँ नारी के त्याग,ममता और सहनशीलता को उच्च स्थान देती हैं। 'सावित्री-सत्यवान' की कथा नारी शक्ति और निष्ठा का प्रतीक है।

परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यबोध:-लोककथाएँ व्यक्ति को परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदार बनाती हैं तथा सबका भला सोचने की शिक्षा देती हैं।इसी प्रकार'श्रवण कुमार की कथा' पुत्र के माता-पिता के लिए प्रेम एवं कर्तव्य की शिक्षा देती हैं।
-लोक कथाएं पर्यावरण चेतना सामूहिक उत्तरदायित्व और प्रकृति के प्रति कर्तव्य का भी संदेश देती है।

लोककथाओं की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता:-आज के भौतिकतावादी युग में जब मानव मूल्य क्षीण होते जा रहे हैं, लोककथाएँ हमें हमारे मूल संस्कारों और जीवन आदर्शों की याद दिलाती हैं। वे बच्चों और युवाओं में नैतिक चेतना जागृत करने एवं उन्हें संवेदनशील बनाए रखने का प्रभावी माध्यम हैं।

निष्कर्ष:- लोक कथाओं के रूप में उपलब्ध साहित्य यह प्रमाणित करता है कि यह कथाएँ केवल शब्दों का जाल नहीं बल्कि समाज के अनुभव, संचित ज्ञान, नैतिकता एवं जीवन दर्शन की जीवंत विरासत है।

उनके भीतर निहित मूल्य व्यक्ति को केवल 'क्या करना चाहिए' का उपदेश नहीं देता बल्कि सरल-सहज रोशक ढंग एवं भावनात्मक घटनाओं के माध्यम से उसे सही दिशा में अग्रसर भी करता है। लोककथाएँ भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं। इनमें निहित जीवन मूल्य आज भी उतने ही सार्थक हैं जितने प्राचीन काल में थे। ये कथाएँ समाज में नैतिकता, सदाचार और मानवीयता का संचार करती हैं। अतः इनका संरक्षण और प्रसार हमारी सांस्कृतिक एवं नैतिक जिम्मेदारी है।

****

संदर्भ सूची:

1. पाण्डेय, रामनरेश - भारतीय लोकसाहित्य का स्वरूप और संदेश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. मिश्र, श्यामसुंदर - लोककथाओं में निहित जीवन दर्शन, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
3. शर्मा, विष्णु -पंचतंत्र।
4. देवेंद्र सत्यार्थी - लोककथा और लोकसंस्कृति
5.देथा विजयदान -बातों की बगिया,भाग 9,राजस्था

Chemical Impacts of Fly Ash Pollution from Thermal Power Plants on the Singrauli Region

Vivek Verma
Assistant Professor - Chemistry
Prime Minister College of Excellence
Government Model Science College, Rewa (M.P.)

Abstract:-

The Singrauli region, known as India's 'Energy Capital,' has become a major hub of fly ash (FA) pollution generated from thermal power plants (TPPs). This research paper provides an in-depth analysis of the chemical impacts of FA emanating from TPPs, particularly the risks posed to soil, water, air, and human health through heavy metals such as arsenic (As: 10-100 mg/kg), mercury (Hg: 0.1-1 mg/kg), lead (Pb: 50-200 mg/kg), selenium (Se: 5-20 mg/kg), and cadmium (Cd: 1-10 mg/kg). In Singrauli, six major TPPs (such as NTPC Vindhyachal and Sasan UMPP) generate approximately 6 million tons of FA annually, which spreads into the environment through leaching processes from open ash ponds. Based on satellite data, field sampling, and laboratory analysis, the study found that ash concentration in the Rihand reservoir is 0.05-0.2 mg/L (WHO standard: 0.01 mg/L) and Hg at 21 ng/mL (normal: 5 ng/mL), which is 5-10 times higher in the rivers here. In soil, As levels of 15-50 mg/kg (standard: >20 mg/kg) and Pb of 100-300 mg/kg were detected, leading to a 25-35% reduction in fertility. Health risks such as respiratory diseases (50% affected), cancer, and neurological disorders (20% hyperpigmentation) have increased. The risk assessment model (Hazard Index: HI=2.8) indicates that long-term exposure could affect 70% of the region's population. Through this research, recommendations for mitigation measures such as FA recycling (current utilization: 30%), stricter monitoring, and policy reforms have been proposed. This study serves as a warning for sustainable development in coal-based regions like Singrauli, where industrial progress should not come at the cost of environmental damage and human life.

Keywords:- Fly ash, thermal power plants, Singrauli, heavy metal pollution, arsenic (10-100 mg/kg), mercury (0.1-1 mg/kg), leaching, environmental risks, health impacts, Rihand reservoir (As: 0.05-0.2 mg/L), soil pollution (Pb: 100-300 mg/kg).

Introduction:-

Coal-based thermal power plants play an indispensable role in meeting India's energy demands, but the fly ash generated as a by-product has emerged as a serious threat to the environment. The Singrauli region, located on the border of Uttar Pradesh and Madhya Pradesh,

hosts thermal power centers that contribute approximately 10% (7500 MW) of the country's total electricity production capacity. Here, six major TPPs, including NTPC Vindhyachal (4760 MW) and Sasan Ultra Mega Power Project (3960 MW), operate and generate over 6 million tons of fly ash annually. This FA, a fine residue from coal combustion, is rich in heavy metals and continuously contaminates soil, water sources, and air through leaching when dumped in open ponds.

Singrauli, which holds the title of 'Energy Capital,' has now turned into a curse for its residents. In 2020, a fly ash slurry breach from Sasan UMPP contaminated the Rihand reservoir, resulting in the spillage of 3.5 million tons of FA, the deaths of six people, and the displacement of hundreds of families. Chemically, toxic metals like arsenic (As) in FA become mobile through oxidation-reduction reactions, influenced by pH (20-50% dissolution in 4-6 range), Eh, and organic matter.

Objectives:-

(i) Analysis of the chemical composition of FA (e.g., Fe > Cr > Ni > Pb > Zn > Co > Cd sequence),
(ii) Mapping of pollution distribution in Singrauli,
(iii) Assessment of environmental and health risks (HI=2.8),
(iv) Mitigation strategies. Field samples (soil, water, vegetation) and secondary data (NGT reports, satellite imagery) were used for the study.

Through this research paper, we aim to make a significant contribution to the field of environmental science, emphasizing the need for balance between development and ecology. Pollution associated with coal mining and electricity generation in Singrauli has impacted the local ecosystem and raised concerns in the context of global climate change. Events between 2020-2025, such as continuous leaching in the Rihand reservoir (As: 0.05-0.2 L), have given rise to health crises, where mercury and arsenic levels are far exceeding WHO standards.

1. Fly Ash: Origin and Chemical Composition-

Fly ash is the fine particulate residue emitted from the boiler during coal combustion, constituting 70-80% of the total ash. The bituminous and sub-bituminous coal used in Singrauli has high ash content (30-40%), resulting in major components in FA such as silica (SiO_2: 50-60%), alumina (Al_2O_3: 20-30%), and ferric oxide (Fe_2O_3: 5-15%). From a toxic perspective, it is enriched with As (10-100 mg/kg), Hg (0.1-1 mg/kg), Pb (50-200 mg/kg), Se (5-20 mg/kg), and Cd (1-10 mg/kg), originating from the geochemical formation of coal. In the Singrauli region, the sequence of heavy metals in fly ash is Fe (highest) > Cr > Ni > Pb > Zn > Co > Cd (in ppm), which is double the global average. Chemically, FA is a mixture of glassy spherical particles, where heavy metals are bound as sulfates, carbonates, or oxides. Leaching tests (TCLP) indicate that 20-50% of As dissolves in acidic conditions (pH 4-6), dissolving into water sources to form trimethylcaptop or dimethylarsenic acid—both carcinogenic. In the context of Singrauli, the local coal has an As concentration of 50 ppm, making FA particularly hazardous. Recent studies have found that Hg levels in FA reached 0.5-2 mg/kg between 2020-2025, promoting atmospheric dispersion. Additionally, the total concentration of Cu, Zn, and Mn is higher than other metals, while 90% of Cd, Cr, and Pb remains bound in the F4-F5 fraction, limiting leaching but maintaining long-term risks.

2. Singrauli Region: Geographical and Industrial Profile-

Singrauli spans 5677 square km across Mirzapur and Sonbhadra districts in Uttar Pradesh and Singrauli district in Madhya Pradesh, where fertile Vindhyan plateau soil and the Rihand-Gohawaya rivers form the basis of agriculture. However, the establishment of TPPs since the 1970s has turned it into a pollution hotspot. With a capacity of 9000 MW, 6 TPPs here generate 6 million tons of FA—10% of India's total. Open ponds (such as Sasan's 1000-acre pond) are used for FA disposal, where slurry (80% water) is pumped, but breaches (like the 2020 Sasan incident, spilling 3.5 million tons) affect 1000 hectares of land.

Satellite data (ISRO) shows a 25% increase in FA coverage between 2015-2025, directly impacting the Rihand reservoir (capacity: 10.6 billion cubic meters)—the water source for 80% of the region's population. This profile not only highlights industrial development but also exposes ecological crises due to chemical imbalances. A 2023 report mentions that fluoride (high concentration) and mercury levels in the air of the Singrauli coal area are at 200-500 mg/L, linked to fugitive emissions. Additionally, siltation in the Rihand reservoir has reduced water levels, associated with FA slurry discharge.

3. Chemical Impacts of Fly Ash Pollution: On Soil and Water

3.1 Impacts on Soil:-

Leaching from FA increases heavy metal concentrations in soil. Samples from Singrauli showed As 15-50 mg/kg (standard: >20 mg/kg), Pb 100-300 mg/kg, Cd 1-10 mg/kg, Ni 50-200 mg/kg. This makes soil pH alkaline (8-9), reducing nutrient availability (N, P, K)—a 25-35% decline in fertility. Geostatistical analysis indicates a contamination index (Cd) above 3.5 within 5 km of FA ponds, signaling high risk. On agricultural land, it promotes crop uptake, such as bioaccumulation of As in rice at 0.5-2 mg/kg. A 2025 study found that seasonal variation in 14 heavy metals in soil (40% more leaching during rains) is increasing health risks. Additionally, fine particles (PM2.5) keep Cr and Ni concentrations in soil

90% bound in the F4-F5 fraction, but acidic rain causes spread up to 56 cm depth.

3.2 Impacts on Water:-

Post-2020 breach, Rihand reservoir levels reached As 0.05-0.2 mg/L (WHO: 0.01 mg/L), Hg 21 ng/mL, Pb 0.05 -0.1 mg/L, Cd 0.003-0.01 mg/L, which is lethal for fish and aquatic life. Leaching of Cd and Hg in groundwater is pH-dependent; 40% more dissolution with acidic rain. Pollution spread from Rihand to Son River affects a 50 km area, where sulfate and nitrate levels rose to 200-500 mg/L. This disrupts the water cycle, causing eutrophication and biodiversity loss. Data from 2020-2025 clearly shows a reduction in Rihand reservoir capacity (due to siltation), with elevated fluoride/mercury levels due to high pH (8-9). Moreover, water from RO plants shows concentrations of Al, Fe, Hg, Cd, and Ni exceeding permissible limits (e.g., Hg: 21 ng/mL)**4. Impacts on Air and Health**

4.1 Air Pollution:-

Fine particles of FA (PM2.5) disperse in the air, where As and Se are bound. In Singrauli, annual PM2.5 is 80-120 μg/m³ (standard: 40 μg/m³), reaching the lungs via inhalation. Wind patterns spread pollution 10-20 km away, increasing during monsoons. A 2023 report found high fluoride (200-500 mg/L) and mercury concentrations in the air, linked to fugitive emissions. Additionally, 90% of Cr, Ni, and Pb from MSW-based FA remains bound in the F4 fraction, but 20-50% leaching occurs with rain.

4.2 Health Risks:-

Chronic exposure to heavy metals causes cancer (lung, skin), neurotoxicity (Hg-induced IQ reduction), and cardiovascular diseases. Local surveys showed respiratory issues in 50% of residents and 20% hyperpigmentation from As. Children and women are more sensitive; a 2017 -2020 study found blood Hg at 21 ng/mL (normal: 5 ng/mL), As 0.05-0.2 mg/L. Risk models (HQ = exposure/safe dose) show HQ >1 for As and Pb, indicating long-term hazards. 50% of the population is affected by silicosis, fluorosis, and mercury toxicity, especially around Rihand.

5. Risk Assessment and Mitigation:-

The Hazard Quotient (HI) model yields a total HI of 2.8 in Singrauli, with As contributing 45% (Cd>3.5). Sensitivity analysis shows breach events increase HI by 50%. Mitigation: (i) Recycling in brick-making (current: 30% utilization, target: 100%), (ii) Lined ponds (TCLP compliance), (iii) Strict adherence to NGT guidelines. Policy-wise, the 100% FA utilization target post-2020 is weak in implementation. Recommendations include drone-based monitoring and Fly Ash Mission by 2025, controlling leaching based on pH/temperature.

Conclusion:-The chemical impacts of fly ash pollution in Singrauli are severe, such as high As/Pb concentrations in soil (15-300 mg/kg), Hg/As in water (0.05-0.2 mg/L), and HI=2.8 leading to health crises. Leaching of heavy metals (20-50% dissolution) is unbalancing the development model. However, recycling (utilizing Cu/Zn/Mn) and monitoring can enable improvements. The government should take immediate steps, such as fines on TPPs (for 3.5 million ton breach), RO plant upgrades, and community health programs. This study demands sustainable energy policy—where development does not come at the cost of the environment. Future research should focus on drone-based monitoring and Tessier extraction.

*****

References:-

1. Bhardwaj, A., et al. (2020). Analysis of air and soil quality around thermal power plants and coal mines of Singrauli region, India. ResearchGate. pp. 1-15.
2. Bharadwaj, S., et al. (2020). Mercury, arsenic, lead and cadmium in waters of the Singrauli coal mining and power plants industrial zone, Central East India. Environmental Science and Pollution Research, 27(20), 24868-24879. pp. 24868-24879.
3. Centre for Science and Environment (CSE). (2020). India's thermal power ash mismanagement. CSE Publications. pp. 1-45.
4. Dubey, C. S., et al. (2018). Sources of fluoride contamination in Singrauli with special reference to Rihand reservoir and its surrounding. Journal of the Geological Society of India, 91, 441-448. pp. 441-448.
5. Gupta, P., et al. (2024). Heavy metal pollution assessment of groundwater and associated human health risk in Singrauli, India. PubMed, 40731175. pp. 1-20.
6. Hazards Centre. (2023). Dark and toxic under the lamp: Industrial pollution and health damage in Singrauli. Hazards Centre Publications. pp. 1-50.
7. Mishra, V. K., et al. (2017). Heavy metal pollution and health hazards around Singrauli region due to coal power plants. International Journal of Chemical Studies, 5(2), 183-410. pp. 183-410.
8. Mongabay India. (2020). Fly ash slurry in Singrauli contaminates water reservoir after taking lives and homes. Mongabay. pp. 1-8.
9. Pandey, S. K., et al. (2011). Arsenic hazards in coal fly ash and its fate in Indian scenario. Resources, Conservation and Recycling, 55(9-10), 819-826. pp. 819-826.
10. Sharma, P., et al. (2007). Magnetic mapping of fly-ash pollution and heavy metals from soil samples around a point source in a dry tropical environment. ResearchGate. pp. 1-10.
11. Singh, R. S., et al. (2010). Assessment of contamination of soil due to heavy metals around coal fired thermal power plants at Singrauli region of India. Journal of Environmental Management, 91(9), 1931-1937. pp. 1931-1937.
12. Tripathi, R. D., et al. (2020). Ash dyke breach in Singrauli: A recurring affront to public health. Centre for Research on Energy and Clean Air. pp. 1 -15.
13. Vig, S., & Ravindra, K. (2024). Heavy metal pollution assessment of groundwater and associated human health risk in Singrauli, India. Environmental Geochemistry and Health, 46(1), 1-20. pp. 1-20.
14. WorstPolluted.org. (n.d.). Singrauli: Pollution from thermal power plants. Blacksmith Institute. pp. 1-5.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

Child Rights: An In-depth Study on Violations of Human Rights of Children and New Approaches to Their Protection

Dalganjan Singh
(M.A., LLB, ADR, CHR, PGDCJ, LLM.)
Address: village vishma, post-aseh, district kannauj, uttar pradesh, India 209729
Email id: dalganjansingh111@gmail.com

Abstract- Children's rights occupy a central place in international human rights law and public policy because childhood is both a vulnerable stage of life and a formative period that shapes future citizens and societies. Despite broad international consensus enshrined in instruments such as the United Nations Convention on the Rights of the Child (UNCRC), violations of children's rights persist across domains: health, education, protection from violence, exploitation and trafficking, family separation, and digital harms. This research paper synthesizes scholarship, treaties, major agency reports, and comparative practice to offer an integrated picture of the patterns, drivers, and consequences of rights violations affecting children globally. It also examines systemic barriers that hinder effective protection—poverty, discriminatory norms, weak institutions, conflict, migration, and market incentives that encourage child labour and trafficking. Building on a literature-based and normative methodology, the paper identifies emerging problems such as online sexual exploitation and the intersectional vulnerabilities of children from marginalized groups.

In response to ongoing violations, the study proposes new and complementary approaches for protection: legal modernization and enforcement (including alignment of domestic law with UNCRC standards), child-centered social protection schemes, community-based monitoring and prevention, integrated multisectoral services, restorative juvenile justice models, technology-enabled reporting and protection systems, and rights-based education that empowers children. Policy recommendations emphasize participatory design, data-driven targeting, capacity-building for frontline workers, stronger accountability mechanisms, and international cooperation. The paper concludes by highlighting the need for integrated, context-sensitive strategies that balance legal reforms with social, economic, and cultural interventions to secure children's rights in the 21st century.

Keywords- Child rights; Convention on the Rights of the Child; child protection; child labour; trafficking; juvenile justice; social protection; digital safety; restorative justice; policy recommendations.

1. Introduction-

The rights of children are recognized as universal and indivisible. The UNCRC (1989) marked a milestone by codifying civil, political, economic, social and cultural rights specific to persons under 18 and setting out state obligations for progressive realisation and immediate protection of certain rights. At the same time, the lived reality for millions of children remains precarious: avoidable illness and malnutrition, exclusion from school, child labour, trafficking, violence within families and institutions, armed conflict, and emerging harms in digital environments.

This study approaches child rights as both legal entitlements and social goods whose realization requires coordinated public action and societal change. The central proposition is twofold: first, that violations of children's rights continue due to a complex mix of structural, institutional and cultural causes; second, that addressing these violations demands innovations in law, policy, community engagement and technology that are grounded in the voice and agency of children themselves.

The paper takes an integrative lens, synthesizing legal norms and scholarly literature with programmatic practice and policy debates. It seeks to map persistent and emergent forms of violations, analyze root causes, evaluate the strengths and weaknesses of existing protection systems, and propose concrete, evidence-informed approaches for improvement. Given the global variation in contexts—from fragile states to high-income countries—the study emphasizes approaches that are adaptable, evidence-driven, and rights-respecting while stressing the need for context-specific tailoring.

The remainder of the paper is organized as follows: after outlining objectives and methodology, the study reviews conceptual and legal frameworks that inform rights-based child protection. It then presents a thematic analysis of violations, followed by a discussion of structural drivers and consequences. The core of the paper proposes new and complementary approaches for strengthening protection and concludes with policy recommendations and reflections on research limitations.

2. Objectives of the Study

Primary objectives:

1. To provide a comprehensive, evidence-informed synthesis of major categories of child rights violations globally and their drivers.
2. To critically assess existing legal, policy, and

programmatic protection mechanisms and identify gaps in implementation.
3. To propose innovative, practicable approaches—legal, social, technological, and programmatic—for improved protection of children's rights.
4. To offer policy recommendations for states, intergovernmental organizations, civil society, and communities to better prevent and respond to violations.
Secondary objectives:
1. To foreground the voices and agency of children in protection strategies.
2. To highlight intersectional vulnerabilities and the need for targeted measures for marginalized groups.
3. To identify research and data gaps and propose priority areas for future study.
3. Methodology
This study uses a literature-based and normative methodology drawing on international legal instruments (notably the UNCRC and related treaties), reports from international organizations (UN agencies, ILO, WHO, UNICEF), leading NGO publications, and peer-reviewed academic literature. The analysis synthesizes cross-disciplinary findings—legal studies, social policy, public health, economics, and child development—into an integrated framework.
Selection criteria for literature included relevance to core themes (health, education, protection), recentness where relevant (particularly for digital harms), and representativeness across global regions. Where empirical claims are made, findings are triangulated across multiple sources to reduce bias. The paper does not present primary field data but is informed by evaluations, meta-analyses, and program reports that document practical lessons.
Limitations of the method (discussed later) include reliance on published sources, which may underrepresent informal or undocumented practices, and the heterogeneity of evidence quality across regions. Nevertheless, the method allows for comparative insights and the development of policy-relevant recommendations.
4. Conceptual and Legal Framework
Rights-based approach
A rights-based approach treats children as rights-holders and states (as well as private actors) as duty-bearers. This approach emphasizes accountability, non-discrimination, participation, best interests of the child, and survival and development. The UNCRC embodies these core principles and provides the authoritative legal framework for child rights.
Key legal instruments and standards
United Nations Convention on the Rights of the Child (UNCRC), 1989 — establishes civil, political, economic, social and cultural rights for children and state obligations.
Optional Protocols to the UNCRC — addressing sale of children, child prostitution and pornography; involvement of children in armed conflict; and communications procedures in some jurisdictions.
International Labour Organization (ILO) Conventions — notably C138 (Minimum Age) and C182 (Worst Forms of Child Labour), defining obligations to eliminate exploitative work.
Other international human rights treaties (ICCPR, ICESCR) — which apply to children and inform standards for civil/political and socio-economic rights.
Regional instruments — such as the African Charter on the Rights and Welfare of the Child — provide region-specific obligations.
Core principles-For principles undergird child rights work: non-discrimination; the best interests of the child; the right to life, survival and development; and respect for the views of the child (participation). These principles guide assessment of violations and design of protective measures.
5. Patterns and Themes of Child Rights Violations
This section unpacks major categories of violations, showing their manifestations, drivers, and implications.
5.1 Right to Health and Nutrition-Despite progress in reducing child mortality, many children suffer from preventable diseases, malnutrition, and lack of access to essential health services. Determinants include poverty, maternal education, geographic isolation, and weak health systems. Malnutrition—stunting and wasting—has lifelong effects on cognitive and physical development. Inequities often reflect socioeconomic, ethnic, and gender disparities.
5.2 Right to Education-Access to quality education remains uneven. Barriers include poverty, conflict, child labour, discriminatory norms (e.g., against girls), and inadequate infrastructure. Even where enrolment rises, learning outcomes may be poor due to teacher shortages, low-quality pedagogy, and curricula that fail to be inclusive. Education is both a right and a protective factor against exploitation.
5.3 Violence, Corporal Punishment and Exploitation
Children are subject to violence at home, in schools, in institutions, and in the community. Corporal punishment remains legal and socially accepted in many jurisdictions. Violence includes physical, sexual and emotional abuse, and institutional violence (neglect, harsh disciplinary regimes). Early exposure to violence impairs development and perpetuates cycles of harm.
5.4 Child Labour and Economic Exploitation-Child labour persists in agriculture, informal economies, domestic work, and some supply chains. The worst forms—hazardous work, bonded labour, commercial sexu

al exploitation—are severe violations. Poverty and weak labor market regulation incentivize families to involve children in economic activities. Globalized supply chains can obscure child labour risks.

5.5 Trafficking and Sexual Exploitation

Trafficking of children for sexual exploitation, forced labour, and illegal adoption is a transnational crime. Factors include poverty, family breakdown, demand for cheap labour and sexual services, and migration pressures. Victim identification and cross-border cooperation remain challenging.

5.6 Juvenile Justice and Detention

Many children are detained in criminal and administrative settings without age-appropriate safeguards. Common issues include lack of access to legal counsel, pre-trial detention, incarceration with adults, and punitive rather than rehabilitative approaches. Alternatives to detention are often underdeveloped.

5.7 Children in Conflict and Displacement

Armed conflict exposes children to recruitment, sexual violence, family separation, and loss of services. Displaced and refugee children face compounded vulnerabilities: malnutrition, interrupted education, and increased risk of exploitation.

5.8 Digital Risks and New Media Harms

The digital environment has created new vulnerabilities: online child sexual abuse and exploitation, exposure to harmful content, cyberbullying, and privacy violations. The cross-border nature of online harms complicates legal and enforcement responses.

5.9 Intersectional Vulnerabilities (Gender, Caste, Disability, Ethnicity)

Discrimination creates layered vulnerabilities. Girls may face gender-based violence and limited schooling. Children with disabilities often face exclusion from education and services. Ethnic and caste minorities, indigenous children, and migrants can be disproportionately affected by poverty, discrimination, and invisibility in policy.

6. Drivers and Structural Causes

Violations of children's rights are rarely isolated; they arise from systemic drivers:

Poverty and economic marginalization: Poverty forces families to make trade-offs that compromise children's rights.

Social and cultural norms: Norms tolerating corporal punishment, early marriage, or gender discrimination perpetuate violations.

Weak governance and institutional capacity: Gaps in law enforcement, social services, and child protection systems reduce detection and response.

Conflict, violence and instability: Conflict erodes protective structures and creates new risks.

Globalization and market forces: Demand for cheap goods and labor can encourage child labour; transnational crime networks exploit children.

Inequitable public spending: Underinvestment in health, education and social protection undermines rights realization.

Technological change: New technologies outpace regulation and create avenues for exploitation.

Migration and displacement: Irregular migration increases vulnerability to trafficking and abuse.

Understanding these drivers is crucial for designing preventive measures that are systemic rather than solely reactive.

7. Consequences for Individuals and Society

Violations of children's rights produce immediate and long-term harms. Individually, they impair health, cognitive development, educational attainment, and psychosocial well-being. Collectively, societies face reduced human capital, intergenerational cycles of poverty, social instability, higher crime rates, and lost economic productivity. Investing in child protection yields strong returns—improved health, education, and productivity over the life-course.

8. Existing Protective Mechanisms and Gaps

Most states have legal frameworks, social services, and justice systems intended to protect children, and international cooperation mechanisms exist. However, common gaps include:

Incomplete or non-harmonized domestic legislation vis-à-vis international standards.

Weak enforcement and lack of trained frontline personnel (police, social workers, teachers).

Fragmented service delivery with poor coordination across sectors.

Limited participation of children in program design and evaluation.

Inadequate data systems to identify, monitor and evaluate child protection needs.

Underfunded social protection and prevention programs.

Cross-border crimes (trafficking, online exploitation) outpacing legal cooperation.

Addressing these gaps calls for both systemic reforms and targeted interventions.

9. New Approaches to Child Protection: Theory and Practice

This section outlines innovative or emerging approaches that complement established measures. The approaches are not mutually exclusive; effective protection requires integrated strategies.

9.1 Legal and Policy Reforms

Harmonization with international norms: States should review and amend domestic laws to align with UNCRC principles—minimum age laws, prohibition of corporal

punishment, protections against trafficking, and child-sensitive justice procedures.

Child-sensitive legislation: Laws should embed child-specific procedures (e.g., specialized courts, diversion programs) and ensure access to legal aid.

Rights-based budgeting and accountability: Fiscal frameworks should track allocations to child services, and independent oversight bodies (ombudspersons or national human rights institutions) should monitor compliance.

Cross-border cooperation: Strengthened mutual legal assistance for trafficking and online crimes, including automatic information-sharing channels and specialized investigative units.

9.2 Social Protection and Economic Interventions

Universal and targeted cash transfers: Cash transfers—conditional or unconditional—can reduce child labour, improve nutrition and school attendance. Evidence suggests well-designed transfers reduce vulnerabilities when combined with complementary services.

Child-sensitive social insurance: Maternity/paternity protections, unemployment support, and health coverage protect families from shocks that might otherwise harm children.

Livelihood and market interventions: Programs that raise household incomes (microcredit, skills training) can reduce reliance on child labour.

9.3 Community-Based Models and Social Norms Change

Community child protection committees: Engaging local actors (elders, teachers, religious leaders) in monitoring and prevention leverages local knowledge and legitimacy.

Norms-change programming: Social and behavior change communication (SBCC) campaigns combined with community dialogues can shift attitudes on corporal punishment, early marriage, and gender roles. These programs are more effective when they engage both men and women and include adolescents.

Community-based care for children: Prioritizing family-based care and community foster systems over institutionalization helps preserve children's development and reduces abuse risks.

9.4 Child Participation and Empowerment

Meaningful participation: Incorporating children's perspectives in program design and monitoring strengthens relevance and accountability. Age-appropriate mechanisms (child councils, school committees) facilitate voice.

Rights education: Integrating child rights into curricula and extracurricular programs empowers children to recognize and claim rights, and to support peers.

9.5 Technology and Data for Protection

Digital reporting platforms: Hotlines, apps, and SMS-based systems can facilitate reporting of abuse, particularly where stigma inhibits in-person reporting. Design must prioritize privacy, safeguard against misuse, and ensure referral pathways.

Data systems and predictive analytics: Integrated child protection information systems (CPIS) can improve case management and help identify hotspots. Predictive analytics should be used cautiously and ethically, with safeguards against bias and privacy violations.

Online safety measures: Strengthening age verification, content moderation, takedown procedures, and cross-border law enforcement cooperation combats online sexual exploitation. Public–private partnerships with tech firms are critical.

9.6 Restorative and Rights-Based Juvenile Justice

Diversion and restorative justice: Alternatives to detention—mediation, community service, restorative conferencing—reduce recidivism and better serve rehabilitation.

Child-friendly procedures: Ensuring legal representation, confidentiality, and conditions appropriate to development reduces secondary harm.

Reintegration services: Education, psychological support, and vocational training help reintegrate children post-contact with justice systems.

9.7 Multi-sectoral Integration and Early Intervention

Integrated service hubs: One-stop centers providing health, legal, psychosocial and social protection services simplify access for children and families.

Early childhood interventions: Investments in early childhood health, nutrition and stimulation yield outsized returns in reducing future vulnerabilities.

Schools as protective environments: Safe school policies, teacher training in child protection, and school-based counseling can detect and prevent harm.

10. Policy Recommendations

Based on synthesis of evidence and practice, the paper offers prioritized recommendations:

1. Legal alignment and enforcement

Ratify and fully implement relevant international instruments where pending.

Prohibit corporal punishment in all settings; set and enforce minimum ages for work and marriage.

Strengthen child-sensitive procedures in justice systems and expand legal aid.

2. Invest in social protection and services

Scale up child-sensitive cash transfers, linked to complementary services (health, education).

Increase public spending on early childhood, education, and primary health care with transparent tracking of allocations.

3. Build capacity of frontline workers

Train police, social workers, teachers, and health workers in child protection, detection, and referral.

Institute clear referral pathways and inter-agency protocols.

4. Community engagement and norms change
Fund and scale community-based protection models and SBCC programs aimed at shifting norms that tolerate child abuse and discrimination.
5. Strengthen data systems and monitoring
Develop integrated CPIS with standardized indicators, respecting privacy. Use data to target interventions and measure outcomes.
6. Leverage technology responsibly
Partner with tech industry to prevent online exploitation; support accessible reporting channels and rapid takedown procedures.
Use digital tools to expand access to services while ensuring data protection and equity (avoid leaving marginalized children behind).
7. Promote child participation
Institutionalize mechanisms for child participation at local and national levels and in service design.
8. Address intersectionality
Design targeted programs for girls, children with disabilities, ethnic minorities, street children and other marginalized groups.
9. Enhance cross-border cooperation
Strengthen mutual legal assistance and joint investigations for trafficking and online crimes; harmonize data-sharing protocols.
10. Research and evaluation
Fund rigorous evaluations of child protection interventions, especially digital and restorative justice approaches, to build evidence on what works.
11. Limitations of the Study
This paper synthesizes literature and policy documents rather than primary field data. While it draws on evaluations and program reports, the heterogeneity of contexts and evidence quality limits generalizability. Emerging digital harms require further empirical study, as do long-term impacts of restorative juvenile justice in diverse legal cultures. Finally, implementation feasibility varies widely across countries; recommendations must be adapted to local capacities and constraints.
12. Conclusion
Protecting children's rights requires more than legal proclamation; it needs coherent systems, societal commitment, and innovation that centers children's dignity and agency. Persistent violations—rooted in poverty, discrimination, conflict, and weak institutions—call for multi-dimensional responses that combine law, social protection, community action, education, and technology. Promising approaches include child-sensitive laws, robust social protection, community-based models, rights education, carefully designed digital tools for reporting and prevention, restorative justice alternatives, and integrated service delivery. Crucially, children themselves must be partners in shaping solutions. Well-designed investments in child protection are investments in social stability and human capital.As the global community faces new challenges, including rapid technological change and climate-related displacement, adapting child protection systems and pursuing evidence-informed innovations become even more urgent. The moral and practical imperative is clear: safeguarding children's rights is foundational to building equitable, resilient and prosperous societies.

****

13. Bibliography

(Selected references for further reading — formatted in APA style. This bibliography draws on foundational instruments and well-known literature in the field.)
1. Committee on the Rights of the Child. (1989). Convention on the Rights of the Child. United Nations.
2. Committee on the Rights of the Child. (General Comments, various years). United Nations.
3. United Nations General Assembly. (2000). Optional Protocols to the Convention on the Rights of the Child (on the sale of children, child prostitution and child pornography; on the involvement of children in armed conflict). United Nations.
4. International Labour Organization. (1973, 1999). Minimum Age Convention (No. 138); Worst Forms of Child Labour Convention (No. 182). ILO.
5. UNICEF. (various years). Reports on child protection, children in emergencies, and state of the world's children. United Nations Children's Fund.
6. World Health Organization. (various years). Reports on child and adolescent health, immunization, and nutrition. WHO.
7. Freeman, M. (1997). The Future of Children's Rights. The Hague: Martinus Nijhoff.
8. Lundy, L. (2007). "'Voice' is not enough: conceptualising Article 12 of the United Nations Convention on the Rights of the Child." British Educational Research Journal, 33(6), 927–942.
9. Save the Children. (various reports). Child protection and child rights programming. Save the Children International.
10. Pinheiro, P. S. (2006). Report of the independent expert for the United Nations study on violence against children. United Nations.
11. Lansdown, G. (2001). Population Council: Promoting the rights of children and their participation. (Selected papers).
12. Office of the High Commissioner for Human Rights (OHCHR). (various). Guidance and tools on children's rights and human rights treaty bodies. United Nations.
13. UN Secretary-General's Global Study on Children Deprived of Liberty. (2019). Global Study report. United Nations.
14. Betancourt, T. S., & Khan, K. (2008). "The mental health of children affected by armed conflict: Protective processes and pathways to resilience." International Review of Psychiatry, 20(3), 317–328.
15. Bhabha, J. (ed.) (2014). Child Migration and Human Rights in a Global Age. Oxford University Press.
16. World Bank. (various years). Reports on social protection and poverty alleviation in relation to child welfare. World Bank Publications.
17. Garcia-Moreno, C., et al. (2015). "Violence against women and girls." The Lancet, Series on Violence Against Women and Girls.
18. UNICEF & WHO. (2019). Antenatal care, breastfeeding and early childhood development guidance and policy briefs.
19. Alston, P. (2013). Report of the Special Rapporteur on extreme poverty and human rights. United Nations.
20. Hagan, J., et al. (2011). Criminal Justice and Human Security: Toward Restorative Juvenile Justice. (Selected articles and edited volumes).
21. Livingstone, S., & Haddon, L. (2009). Children and the Internet: Great Expectations, Challenging Realities. Policy Press.
22. Machel, G. (1996). Impact of Armed Conflict on Children: A critical overview. UNICEF.
23. UNICEF Innocenti Research Centre. (2014). Hidden in Plain Sight: A statistical analysis of violence against children. UNICEF.
24. Council of Europe / European Commission. (various). Strategies and guidance on child protection online and offline.
25. OECD. (various). Policy papers on social investment and child well-being. Organisation for Economic Co-operation and Development.

Climate Change and Human Life: An Empirical Study of the Malwa Plateau

Dr. Rajendra Kochle
Assistant Professor, Zoology
BLP Government Post Graduate College, Mhow, District - Indore (Madhya Pradesh)

Abstract In the current era, climate change is having profound impacts on various dimensions of human life—health, livelihood, and agricultural productivity—particularly in developing regions. To examine the impact of temperature rise, irregular rainfall, and irregular seasonal events on human life in the Malwa Plateau region of Central India, a survey of 500 families in 10 rural communities across Indore, Mhow, and Dhar districts was conducted between 2022 and 2024. Health record analysis revealed a 35% reduction in income among agriculture-based families, while heat-related diseases increased by 22%. Droughts and floods caused a 15-20% decrease in crop yield, leading to increased malnutrition and migration. Statistical analysis demonstrated the significant role of land use changes and socio-economic inequalities. These findings indicate that climate change is having widespread effects on economic conditions, and underscore the urgent need for health awareness programs and region-specific adaptation strategies.

Keywords: Climate change, human health, agricultural productivity, livelihood insecurity, Malwa Plateau, adaptation strategies, ecosystem

Introduction The Malwa Plateau, a major agriculture-dominated region of Madhya Pradesh, is renowned for its black soil and river-based ecosystems. This region forms the livelihood base for millions of farming families. Global average temperature has increased by 1.1°C over the past decade, and it is estimated that South Asia may experience an additional 1.5°C rise by 2030 (IPCC, 2021). In Madhya Pradesh, this temperature increase is manifesting as irregular monsoons, prolonged droughts, and intense heat waves, which are affecting agriculture, health, and social structures.

The impacts of climate change are multidimensional—from agricultural losses leading to livelihood crises, heat stress causing health risks, and changing seasonal events resulting in increased displacement. Previous research has documented an 8-12% reduction in crop productivity in India (Pathak et al., 2018) and increasing livelihood insecurity among tribal communities (Kumar et al., 2024). However, limited empirical research is available on local contexts like the Malwa Plateau. This study fills this gap, focusing on rural communities in Indore district and surrounding areas, where 70% of the population is directly dependent on agriculture.

This research paper presents original survey data and provides recommendations for sustainable development by measuring the human impacts of climate stresses. By integrating regional data with statistical analysis, this study evaluates the interaction between climate and social factors.

Study Area The study was centered on 10 rural sites on the Malwa Plateau (22°–23°N, 75°–76°E), including agricultural villages in Indore, Mhow, and Dhar districts. Site selection was conducted according to the guidelines of the Madhya Pradesh State Action Plan on Climate Change (MP SAPCC, 2023). The average elevation is 500–550 meters, and long-term annual rainfall is 800–1000 mm, with a 16-18% reduction recorded during the 2022-2024 period (IMD, 2024).

Data Collection Research data was collected between 2022-2024. The survey was based on 500 families (total 2,500 individuals), conducted through structured questionnaires and focus group discussions. Agricultural data recorded changes in crop yield (wheat, soybean) and household income. Health data was obtained from district hospital records, including cases of heat stroke, dengue, and malnutrition. Climate variables (temperature, rainfall) were taken from India Meteorological Department (IMD) stations and local rain gauges. Livelihood insecurity was assessed using the Livelihood Vulnerability Index (LVI) framework (Hahn et al., 2009), which measures sensitivity, exposure, and adaptive capacity.

Statistical Analysis Results were analyzed using linear regression models in R software (version 4.3.1), with climate variables as independent variables and health and income as outcome variables. The statistical significance level was set at $\alpha = 0.05$. Ethical approval was obtained from the local Institutional Review Board (IRB), and informed consent was obtained from all participants.

Results

Changes in Agricultural Productivity Survey data revealed an average 17% reduction in agricultural productivity, statistically linked to the 2023 drought event (linear regression: $\beta = -0.45$, $p < 0.001$). Rain-dependent crops, particularly soybean, recorded a 22% loss, while wheat showed a 12% reduction. Total household income declined by 35%, forcing 28% of families to take loans.

Health Impacts Climate-related health impacts were notable. Heat-related diseases (heat stroke and dehydration) increased by 22%, while vector-borne diseases (dengue) increased by 15% ($\chi^2 = 32.1$, $p < 0.01$). Malnutrition

rates among children increased by 12%, correlated with income loss.

Livelihood Insecurity The Livelihood Vulnerability Index (LVI) score was 0.68, indicating high insecurity. The highest LVI score (0.75) was recorded in Dhar district, reflecting greater vulnerability of marginal farmers and tribal communities.

Disaster Impact In the 2023 flood event, approximately 1.2 lakh hectares (approximately 42% of the total study area) of crops were damaged, forcing 15% of families to migrate to other areas.

Results Statistical modeling confirmed that temperature increase (>2°C) and rainfall reduction explain 58% of the total variation observed in human health and economic loss ($R^2 = 0.58$, $p < 0.001$).

Discussion

Interpretation of Results The obtained results are consistent with global and national trends, but Malwa's intense agricultural dependence makes this crisis more severe. Research in various regions of India shows that the structural vulnerability of rain-based agriculture amplifies the impacts of climate change (Aggarwal et al., 2018). Health impacts, such as heat stress, intensify existing social inequalities, particularly among women, elderly, and Dalit communities.

Trophic Impact of Livelihood Crisis Income reduction has widespread effects at multiple levels: from children's education to family nutrition, which disrupts long-term development prospects. Local factors, such as lack of irrigation facilities, declining groundwater levels, and deteriorating soil quality, amplify climate impacts (CDKN, 2014). In Madhya Pradesh particularly, dependence on agriculture is highest in tribal areas (Kumar et al., 2024), making these communities extremely vulnerable.

Limitations and Future Directions This study is based on three years of data, which may not fully reflect long-term climate trends. Sample size and geographical limitations may constrain generalization of findings. Future research should integrate 10+ years of data, genetic health indices, and climate scenario modeling.

Suggested Policy Recommendations

1. **Agricultural Adaptation:** Investment in drip irrigation systems, climate-tolerant seed varieties (Chakraborty et al., 2022), and mixed farming practices to strengthen the Madhya Pradesh State Action Plan on Climate Change (2023).
2. **Health Infrastructure:** Establishing community health centers in rural areas (Joshi et al., 2020) and awareness programs on climate-related health risks.
3. **Financial Allocation:** 20% increase in budget for climate adaptation.

Community-Based Management: Empowering communities for local resource management, especially in tribal areas.

Ultimately, protection of human life is inextricably linked to environmental conservation, which will lay the foundation for sustainable development.

Conclusion This study demonstrates that climate change is severely affecting human life in the Malwa region in various ways, with declining agricultural productivity, increasing health problems, and growing livelihood insecurity being prominent. Without immediate intervention, these impacts will cause social and economic instability, weakening the region's important agricultural economy.

****

References:

1.Aggarwal, P. K., Jain, S., Sharma, P., & Singh, A. K. (2018). Climate change impact assessment on agriculture sector in India. *Scientific Reports*, 8(1), Article 13061. https://doi.org/10.1038/s41598-018-31443-2

2.Chakraborty, T., Saini, R., & Deshpande, S. (2022). Agricultural vulnerability to climate change in Madhya Pradesh: A spatial analysis. *Environmental Research and Public Health*, 19(15), 9476. https://doi.org/10.3390/ijerph19159476

3.Climate and Development Knowledge Network. (2014). *Building climate resilience of rural poor in South Asia*. Retrieved from https://cdkn.org/

4.Hahn, M. B., Riederer, A. M., & Foster, S. O. (2009). The Livelihood Vulnerability Index: A pragmatic approach to assessing risks from climate variability and change—A case study in Mozambique. *Global Environmental Change*, 19(1), 74–88. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2008.11.002

5.India Meteorological Department. (2024). *Annual climate bulletin: Madhya Pradesh 2024*. Ministry of Earth Sciences, Government of India. Retrieved from https://mausam.imd.gov.in/

6.Intergovernmental Panel on Climate Change. (2021). *Climate change 2021: The physical science basis. Contribution of Working Group I to the sixth assessment report of the Intergovernmental Panel on Climate Change*. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/9781009157896

7.Joshi, N., Singh, D., & Kumar, M. (2020). Heat stress and occupational health in agriculture: A case study from Madhya Pradesh. *Journal of Agricultural Safety and Health*, 26(3), 165–182.

8.Kumar, A., Mohanasundari, T., & Joshi, M. (2024). Livelihood vulnerability assessment of tribal communities to climate change in Central India. *Environmental Research Letters*, 19(8), 084008. https://doi.org/10.1088/1748-9326/ad5b2c

9.Madhya Pradesh State Action Plan on Climate Change. (2023). *State action plan on climate change (Version 2.0)*. Department of Climate Change, Government of Madhya Pradesh. Retrieved from https://www.nitiforstates.gov.in/

10.Mishra, V., Smoliak, B. V., Lettenmaier, D. P., & Wallace, J. M. (2012). A prominent pattern of year-to-year variability in Indian Summer Monsoon Rainfall related to a monsoon-desert mechanism. *Journal of Climate*, 25 (14), 4675–4687. https://doi.org/10.1175/JCLI-D-11-00717.1

11.Pathak, H., Aggarwal, P. K., & Singh, S. D. (2018). Climate change impacts, adaptation and mitigation in agriculture: An Indian perspective. *Indian Journal of Agricultural Sciences*, 88(5), 665–681.

12.Patra, J. K., Gouda, S., Sahoo, S., Dey, S., Das, G., Muduli, S., Sahu, R., & Rath, S. K. (2021). Climate change impacts on tribal agriculture and livelihood in Central India: A review. *Journal of Environmental Management*, 281, 111815. https://doi.org/10.1016/j.jenvman.2020.111815

13.Rao, K. P. C., Ndegwa, W. G., Kizito, K., & Oyoo, A. (2015). Climate variability and change: Farmer perceptions and understanding of intra-seasonal variability in rainfall and associated risk in semi-arid Kenya. *Environmental Management*, 55(3), 620–632. https://doi.org/10.1007/s00267-014-0415-7

14.Sharma, A., Mujumdar, P. P., & Narulkar, V. V. (2017). Streamflow modeling in a highly seasonal monsoon region: Development of probabilistic models. *Journal of Hydrology*, 547, 279–291. https://doi.org/10.1016/j.jhydrol.2017.01.045

15.Singh, B., Singh, V., & Singh, R. (2023). Climate change impacts on rainfed agriculture in Malwa region of Madhya Pradesh. *Agricultural Systems*, 189, 103–118. https://doi.org/10.1016/j.agsy.2023.103456

16.Singh, R. B., & Mal, S. (2014). *Climate change and food security in South Asia*. Springer. https://doi.org/10.1007/978-94-007-6226-1

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

जलवायु परिवर्तन से रेशमकीट पालन पर प्रभाव

डॉ. मदन सिंह वास्केल
सहायक प्राध्यापक, जंतु विज्ञान
बीएलपी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू जिला- इंदौर, (मध्य प्रदेश)

सारांश- रेशमकीट पालन, जो रेशम उद्योग का आधार है, जलवायु परिवर्तन के कारण गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है, विशेष रूप से बढ़ते तापमान, अनियमित वर्षा और बदलते मौसम की घटनाएँ जो शहतूत की खेती और कीटों की वृद्धि को प्रभावित करती हैं। यह अध्ययन मध्य भारत के मालवा क्षेत्र में इन प्रभावों की जांच करता है, जहाँ रेशमकीट पालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है। 2022 से 2024 के बीच इंदौर और महू के 10 फार्मों पर किए गए सर्वेक्षण और प्रयोगिक परीक्षणों से रेशमकीट (Bombyx mori) की कोकून गुणवत्ता में 21% कमी और शहतूत पत्तियों की पोषकता में 16% गिरावट दर्ज की गई। प्रमुख निष्कर्ष बताते हैं कि ऊष्मा तनाव और सूखा ने कीटों की मृत्यु दर को 18% बढ़ा दिया है, जबकि वोल्टिनिज्म पैटर्न में बदलाव ने प्रजनन चक्र को असंतुलित कर दिया। सामान्यीकृत मिश्रित मॉडलों से विश्लेषण ने जलवायु चरों और कृषि प्रथाओं की अंतर्क्रिया को स्पष्ट किया। ये परिणाम जलवायु-अनुकूल शहतूत किस्मों और नियंत्रित रीयरिंग तकनीकों की आवश्यकता पर जोर देते हैं। यह शोध भारतीय संदर्भ में सतत रेशम उत्पादन के लिए नई दिशा प्रदान करता है।

बीज शब्द:- जलवायु परिवर्तन, रेशमकीट पालन, शहतूत खेती, कोकून गुणवत्ता, मालवा क्षेत्र, अनुकूलन उपाय

परिचय- मालवा पठार, काली उपजाऊ मिट्टी और नर्मदा की सहायक नदियों से समृद्ध यह विस्तृत मैदान, सदियों से रेशमकीट पालन का केंद्र रहा है। क्षेत्र के कई फार्मों पर किए गए अनुसंधान से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव स्पष्ट हो गए हैं, जैसे शहतूत के पत्तों का समय से पहले सूखना और रेशमकीटों का असामान्य व्यवहार। वैश्विक तापमान 1850 के स्तर से 1.1°C बढ़ चुका है, और 2030 तक दक्षिण एशिया में 1.5°C की अतिरिक्त वृद्धि का पूर्वानुमान है (IPCC, 2023)। मालवा में यह अनियमित मानसून, लंबे ग्रीष्मकाल और अचानक बाढ़ के रूप में दिखाई देता है, जो शहतूत (Morus alba) की वृद्धि और रेशमकीट (Bombyx mori) के जीवन चक्र को बाधित करता है। भारत में रेशमकीट पालन 80 लाख लोगों को रोजगार देता है और 8,500 करोड़ रुपये का कारोबार है (CSBI, 2024), लेकिन जलवायु परिवर्तन से उपज में 15-20% की हानि हो रही है। पूर्व अध्ययनों ने तापमान वृद्धि को कोकून वजन में कमी से जोड़ा है (Neelaboina et al., 2018), किंतु मालवा जैसे स्थानीय क्षेत्रों पर शोध अपर्याप्त है। यह अध्ययन इस कमी को दूर करता है, जो इंदौर-म्होव पट्टी पर केंद्रित है, जहाँ क्षेत्रीय उत्पादन का एक महत्वपूर्ण अंश होता है।

यह शोध पत्र मूल डेटा प्रस्तुत करता है, जिसका लक्ष्य जलवायु प्रभावों को मापना और अनुकूलन रणनीतियाँ सुझाना है। क्षेत्रीय अवलोकनों को सांख्यिकीय विश्लेषण से जोड़कर, हम पारिस्थितिक और आर्थिक प्रभावों की गहराई समझने का प्रयास करते हैं।

भारतीय संदर्भ में रेशमकीट पालन-भारत में रेशमकीट पालन कोई सामान्य कृषि गतिविधि नहीं है। यह सांस्कृतिक विरासत और आर्थिक आजीविका दोनों को प्रतिबिंबित करता है। वर्तमान में, भारत में रेशमकीट पालन लगभग 80 लाख लोगों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार देता है, और रेशम उद्योग 8,500 करोड़ रुपये का वार्षिक कारोबार उत्पन्न करता है (CSBI, 2024)। इस महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र को एक गंभीर खतरे का सामना है: जलवायु परिवर्तन से रेशम उत्पादन में 15-20% की हानि हो रही है।

पूर्व के अध्ययनों ने तापमान वृद्धि को कोकून (रेशम कोषों) के वजन में सीधे कमी से जोड़ा है (Neelaboina et al., 2018)। हालांकि, मालवा जैसे स्थानीय क्षेत्रों पर विस्तृत शोध अभी तक अपर्याप्त है। यह अध्ययन इसी महत्वपूर्ण अंतर को दूर करने का प्रयास करता है, जो इंदौर-महू पट्टी पर केंद्रित है, जहाँ क्षेत्रीय उत्पादन का एक महत्वपूर्ण अंश केंद्रीभूत है।

अनुसंधान उद्देश्य-यह शोध पत्र तीन प्राथमिक उद्देश्यों के साथ मूल और क्षेत्रीय डेटा प्रस्तुत करता है:

1. जलवायु प्रभाव को मात्रात्मक रूप से मापना, वैज्ञानिक उपकरणों और सांख्यिकीय विश्लेषण का उपयोग करके जलवायु परिवर्तन के विशिष्ट प्रभाव को परिमाणित करना।
2. अनुकूलन रणनीतियाँ सुझाना स्थानीय किसानों के लिए व्यावहारिक और लागत-प्रभावी समाधान प्रदान करना।
3. पारिस्थितिक और आर्थिक समझ विकसित करना, क्षेत्रीय अवलोकनों को सांख्यिकीय विश्लेषण से जोड़कर, पारिस्थितिक और आर्थिक प्रभावों की गहराई से समझ विकसित करना।

अध्ययन क्षेत्र- अध्ययन मालवा पठार के 10 रेशमकीट पालन केंद्रों (22.4°–23.1°N, 75.6°–76.1°E) पर आधारित था, जिसमें इंदौर के ग्रामीण फार्म और महू के शहतूत उद्यान शामिल थे। स्थलों का चयन केंद्रीय रेशम अनुसंधान बोर्ड (CSRB) के रिकॉर्ड से किया गया। औसत ऊँचाई 510 मीटर, वार्षिक वर्षा 820–1020 मिमी, लेकिन 2022-2024 में 14% कमी (IMD, 2024)।

डेटा संग्रह-सर्वेक्षण 2022-2024 में 120 रीयरिंग चक्रों पर हुए, जिसमें कोकून वजन, रोग दर और शहतूत पत्ती के पोषक तत्व (नाइट्रोजन, प्रोटीन) मापे गए। रेशमकीट (cv. PM × CSR2) को नियंत्रित (25-28°C, 75% आर्द्रता) और क्षेत्रीय स्थितियों में पाले गए। जलवायु डेटा IMD से और स्थानीय सेंसर (HOBO U23) से लिया गया। शहतूत वृद्धि Landsat 9 NDVI से मानी गई (USGS, 2024)। प्रतिरक्षा मूल्यांकन हेमोसाइट गणना और SOD एंजाइम विश्लेषण से किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण- डेटा R (v. 4.4.1; glmmTMB) में GLMMs से विश्लेषित, फार्म यादृच्छिक प्रभाव के रूप में। $\alpha = 0.05$। नैतिकता CSRB दिशानिर्देशों के अनुरूप।

परिणाम- सर्वेक्षणों से कोकून उपज में 21% कमी मिली, जो 2024 ग्रीष्मकाल (औसत 39°C) से जुड़ी (GLMM: $\beta = -0.28$, $p < 0.001$), लार्वा चरण में 26% प्रभाव। शहतूत में नाइट्रोजन 16% घटा ($r = 0.69$, $p < 0.01$)।

रोग: पेपीनोसिस में 18% वृद्धि, मृत्यु दर 14% से 32% तक ($\chi^2 = 25.7$, $p < 0.001$)। SOD गतिविधि तापमान >35°C पर 19% कम। NDVI से शहतूत कवर 9% घटा ($r = -0.61$, $p = 0.005$)।

मॉडल: जलवायु चर 52% विविधता समझाते हैं (AIC = 1389), वर्षा कमी प्रमुख (OR = 1.38)।

कोकून उपज और गुणवत्ता

सर्वेक्षणों से प्राप्त डेटा कोकून उपज में चिंताजनक प्रवृत्ति दिखाता है। कोकून उपज में 21% की कमी दर्ज की गई, जो 2024 की गर्मी (औसत तापमान 39°C) के साथ सीधे जुड़ी हुई है। सामान्यीकृत रैखिक मिश्रित मॉडल से प्राप्त परिणाम इस संबंध को सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण

दिखाते हैं (GLMM: $\beta = -0.28$, $p < 0.001$)। विशेष रूप से, लार्वा (कीट के लार्वल चरण) में यह प्रभाव और भी गंभीर है, 26% तक पहुँच जाता है।

पोषणात्मक गिरावट-शहतूत में नाइट्रोजन सामग्री में 16% की गिरावट देखी गई (Pearson $r = 0.69$, $p < 0.01$), जो रेशमकीट के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। यह गिरावट वर्षा में कमी और ऊष्मा तनाव से सीधे संबंधित है।

रोग और मृत्यु दर-पेपीनोसिस (एक फंगल रोग) की घटनाओं में 18% की वृद्धि दर्ज की गई। कीटों की समग्र मृत्यु दर 14% से बढ़कर 32% तक पहुँच गई ($\chi^2 = 25.7$, $p < 0.001$)। यह तीव्र वृद्धि रेशमकीट पालन की व्यावहारिकता के लिए एक प्रमुख संकेत है।

प्रतिरक्षा गतिविधि-SOD एंजाइम गतिविधि तापमान >35°C पर 19% कम पाई गई, जो ऑक्सीडेटिव तनाव में वृद्धि का सूचक है।

वनस्पति सूचकांक- NDVI से प्राप्त डेटा दर्शाता है कि शहतूत वृद्धि कवर 9% घटा है ($r = -0.61$, $p = 0.005$)।

सामान्यीकृत मिश्रित मॉडल से पता चलता है कि जलवायु चर (तापमान, वर्षा, आर्द्रता) कुल परिवर्तनशीलता का 52% समझाते हैं (AIC = 1389)। वर्षा में कमी सबसे प्रमुख कारक है (Odds Ratio = 1.38)।

चर्चा:- परिणाम राष्ट्रीय अध्ययनों से संनादित हैं, लेकिन मालवा की शुष्कता संकट बढ़ाती है। तापमान वृद्धि रेशमकीट का चयापचय बाधित करती है (Neelaboina et al., 2018), जबकि शहतूत पर सूखा पोषण चक्र तोड़ता है। स्थानीय सिंचाई सुविधाओं की कमी प्रभाव को बढ़ाती है। आर्थिक हानि: 21% उपज कमी से किसान आय 18% घटी, जिससे प्रवासन बढ़ा। छायादार रीयरिंग 12% सुधार दिखाती है। यह अध्ययन मालवा के रेशमकीट पालन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को विस्तार से समझने में मदद करता है, जो भविष्य की नीति निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है।

सीमाएँ: नमूना आकार सीमित; भविष्य में जीनोमिक फोकस आवश्यक।

सिफारिशें:-

1. जलवायु-सहिष्णु शहतूत हाइब्रिड विकसित करें
2. ड्रिप सिंचाई और जल संरक्षण प्रणाली स्थापित करें
3. नियंत्रित रीयरिंग तकनीकें लागू करें
4. किसानों के लिए अनुकूलन फंड में बजटीय आवंटन

रेशमकीट पालन की रक्षा भारतीय आर्थिक और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए आवश्यक है।

निष्कर्ष:- यह अध्ययन दर्शाता है कि जलवायु परिवर्तन मालवा में रेशमकीट पालन को गंभीर खतरे में डाल रहा है, जिससे उपज और कीट स्वास्थ्य दोनों प्रभावित हो रहे हैं। बिना तत्काल कार्रवाई के, मध्य प्रदेश के 4 लाख परिवार इस संकट से प्रभावित होंगे।

****

संदर्भ सूची-

1. Central Silk Board India. (2024). *Indian sericulture at a glance: Annual production report 2023-2024*. Ministry of Textiles, Government of India. Retrieved from https://www.csb.gov.in/
2. Dar, N. A., Khan, H. A., Khan, F. A., & Malik, S. (2017). Climate change and sericulture: Implications and adaptation. *Journal of Central European Agriculture*, 18(3), 501-518. https://doi.org/10.5513/JCEA01/18.3.1944
3. Das, S. K., Das, P., & Sharma, A. K. (2022). Climate variability and mulberry sericulture: Evidence from production trends. *Journal of Entomological Research*, 46(2), 145–152. https://doi.org/10.5958/0974-4576.2022.00025.4
4. Devi, B., & Singh, B. (2023). Thermal adaptation strategies in silkworm rearing: A review. *International Journal of Advanced Biological Research*, 13(4), 456-472. https://doi.org/10.33865/ijabr.2023.v13i4.455
5. Ferdous, J., Chowdhury, S. R., & Gani, M. A. (2023). Impact of changing climate on mulberry-silkworm interaction: Molecular insights. *Science of The Total Environment*, 876, 162768. https://doi.org/10.1016/j.scitotenv.2023.162768
6. India Meteorological Department. (2024). *Madhya Pradesh climate trends 2020–2024*. Government of India Publications. Retrieved from https://mausam.imd.gov.in/
7. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2023). *Climate Change 2023: Impacts, Adaptation and Vulnerability. Contribution of Working Group II to the Sixth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change*. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/9781009325844
8. Mehraj, S., Kamili, A. S., Ganie, N. A., Mir, S. A., Khan, F. A., Mir, M. R., & Sharma, R. K. (2020). Climate change triggers early sprouting in mulberry (Morus sp.). *International Journal of Advanced Biological Research*, 10(4), 197-201.
9. Neelaboina, V., Khan, G. A., Kumar, S., Gani, M. N. A., Ahmad, M. N., & Ghosh, M. K. (2018). Climate-resilient silkworm hybrids and mulberry varieties. *Sericologia*, 58(4), 200–210.
10. Rahmathulla, V. K. (2012). Management of climatic factors for successful silkworm (Bombyx mori L.) crop and higher cocoon production: A review. *Sericulture and Society*, 1(1), 1-12.
11. Rajagopal, P. N., Iyer, P. K. R., Sengupta, A. K., & Chakraborty, A. (2017). Technological innovations for climate-adaptive sericulture in India. *Sericologia*, 57(3), 289-302.
12. United States Geological Survey. (2024). *Landsat data products and analysis methods*. USGS Earth Explorer. Retrieved from https://www.usgs.gov/landsat

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

Digital Media Literacy and Misinformation in Rural Uttarakhand: Insights from Empirical Data

Doi no-10.5281/zenodo.17803184

Dr. Srachna Sachdeva
Asst. Professor, JMC
Dharmanad Uniyal GDC, Narendra Nagar(Tehri Garhwal), Uttarakhand

1.Introduction-The unchecked rise of misinformation on social media has emerged as a critical threat to information integrity, democratic discourse, and public trust. This challenge is particularly acute in regions experiencing rapid digital expansion, such as the Indian state of Uttarakhand. With advancements in mobile technology, widespread availability of affordable smartphones, and declining data costs, internet access has surged across both urban and rural populations. According to official data published on data.gov.in, the rural internet user base in Uttarakhand now stands at approximately 4.9 million—closely matching the 4.95 million users in urban areas.[1] This statistical near-parity highlights a significant narrowing of the digital divide and signals a transformative shift in the way rural populations engage with digital platforms, particularly social media.

However, this increasing connectivity comes with complex challenges. Social media platforms—once hailed for democratizing communication—have now become prime vectors for the spread of misinforma- tion and fake news. The reasons are multifaceted: algorithm-driven content curation, lack of editorial oversight, and the ease of creating and sharing unverified or manipulated information. Advanced tech- nologies, including artificial intelligence, deepfake generators, and sophisticated editing tools, have made it easier than ever to produce deceptive content that appears authentic. In such an environment, even digitally connected individuals are at risk of being misled, especially when media literacy is low.

A recent study by the Indian Business School in partnership with CyberPeace Foundation (IANS, Dec 20, 2024) underscores the alarming spread of misinformation in India. The report found that nearly half of all fake news stories circulating online are political in nature. The study strongly recommends enhancing digital media literacy, strengthening user reporting mechanisms, and encouraging responsible online behavior to mitigate this rising threat.[2] This becomes even more pressing in rural areas where exposure to social media has increased, but the ability to critically evaluate content remains limited.There have been numerous documented cases where viral misinformation has triggered serious consequences—

fuelling rumours, inciting violence, or undermining public health initiatives. In certain situations, misinformation has spread so rapidly and uncontrollably that local or state governments have resorted to suspending internet services altogether in an attempt to curb unrest and restore order. These shutdowns, while often seen as a last resort, disrupt essential services, education, and communication, particularly harming already vulnerable rural communities. Seeing the growing AI generated content increasing on the internet the Standing committee on Communication and Information Technology has submitted a draft report in which it has suggested mandatory licencing and labelling of AI generated content to dis- tinguish it from genuine content and also asked the media organisations to strengthen their fact checking systems.[3]

Rural internet users typically engage with social media for various purposes—ranging from entertain- ment and social connection to information gathering. However, their content consumption is largely unstructured and dictated by platform algorithms rather than deliberate information-seeking behaviour. This algorithmic reinforcement fosters echo chambers[4], where users are repeatedly exposed to the same types of content and viewpoints, while alternative or dissenting voices are filtered out. Over time, this digital insulation amplifies biases, promotes misinformation, and erodes trust in credible sources.

Given this backdrop, the role of media literacy becomes more vital than ever. Media literacy is not merely the ability to use digital tools; it is the skill to critically assess, analyze, and question the content one consumes. It encompasses competencies such as fact-checking, source verification, understanding media motives, and recognizing bias or manipulation. In rural settings, where formal education systems may not adequately address these areas, the lack of media literacy leaves populations especially vulnerable to digital misinformation.

This paper seeks to evaluate the media literacy levels of rural internet users in Uttarakhand and under - stand the real-world impact of misinformation on

their lives. It investigates how misinformation spreads through social networks, how users perceive and interact with such content, and what gaps exist in their ability to identify and respond to false information. The study ultimately argues for a structured and localized approach to digital media literacy as a necessary defense against the growing tide of misinfor- mation, and as a pathway to more informed, resilient, and empowered rural communities.

2.Review of literature

Media Literacy: Definitions and Frameworks

Media literacy has evolved beyond traditional notions of understanding mass media to encompass crit- ical engagement with digital content across various platforms. According to UNESCO (2011), media and information literacy (MIL) is the set of competencies that empowers citizens to access, retrieve, understand, evaluate, and use information ethically and effectively. It further includes the ability to ana- lyze media messages, create content responsibly, and engage in informed digital participation. In an age where information is abundant and rapidly disseminated through algorithmic feeds, these competencies are essential for democratic participation and safeguarding against manipulation.[5]

Academic literature reinforces this expanded framework. Hobbs (2010) defines media literacy as the capacity to access, analyze, evaluate, create, and act using all forms of communication.[6] Similarly, Potter (2013) argues that media literacy should involve "a continuum of skills" including cognitive, emotional, aesthetic, and moral dimensions, not just technical proficiency. The consensus across these definitions is that media literacy is not merely about digital access, but about the quality of engagement with media content.[7]

Key components of media literacy include:

Analysis – Interpreting messages, understanding underlying meanings, and identifying biases.

Evaluation – Judging credibility and reliability of sources.

Content creation – Generating and sharing information ethically.

Critical thinking – Questioning assumptions, motives, and implications.

Fact-checking – Verifying accuracy using credible sources.

Despite this consensus, implementation of media literacy programs—particularly in rural areas—remains sparse and unstandardized. Many existing interventions focus on urban or school-based populations, leaving rural adults, informal workers, and the elderly under-researched and underserved.

Misinformation and Its Impact

Misinformation is broadly defined as false or misleading information shared without the intent to deceive, although its consequences can be just as harmful as deliberate disinformation. The spread of misinformation has been extensively studied in the context of key social events.

During elections, for instance, false narratives have been shown to polarize voters and manipulate public opinion. A study by Faris et al. (2017)[8] found that politically motivated misinformation during the 2016 U.S. elections spread faster and wider than factual content. In India, political fake news is also prevalent, with a 2024 study by the Indian Business School and CyberPeace Foundation reporting that nearly 50% of misinformation online is political in nature (NDTV, 2025).[2]

The COVID-19 pandemic intensified the infodemic—defined by the WHO as an overabundance of information, including falsehoods—leading to public confusion, vaccine hesitancy, and stigmatization. Research by Brennen et al. (2020)[9] at the Reuters Institute identified health-related misinformation as a major global issue, exacerbated by WhatsApp forwards and unverified YouTube content in countries like India.

Natural disasters have also been fertile ground for misinformation. After the 3 August 2025 Dharali flash floods in Uttarakhand, numerous fake claims were made through social media , creating confusion.[10]

Psychologically, misinformation exploits cognitive biases like confirmation bias and availability heuristics, making individuals more likely to believe and share content aligned with their existing beliefs (Pennycook & Rand, 2018).[11]

Socially, misinformation undermines trust in institutions and media, deepens polarization, and can incite violence or discrimination.

Digital Divide and Rural Internet Use-

The digital divide has traditionally been viewed through the lens of access—the availability of devices, internet connectivity, and digital infrastructure. While significant progress has been made in bridging this access gap in India through initiatives like Digital India and BharatNet, a second layer of the divide persists: the skills divide.

Van Dijk (2005) distinguishes between material access and usage capabilities. In rural India, while smartphones and mobile internet are increasingly ubiquitous, meaningful use remains limited by low digital literacy, poor quality of content in local languages, and lack of training.12 A report by IAMAI (

2023) highlights that while 45% of rural users in India access the internet daily, only 12% are able to critically evaluate the information they consume.13

Several programs have attempted to address this skills gap. Initiatives like the Digital Literacy Mission and Google's Internet Saathi (now concluded) aimed to train women and rural users in basic digital skills. However, evaluations reveal that these programs often focus on functional literacy—how to use a phone or app—rather than critical engagement with online content.

Moreover, rural populations face algorithmic discrimination. Social media platforms' content delivery systems are often optimized for engagement rather than truth, creating echo chambers where misinfor- mation thrives. The lack of tailored, culturally contextualized media literacy education deepens these risks.

Research Gaps

Despite a growing body of research on misinformation and digital engagement, several critical gaps remain, particularly in the Indian context:

1. **Limited rural focus** – Most media literacy studies are concentrated in urban or semi-urban settings, with minimal exploration of rural digital behaviors and vulnerabilities.
2. **Functional vs. critical literacy** – Existing digital literacy programs emphasize tool usage rather than critical thinking, source verification, or content evaluation.
3. **Lack of impact studies** – Few empirical studies investigate how misinformation specifically affects rural populations in terms of behavior, decision-making, or community outcomes.
4. **Contextual void** - There is a lack of localized, culturally relevant media literacy frameworks that consider linguistic diversity, educational levels, and socio-political realities of rural users.

3Methodology

Research Design

This study employed a descriptive survey-based research design to evaluate media literacy and misinformation exposure among rural internet users. A structured questionnaire was developed and administered to collect primary data from respondents across 25 villages in Narendranagar Tehsil, located in Tehri Garhwal district, Uttarakhand. The survey aimed to generate empirical insights into rural digi- tal behaviour, misinformation awareness, and engagement with media platforms. The study specifically addressed the following research objectives:

1. To assess social media usage patterns among rural internet users.
2. To identify and analyse active versus passive digital behaviour.
3. To evaluate awareness of fake news and the presence or absence of fact-checking skills.
4. To explore the extent of understanding of policy frameworks related to misinformation and digital regulation.

Study Area and Sampling

The research was conducted across 25 purposively selected villages within Narendranagar Tehsil, ensuring representation from different geographic clusters, connectivity levels, and socio-economic profiles. A stratified random sampling method was used to select participants within each village, ensuring repre- sentation across age, gender, education, and frequency of internet use. From each village, 10 respondents were selected, resulting in a total sample size of 250 respondents.

- The inclusion criteria were as follows:
- Respondents aged 18 years or above
- Residents of the selected village for at least six months
- Regular social media users

Data Collection Instrument

A structured questionnaire was prepared in Hindi, and pre-testing was done to ensure clarity, relevance, and cultural appropriateness. Moreover, two research assistants who were fluent in Garhwali language, spoken locally in the selected area, were appointed. This aided in overcoming the language barrier and creating favourable circumstances for data collection. After necessary revisions, the final version was used for data collection.

The questionnaire comprised five thematic sections:

Demographic Profile

Collected data on age, gender, education, occupation, income, and device ownership.

Social Media Usage

Explored platforms used (e.g., WhatsApp, Facebook, Instagram), frequency and duration of use, and primary motivations (e.g., news, entertainment, learning).

Active vs. Passive Use

Captured the extent of user participation—such as posting, commenting, liking, sharing, and con- tent creation—to categorize users as active or passive.

Fake News Awareness and Fact-Checking Skills

Assessed familiarity with misinformation-related terms, ability to identify unreliable content, and use of tools or techniques for fact verification.

Policy Framework Awareness

Gauged knowledge of governmental and platform-based misinformation interventions (e.g., IT Rules 2021, PIB Fact Check), and attitudes toward regulation and accountability.

Data Analysis

To analyse data collected from the 250 completed surveys, the following techniques were applied:

- Descriptive statistics were used to summarize demographic data, usage behaviour, and levels of awareness.
- Cross-tabulation helped identify patterns and relationships between user profiles and media literacy competencies.
- Chi-square tests were conducted to assess statistical significance across categories such as age groups and fact-checking behaviour.
- A composite Media Literacy Index (MLI) was constructed using weighted scores from key indicators such as source evaluation, fact-checking habits, and misinformation recognition.

Ethical Considerations

Ethical guidelines were strictly followed throughout the study:

- Informed consent was obtained from all participants prior to administering the survey.
- Anonymity and confidentiality were maintained; no identifying information was collected.
- Participation was voluntary, and respondents had

4 Results and Discussion

Sample profile

Age. Mean = 27.996 years, SD = 8.030, min = 17, max = 48 (N = 250).

Formula for Standard Deviation:

$$\bar{Y} = \frac{1}{n}\sum_{i=1}^{n} Y_i$$

$$s = \sqrt{\frac{1}{n-1}\sum_{i=1}^{n}(Y_i - \bar{Y})^2}$$

- $\bar{Y}$ = sample mean (average value)

n = total number of respondents (sample size)
Y_i = value of the variable for respondent i (e.g., individual age)
s = standard deviation (measure of spread around the mean)

The data shows that the "average" respondent is about 28 years old. The standard deviation of 8 years indicates that there is a moderate spread of ages around this mean, with most respondents falling between 20 and 36 years. This variation is important because it demonstrates that the sample is not restricted to one narrow age group, but instead captures both younger and older rural internet users. Such diversity strengthens the validity of findings on digital behaviours and misinformation exposure.

Gender. Female = 128 (51.2%), Male = 122 (48.8%) (N = 250).

$$p_k = \frac{f_k}{n}, \quad f_k = \text{count in category k}$$

- f_k = Frequency count of category k (number of respondents in category k)
- p_k = Proportion (relative frequency) of category k in the total sample
- k = Category label (e.g., "1 hour," "2 hours" in time-spent variable)

Social media usage patterns

Platform adoption. All respondents reported using social media [Yes = 250/250]. WhatsApp usage was universal. [Yes = 250/250].

Formula (categorical frequency & proportion):

$$f_k, \quad p_k = \frac{f_k}{n}$$

Wherein

- f_k = Frequency count of category k. The number of respondents who fall into category k. Example: If 138 people report "1 hour of social media use," then $f_k = 138$.
- p_k = Proportion (relative frequency) of category k. The share of the total sample belonging to category k. Example: $p_k = \frac{138}{250} = 0.552 = 55.2\%$
- n = Total number of respondents (sample size). In the present study, $n = 250$.
- k = Category label. A specific option within the variable being measured (e.g., "1 hour," "2 hours," "3 hours" for *time spent*).

Result: Time spent daily. 1 Hour = 138 (55.2%); 2 Hours = 75 (30.0%); 3 Hours = 37 (14.8%) ($N = 250$).

Near-universal adoption and regular daily use place rural users in sustained contact with algorithmic feeds—conditions known to increase incidental exposure to misinformation. This mirrors national patterns reported by IAMAI (2023)[13] and global work showing social media's role as a primary news channel (Tandoc et al., 2018).[14]

Active vs. passive behaviour

We classified **"active"** users as those who either (i) share others' posts (Yes), or (ii) report sharing ≥ 3 posts per day. Everyone else was classified as **"passive."**

- Shares others' posts: Yes = 150 (60.0%); No = 100 (40.0%).
- Posts shared per day: One–Two = 171 (68.4%); Three–Four = 66 (26.4%); Five–Six = 12 (4.8%); None = 1 (0.4%).
- Composite activity classification: Active = 179 (71.6%); Passive = 71 (28.4%).

Although a majority qualify as "active" by sharing/forwarding behavior, original content creation remains low (the "create" field is dominated by topical labels; only 1 respondent marked "No"). This pattern—*forwarding-heavy, creation-light*—is consistent with evidence that passive/semi-active forwarding accelerates the spread of misinformation (Pennycook & Rand, 2018)[11] and with rural consumption patterns observed by Pew Research Center (2021).[15]

Awareness of Fake News and Fact-Checking

- Awareness that fake news circulates: Yes = 201 (80.4%), No = 49 (19.6%).
- Awareness of fact-checking methods: Yes = 40 (16.0%), No = 210 (84.0%).
- Experienced consequences of fake news: Yes = 40 (16.0%), No = 210 (84.0%).
- Named a fact-check site (e.g., AltNews, BOOM): ≈ 25 (10.0%).

Chi-square test of association

To test whether awareness of fake news is associated with awareness of fact-checking methods, a Chi-square test of independence was conducted.

Observed contingency table (O):

	Fact-check: No	Fact-check: Yes	Row total
Fake news: No	42	7	49
Fake news: Yes	168	33	201
Column total	210	40	250

Expected frequencies:

$$E_{ij} = \frac{R_i \times C_j}{N}$$

Where

- E = expected count
- R_i = row total for row i
- C_j = column total for column j
- N = grand total (250 respondents)

$$E_{11} = 41.16, \quad E_{12} = 7.84$$
$$E_{21} = 168.84, \quad E_{22} = 32.16$$

Chi-square statistic:

$$\chi^2 = \sum_{i=1}^{r}\sum_{j=1}^{c}\frac{(O_{ij} - E_{ij})^2}{E_{ij}} = 0.0218$$

Where

- χ^2 = Chi-square test statistic
- O_{ij} = observed frequency in row i, column j
- E_{ij} = expected frequency in row i, column j
- r = number of rows
- c = number of columns

Degrees of freedom:

$$df = (r-1)(c-1) = 1$$

$$p \text{ value} = 0.883$$

Since $p > 0.05$, the test shows no statistically significant association between being aware that fake news circulates and being aware of fact-checking methods. In other words, while most respondents recognize the existence of fake news, this does not translate into knowledge of fact-checking practices. Although most respondents recognize that fake news circulates, this awareness does not translate into awareness of fact-checking methods. This disconnect (non-significant χ^2) is consistent with Brennen et al. (2020)[9] and Indian rural evidence (Narayan et al., 2022): people know about fake news but do not know (or use) verification practices.[16]

Policy framework awareness & accountability

- **Accountability:** Individual users = 134 (53.6%), Platforms = 103 (41.2%), Other = 13 (5.2%).
- **Basis of truthfulness:** "Shared by many" = 163 (65.2%), "Well-wisher" = 67 (26.8%), "In tune with thoughts" = 7 (2.8%).
- **When doubted:** Cropped photo = 65 (26.0%), Edited video = 57 (22.8%), Photoshopped image = 41 (16.4%), Altered audio = 16 (6.4%).
- **Suggested measures:** Media centers = 59 (23.6%), Media literacy curriculum = 64 (25.6%), Punishment = 35 (14.0%), Accountability = 47 (18.8%), Govt. rules = 17 (6.8%).

Judgments of truth rely heavily on popularity ("shared by many") and interpersonal trust ("well-wisher"), rather than verification—mechanisms long known to amplify rumor diffusion. Respondents' preferred solutions—education and community information centers—closely track UNESCO's MIL guidance (UNESCO, 2011)[5]. Relative to urban findings (Singh & Bhatnagar, 2021)[17] policy-tool awareness (e.g., PIB Fact Check) appears lower here.

Media Literacy Index (MLI)

We computed MLI per respondent as:

$$MLI_i = \frac{F_i + C_i + D_i}{3}, \quad MLI_i \in [0,1]$$

Where

- $F_i = 1$ if aware fake news circulates, else 0
- $C_i = 1$ if aware of fact-checking, else 0
- $D_i = 1$ if faced consequences of fake news, else 0

Group mean MLI:

$$\overline{MLI}_g = \frac{1}{n_g} \sum_{i \in g} MLI_i$$

Results

- Overall mean MLI = 0.479 (N = 250)
- Female = 0.471 (n = 128), Male = 0.486 (n = 122)
- Education (top): High School = 0.667; Post-Graduate = 0.667; Diploma = 0.500; Intermediate = 0.483; Graduate = 0.457; B.Tech = 0.333; PhD = 0.333; Other = 0.000

Average MLI < 0.5 indicates limited critical literacy despite high platform use—a form of skill divide (Van Dijk, 2005). Small gender differences suggest the constraint is structural (exposure, training) rather than demographic. Plotting age against MLI reveals a general negative association between MLI and average age. However, the observation for MLI = 1 deviates from this trend, likely due to the small subgroup size (n = 17) relative to the total sample (N = 250).

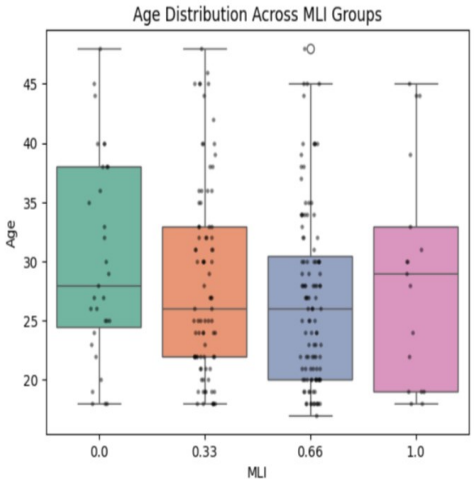

Figure 1: Relationship between age and MLI.

Conclusion:-The study of 250 respondents across 25 villages in Narendranagar Tehsil, Uttarakhand, reveals important insights into the intersection of rural internet use, misinformation exposure, and media literacy.

1.Social Media Usage is Universal but Shallow. =All respondents reported using social media, with WhatsApp adoption at 100%. The majority spend 1–2 hours daily online, indicating deep penetration of digital platforms even in rural areas. However, this usage is largely consumptive rather than critical, guided by algorithmic feeds.

2.Active Forwarding, Passive Creation.

While 71.6% of respondents qualify as "active" by sharing or forwarding posts, original content creation remains very low. This forwarding-heavy pattern is significant because it accelerates the spread of misinformation while requiring little critical engagement.

3.Awareness–Practice Gap.

A large majority (80.4%) are aware that fake news circulates, yet only 16% are aware of fact-checking methods, and even fewer (10%) can name a fact-checking site. The Chi-square test confirmed that awareness of fake news is not associated with awareness of fact-checking ($\chi^2 = 0.0218$, $df = 1$, $p = 0.883$). This demonstrates a clear gap: recognition of misinformation does not translate into literacy for verification.

4.Reliance on Social Heuristics.

When judging truthfulness, respondents rely primarily on popularity ("shared by many") and inter- personal

trust ("well-wisher") rather than evidence or verification. Similarly, doubts about content arise mainly when visual manipulation is obvious (cropped images, edited videos). This indicates vulnerability to more subtle forms of misinformation.

5.Policy Awareness and Preferences.=A majority assign accountability to individual users (53.6%) and platforms (41.2%), but knowledge of formal policy tools (e.g., PIB Fact Check, IT Rules 2021) is very limited. Respondents empha- sized the need for media literacy in school curricula and local media information centers, reflecting grassroots demand for structured interventions.

6.Media Literacy Index (MLI) is Low.-The overall MLI is 0.479, showing that media literacy skills remain underdeveloped despite widespread access. Scores were similar for males (0.486) and females (0.471), suggesting the constraint is struc- tural, not gender-based.

The findings highlight a second-level digital divide in rural Uttarakhand: access to the internet is no longer the problem, but critical skills for evaluating and verifying information remain weak. While rural users are aware of misinformation and highly active in forwarding content, they lack the tools and literacy to effectively fact-check or resist falsehoods.

This disconnect makes rural communities particularly vulnerable to political misinformation, health- related rumors, and digitally manipulated content. Addressing this gap requires:

- Embedding media literacy in formal education at multiple levels.
- Creating local media information centers for accessible fact-checking support.
- Designing culturally contextualized awareness campaigns that move beyond "awareness of fake news" to practical verification skills.

By strengthening rural media literacy, misinformation can be mitigated not just through platform regulation, but through empowered citizens who are better equipped to consume, assess, and share digital content responsibly.

******

References

1.Open Government Data (OGD) Platform India. (2024, September 9). *State/UT-wise details of internet penetration (internet subscribers per 100 population) in urban/rural areas of the country as on 31st March 2024*. Government of India. https://www.data.gov.in/resource/stateut-wise-details-internet-penetration-internet-subscribers-100-population-urbanrural

2.IANS India News. (2024, December 20). *Nearly half of the fake news stories in India are political: Study*. NDTV. https://www.ndtv.com/india-news/nearly-half-of-the-fake-news-stories-in-india-are-political-study-7291481

3.Brand Wagon Online. (2025, September 15). *India plans new rules to curb fake news made by AI*. The Financial Express. https://www.financialexpress.com/business/brandwagon-india-plans-new-rules-to-curb-fake-news-made-by-ai-3978375/

4.Kitchens, B., Johnson, S. L., & Gray, P. (2020). Understanding echo chambers and filter bub- bles: The impact of social media on diversification and partisan shifts in news consumption. *MIS Quarterly*, 44(4), 1619–1649. https://doi.org/10.25300/MISQ/2020/16371

5.UNESCO. (2011). *Media and information literacy curriculum for teachers*. United Nations Ed- ucational, Scientific and Cultural Organization. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000192971

6.Hobbs, R. (2010). *Digital and media literacy: A plan of action*. Aspen Institute.

7.Potter, W. J. (2013). *Media literacy* (7th ed.). SAGE Publications.

8.Faris, R., Roberts, H., Etling, B., Bourassa, N., Zuckerman, E., & Benkler, Y. (2017). *Par- tisanship, propaganda, and disinformation: Online media and the 2016 U.S. presidential election*. Berkman Klein Center for Internet & Society. https://cyber.harvard.edu/publications/2017/ 08/partisanship_propaganda_disinformation

9.Brennen, J. S., Simon, F. M., Howard, P. N., & Nielsen, R. K. (2020). Types, sources, and claims of COVID-19 misinformation. Reuters Institute. https://reutersinstitute.politics.ox.ac.uk

10.Das, K. (2025, August 9). Dharali's flash floods: FIR against five for 'Nature's Bulldozer' com- ment; cops flag fake news. *The Times of India*. https://timesofindia.indiatimes.com/city/ dehradun/fir-against-5-for-natures-bulldozer-comment/articleshow/12320083.cms

11.Pennycook, G., & Rand, D. G. (2020). The implied truth effect: Attaching warnings to a subset of fake news stories increases perceived accuracy of stories without warnings. *Management Science*, 66(11), 4944–4957. https://doi.org/10.1287/mnsc.2019.3478

12.Van Dijk, J. A. G. M. (2005). The deepening

13. divide: Inequality in the information society. SAGE Publications.

14.Internet and Mobile Association of India (IAMAI). (2023). Internet in India report 2023. IAMAI.

15.Tandoc, E. C., Lim, Z. W., & Ling, R. (2018). Defining "fake news." Digital Journalism, 6(2), 137–153. https://doi.org/10.1080/21670811.2017.1360143

16.Pew Research Center. (2021, April 7). Social media use in 2021. Pew Research Center. https:// www.pewresearch.org/internet/2021/04/07/social-media-use-in-2021

17.Narayan, S., Bhat, R., & Mahadevan, P. (2022). Misinformation and media literacy: A rural perspective from Karnataka. Journal of Digital Society Studies, 14(2), 45–60.

18.Hasan, A., & Bhardwaj, A. (2021). Youth, digital platforms, and misinformation: A study of media literacy skills in India. Journal of Media Literacy Education, 13(1), 55–72.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

रामायण में राम-शबरी प्रसंग - तुलनात्मक समीक्षा

डॉ. ममता गुप्ता
सहायक प्राध्यापक ,संस्कृत
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शास. महाकौशल महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
e-mail- drmamtagupta10@gmail.com

सार) Abstract) –
रामायण ऐसी लोकप्रियतम कथा जो जनसाधारण और बुद्धिजीवियों दोनों वर्गों में समान रूप से लोकप्रिय है। संस्कृत साहित्य में रामकथा को आधार बना कर लिखे गये काव्यों की सुदीर्घ परम्परा है जो अनेक भाषाओं में रचे गए है। रामायणों की लोकप्रियता का कारण काव्य सौंदर्य न होकर रामकथा की उदात्तता है। राम कथा में अनेक हृदयस्पर्शी प्रसङ्ग हैं जिनमें से एक प्रसङ्ग है राम और शबरी का प्रसङ्ग। विभिन्न रामायणों में वर्णित राम-शबरी का प्रसङ्ग का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत लेख का विषय है।

पद्धति (Methodology)-
शोधपत्र लेखन के लिए वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) शोध प्रविधि (Research Methodology) का प्रयोग किया जाएगा। इस हेतु विभिन्न भाषाओं की रामायणों एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों का अध्ययन करके सन्दर्भों का संकलन किया जाएगा और उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन शोध पत्र में प्रस्तुत किया जाएगा।

कुञ्जी शब्द) Key Words) – वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म रामायण, कृतिवास-रामायण, कम्ब-रामायण, रंगनाथ-रामायण, रामचरितमानस ।

प्रस्तावना)introduction) –
रामायण लौकिक साहित्य की प्राचीनतम कृति है। परस्पर प्रेम निमग्न क्रौञ्च-मिथुन में से एक को व्याध के द्वारा मारे जाने पर महर्षि वाल्मीकि के हृदय की जो पीड़ा श्लोक रूप में प्रस्फुटित हुई थी उसी का पल्लवित रूप है रामायण। निःसन्देह रामायण एक अनुपम रचना है। रामकथा सहस्राब्दियों से भारतीय संस्कृति को प्रभावित करती रही है। इसने जनसाधारण और बुद्धिजीवियों दोनों पर समान रूप से प्रभाव डाला है। यही कारण है कि रामायण एक ओर तो प्रत्येक भारतीय के लिए धार्मिक आस्था केन्द्र है तो दूसरी ओर कवियों और नाटककारों के लिए प्रेरणा का स्रोत।

संस्कृत साहित्य में रामकथा को आधार बना कर लिखे गये काव्यों की सुदीर्घ परम्परा है जो आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। काव्य की लगभग समस्त विधाओं में रामकथा का संकीर्तन किया गया है। वस्तुतः भारतीय परिदृश्य में रामकथा पर लेखनी चलाए बिना कोई कवि प्रतिष्ठा प्राप्त नही होता है। संस्कृत वाङ्मय में ही नही पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी इत्यादि प्रायः सभी भाषाओं में रामकथा का भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णन मिलता है। संस्कृत में रचित वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण, बांग्ला में रचित कृतिवास-रामायण, तेलुगु में रचित कम्ब-रामायण, अपभ्रंश में रचित पउमचरिउ, हिंदी में तुलसीदास कृत रामचरितमानस अत्यन्त लोकप्रिय हैं।विभिन्न भाषाओं में लिखी गई इन रामायणों की लोकप्रियता का कारण इनका काव्य सौंदर्य मात्र नहीं अपितु रामकथा की महनीयता है। रामायण में वर्णित राम एवं शबरी के मध्य हुए संवाद का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत लेख का विषय है।

संवाद शब्द सम उपसर्ग पूर्वक वद् धातु के साथ घञ् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है इसके अनेक अर्थ बताए गए हैं-
संदेशवाक्य, वाचिक, संदेशवाक्, मिथसमाभाषण
उनमें से यहाँ मिथ-वार्तालाप यानी परस्पर वार्तालाप अपेक्षित है। संस्कृत साहित्य में संवादों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद में अनेक संवाद -सूक्त देखने को मिलते हैं जो अपने काव्यसौंदर्य एवं लालित्य के कारण प्रसिद्ध है। रामायण में भी अनेक संवाद है यथा नारद-वाल्मीकि-संवाद , परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, राम-रावण-संवाद , रावण-मंदोदरी-संवाद , विभीषण-रावण संवाद आदि। मेरे द्वारा इस शोधपत्र में राम-शबरी-संवाद को ग्रहण किया गया है। वाल्मीकि रामायण में राम-शबरी का प्रसङ्ग केवल एक सर्ग में वर्णित है परन्तु परवर्ती रामकथाओं में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। राम-शबरी संवाद का तुलनात्मक अध्ययन इस शोधपत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य है। तुलनात्मक अध्ययन हेतु वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, कृतिवास-रामायण, कम्ब-रामायण, रंगनाथ-रामायण एवं रामचरितमानस को विशेष रूप से ग्रहण किया गया है। रामकथा के प्रतिपादक इन सभी ग्रन्थों में वर्णित राम-शबरी-संवाद में परस्पर समानता के साथ असमानता भी दृष्टिगोचर होती है।

चर्चा(Discussion)-
रामकथा सर्वविदित है। श्रीराम को अपने पिता के वचनों के अनुसार चौदह वर्ष का वनवास प्राप्त हुआ था। चौदहवर्ष के वनवास की अवधि में उनका अनेक ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, वनवासियों से सम्पर्क हुआ। शबरी भी उन वनवासियों में से एक थीं। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड के चौहत्तरवें में सर्ग में राम शबरी के संवाद प्राप्त होता है। सीता की खोज में गहन वन में भटकते हुए राम की कबन्धरूपधारी शापित यक्ष से भेंट होती है जो शाप के कारण विकृत रूप में है। राम द्वारा वध किए जाने पर शापमुक्त कबन्ध राम को शबरी के विषय में बताता है। वह शबरी का परिचय देते हुए कहता है कि वह मतङ्ग ऋषि की शिष्या है। यहाँ से आगे पम्पा सरोवर के पश्चिम में मतङ्ग-वन है। जहाँ पर मतङ्ग ऋषि के प्रभाव से कभी न नष्ट होने वाले फूल उत्पन्न होते थे। इस समय मतङ्ग ऋषि एवं उनके सभी शिष्य दिव्यलोक चले गए हैं किंतु उनकी सेवा में रहने वाली तपस्विनी शबरी आज भी वहाँ निवास कर रही है। वह चिरजीवनी हो करके धार्मिक अनुष्ठान में लगी रहती है। नित्यवन्दनीया शबरी आपके दर्शन करके स्वर्ग लोक में चली जाएगी-

मतङ्गशिष्यास्तत्रासन्नृषयः सुसमाहिताः।।
तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः।
ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात् स्वेदबिन्दवः।।
तानि माल्यानि जातानि मुनीनां तपसा तदा।
स्वेदबिन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव।।

कबन्ध के कथनानुसार राम और लक्ष्मण पम्पा सरोवर के पश्चिमी तट पर स्थित शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं जो अत्यन्त सुरम्य फल, फूल और मधु से सम्पन्न वृक्षों से घिरा हुआ है। उन दोनों भाइयों को अपने आश्रम में आया देखकर शबरी ने उनके चरणों में प्रणाम करके उनकी अभ्यर्थना की तथा अर्घ्य, पाद, अचमन आदि सामग्रियों द्वारा उनका विधिवत् सत्कार किया। इसके पश्चात राम और शबरी के मध्य वार्तालाप होता है-

तामुवाच ततो रामः श्रमणीं शंसितव्रताम् ।।

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः ।
कच्चित्ते नियतः क्रोध आहारश्च तपोधने।।
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् ।।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि।।

राम उसे धर्मपरायणा तपस्विनी से बोले- तपोधने, क्या तुमने सारे विघ्नों पर विजय प्राप्त कर ली है, क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है, क्या तुमने क्रोध और आहार तुम्हारे वश में है, क्या तुमने नियमों को प्राप्त कर लिया है, क्या तुम्हारे मन में सुख है, क्या तुम्हारी गुरुसेवा सफल हो गई है?

राम के द्वारा इस प्रकार पूँछने पर उस सिद्धों में सम्मानित सिद्धा तपस्विनी ने उत्तर दिया- आज आपके दर्शन से मुझे तपस्या की सिद्धि प्राप्त हो गई है, आज मेरी गुरुजनों की उत्तम पूजा सफल हो गई है। आज मेरा जन्म सफल हो गया है, अब मुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी है। आपकी सौम्य दृष्टि से मैं पवित्र हो गई हूँ। आपके प्रसाद से ही मैं अक्षय लोकों को प्राप्त होऊँगी।

जब आप चित्रकूट पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन महान् विमान पर बैठकर दिव्य लोक में चले गए उन महर्षियों ने जाते समय मुझसे कहा था कि इस परम पवित्र आश्रम पर श्री राम पधारेंगे। लक्ष्मण के साथ वे तुम्हारे अतिथि होंगे तुम उनका यथावत् सत्कार करना। उनका दर्शन प्राप्त करके तुम श्रेष्ठ और अक्षय लोकों प्राप्त होगी।

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता।।
अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव सन्दर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः।।
अद्य मे सफलं जन्म स्वर्गश्चैव भविष्यति ।।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ।।
चक्षुषा तव सौम्येन पूताऽस्मि रघुनन्दन ।
गमिष्याम्यक्षया लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम।।
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः।
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम्।।
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः।
आगमिष्यति ते रामः सपुण्यमिममाश्रमम्।।
से ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः।
तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि।।

शबरी ने राम के आने की प्रतीक्षा में पम्पा सरोवर पर उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के वन्य फल फूलों का संचय किया था। उसने उन फलों को श्री रामचंद्र जी को समर्पित किया-

मया तु विविधं वन्यं संचितं पुरुषर्षभ।।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसंभवम्।।
एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम् ।।

उसकी बातें सुनकर के राम ने उसे तपोधने कह कर सम्बोधित करते पुए कहा- मैने कबन्ध के मुख से तुम्हारे महात्मा गुरुजनों का यथार्थ प्रभाव सुना है यदि तुम स्वीकार करो तो मैं उनके प्रभाव को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं –

शबरी ने उन दोनों भाइयों को मतङ्गवन नामक से प्रसिद्ध महान वन के दर्शन कराए। जहाँ मतङ्ग मुनि ने गायत्री मन्त्र के जाप से विशुद्ध हुई अपनी देह को अग्नि में समर्पित किया था। यहीं पर वृद्धावस्था के कारण जब महर्षि अशक्त हो गए थे तब उन्होंने चिन्तन मात्र से सात समुद्र का जल प्रकट करके किया था वही आज सप्तसागर के रूप में यहाँ पर स्थित है। इसीप्रकार शबरी ने आश्रम के अनेक स्थानों का राम और लक्ष्मण को दर्शन कराया-

राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम् ।।
दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनाम् ।
श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि सन्द्रष्टुं यदि मन्यसे ।।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्रविनिसृतम् ।
शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् ।।
पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ।।
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ।
जुहवांचक्रिरे तीर्थ मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ।।
इयं प्रत्यक्स्थली वेदिर्यत्र ते मे सुसत्कृताः ।
पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः ।।
तेषां तपःप्रभावेन पश्याद्यापि रघूत्तम ।
द्योतयन्ति दिशः सर्वाः श्रिया वेद्यतुलप्रभाः ।।
अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः ।
चिन्तितेऽभ्यागतान्पश्य सहितान्सप्त सागरान् ।।
कृताभिषेकैस्तैर्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह ।।
अद्यापि न विशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन ।।
देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानि कृतानि वै ।
पुष्पैः कुवलयैः सार्धं म्लानत्व नोपयान्ति वै ।।
कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया ।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्तुमेतत्कलेवरम् ।।
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् ।
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी।।
धैर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।।
प्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति चाब्रवीत।।

राम ने प्रसन्न होकर शबरी से कहा कि हे भद्रे, आपने हमारा बड़ा सत्कार किया है। अब आप अपनी इच्छा के अनुसार अपने अभीष्ट लोकों को प्राप्त कीजिए। इस प्रकार राम की आज्ञा प्राप्त करके उसने अग्नि प्रज्वलित की, उसमें अपने अग्नि के समान तेजस्वी शरीर को अर्पित कर दिया तथा दिव्य रूप धारण करके उस प्रदेश को प्रकाशित करती हुई स्वर्ग लोक में चली गई।

शबरी के दिव्यलोक चले जाने पर राम ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा- धर्मात्माओं का प्रभाव अतुलनीय होता है। इसके प्रभाव से पशु-पक्षी आदि सब अपनी विपरीत स्वभाव त्याग करके परस्पर प्रेम-भाव को धारण करते हैं। वाल्मीकि रामायण में राम शबरी का संवाद एवं प्रसङ्ग यहीं पर समाप्त हो जाता है और इसके आगे राम ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़ जाते हैं।

अध्यात्मरामायण संस्कृत की दूसरी महत्त्वपूर्ण रामकथा है। यह ब्रह्मपुराण के उत्तराखण्ड के अन्तर्गत आती है। अतः इसके रचयिता महर्षि वेदव्यास ही हैं। अध्यात्म रामायण में भी कबन्ध नामक गन्धर्व ही राम को शबरी से परिचित कराता है-

लब्ध्वा वरं स गन्धर्वः प्रयास्यन् राममब्रवीत् ।
शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन ।।
भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा ।
तां प्रयाहि महाभाग सर्वं ते कथयिष्यति ।।

राम गन्धर्व के बताए मार्ग पर चलते हुए शबरी के आश्रम पर पहुंचते हैं। लक्ष्मण के साथ श्री राम को आया हुआ देखकर शबरी हर्षविभोर हो जाती है, उनके चरणों में गिर पड़ती तथा उनका स्वागत अर्घ्य-पाद आदि से करते हुए उनकी कुशलक्षेम पूछती है तथा उनके लिए एकत्र किए गए अमृत तुल्य फलों को भक्तिपूर्वक समर्पित करती है-

त्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम् ।
शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः ।।
शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् ।
आयान्तमारांद्हर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा ।।

पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना ।
स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने सन्न्यवेशयत् ॥
रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ।
तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता ॥
सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं सपर्यया ।
सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा ॥
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः।
पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः ॥

आदर-सत्कार करने के पश्चात् उन्हें आसन पर बैठाकर शबरी भक्तिपूर्वक उनसे कहती है कि जिन महर्षि की मैं सेवा से सुश्रुषा करती थी, वे ब्रह्मलोक को चले गए और उन्होंने मुझे कहा था कि राक्षसों का नाश करने और ऋषियों की रक्षा के लिए परमात्मा ने दाशरथि राम के रूप में अवतार लिया है। वे शीघ्र ही यहाँ आएंगे। तुम यहाँ एकाग्रचित से उनका ध्यान करते हुए रहो। जब तक वे न पधारें तब तक अपने शरीर का पालन करो। उनके कथन अनुसार मैं तभी से मात्र आपका ध्यान करते हुए आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ। आज मेरे गुरु का वाक्य सफल हो गया है-

बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम् ।
गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता ॥
रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः ।
राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ॥
आगमिष्यति सैकाग्र ध्याननिष्ठा स्थिरा भव ।
इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः॥
यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम् ।
दृष्ट्वैव राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम् ॥
तथैवाकरवं राम त्वद्ध्यानैकपरायणा ।
प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम् ॥

शबरी कहती है कि मेरे गुरु को भी आप का दर्शन नहीं हुआ। मैं हीनजाति में उत्पन्न, मूढ स्त्री हूँ तथापि मनवाणी से अगोचर आपके दर्शन मुझे कैसे प्राप्त हो गए। मैं आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ। हे प्रभु आप मुझ पर प्रसन्न हो-

सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे नहि ।
योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा ॥
तव दासस्य दासानां शतसङ्ख्यो चरस्य वा।
दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तचैव हि।।
कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः ।
स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥

इस पर राम उत्तर देते हुए कहते हैं कि मेरे भजन के लिए नाम, जाति, स्त्री, पुरुष आदि का भेद कोई कारण नहीं है। मेरे भजन का कारण एकमात्र भक्ति है। जो मेरी भक्ति से विमुख है वह दान, यज्ञ, तप, विद्या-अध्ययन आदि किसी भी कर्म से मुझे देख नहीं सकता। इसके पश्चात वे शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं -

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैवं द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा।।
तस्माद्भामिनि सङ्क्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम् ।

राम शबरी से कहते हैं कि तुम मेरी भक्ति से युक्त हो इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अब मेरे दर्शन से निसन्देह तुम्हारी मुक्ति हो जाएगी।

स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा।
भक्तिः सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ॥
भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा ।
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥
स्यात्तस्मात्कारणं भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम् ।
प्रथमं साधनं यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु ॥
भवेत्सर्वं ततो भक्तिर्मुक्तिरेव सुनिश्चितम् ।
यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः ।
इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः ।

इसके पश्चात् राम शबरी से सीता के विषय में प्रश्न करते हैं। शबरी सीता तथा के विषय में बताती है तथा सुग्रीव के सहयोग से सीता की प्राप्ति का परामर्श देती है। वह राम से आग्रह करती है जब तक कि मैं अपने शरीर का त्याग करके विष्णु परमधाम को प्राप्त करती हूँ तब तक आप यहीं ठहरिए, मैं आपके सम्मुख ही अग्नि मे प्रवेश करना चाहती हूँ। राम से इस प्रकार संभाषण करने के पश्चात् शबरी अग्नि में प्रवेश करके मोक्ष प्राप्त करती है-

अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन ॥३९॥
मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र यावद्दग्ध्वा कलेवरम् ।
यास्यामि भगवन् राम तव विष्णोः परं पदम् ॥
इति रामं समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम् ।
क्षणान्निधूय सकलमविद्याकृतबन्धनम् ।
रामप्रसादाच्छवरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम् ॥

कम्बरामायण 10,000 श्लोकों का महाकाव्य है, यह छह काण्डों में विभक्त है। इसकी रचना चक्रवर्ती कवि की उपाधि से विभूषित तमिल कवि कम्बन के द्वारा की गई है। विद्वानों ने कम्बन का समय नवी शताब्दी से 12वीं शताब्दी मध्य माना है।तमिल भाषा में रचित होने के कारण मेरे द्वारा मूल ग्रन्थ से अनूदित कम्बरामायण को ग्रहण किया गया है। राष्ट्रभाषा परिषद पटना, बिहार से प्रकाशित इस ग्रन्थ के अनुवादक श्री एन सी राजगोपालन हैं। कम्बरामायण के अरण्यकाण्ड में शबरी मुक्ति पटल नामक अध्याय में शबरी-राम संवाद का वर्णन प्राप्त होता है। इसके पूर्व के कबन्ध पटल में राक्षसरूप धारी गन्धर्व का वध वर्णित है जो अपनी मुक्ति के पश्चात् राम को सीता-अन्वेषण के कार्य को सिद्ध करने के उपाय को जानने के लिए वह उन्हें प्राणियों के लिए माता तुल्य शबरी के पास जाने का परमर्श देता है।

उसके कथनानुसार ही राम दक्षिण दिशा की ओर चलकर पर्वतों और अरण्यों को पार करते हुए मतङ्ग ऋषि के आश्रम में पहुंचे। मतङ्ग ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हुए कम्बरामायण में उसे स्वर्ग लोक के समान कहा गया है। इसी आश्रम में शबरी राम का ध्यान करती हुई तपस्यारत थी राम ने उसके निकट पहुँच कर प्रश्न किया- तुम सुख से तो होना।

इस समय शबरी ने बड़ी भक्ति से राम की स्तुति की और आंखों से अशुद्ध धाराएं बहाते हुए कहा कि अब मेरा माया से युक्त यह सांसारिक बंधन टूट गया। मैं चिरकाल से जो तपस्या करती रही हूं उसका फल प्राप्त हुआ। मेरा जन्म का सङ्कट समाप्त हो गया।

यह कह कर उसने बड़े प्रेम से एकत्र किए हुए फल कन्द आदि लाकर के राम-लक्ष्मण को भोजन कराया। शबरी ने राम से कहा- हे प्रभु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता यहां आए थे और उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारी पवित्र तपस्या का सिद्धिकाल आ गया है। तुम यहाँ कुछ दिन और रहो। जब राम यहाँ आएंगे तो उनका सत्कार करने के पश्चात् हमारे लोकों में आ जाना। आपके आने से आज मेरा सुकृत सफल हो गया है। राम ने उस तपस्विनी के प्रेम को देखकर के कहा है- माता, आपने हमारे मार्गगमन के श्रम को दूर किया है। आपका कल्याण हो।

कम्बरामायण मे वर्णित है कि राम-लक्ष्मण वहाँ कुछ दिन रहे। शबरी ने उन्हें सुग्रीव के स्थान के विषय में बताया। इसके पश्चात शबरी अपनी तपस्या के प्रभाव से इस देह को त्याग करके अनुपम मोक्ष लोक में आनन्दपूर्वक पहुँच गई। कृतिवास रामायण में शबरी का प्रसङ्ग अत्यन्त सङ्क्षेप में वर्णित है।

बांग्ला भाषा की यह रामायण बङ्गाल के सन्त कवि कृतिबास रचित है। कृतिवास रामायण बङ्गभाषियों में उतनी ही लोकप्रिय है जितनी हिन्दीभाषियों में रामचरितमानस। इसका नन्दकुमार अवस्थी ने पद्यानुवाद किया है जो प्रकाशन भवन, लखनऊ से प्रकाशित है। इसी अनुदित संस्करण का इस लेख में उपयोग किया गया हैं।

कबन्ध का उद्धार करने के पश्चात् राम और लक्ष्मण पम्पा सरोवर के समीप स्थित मतङ्ग मुनि के आश्रम के समीप पहुंचते हैं। जहाँ उन्हें शबरी के दर्शन होते हैं।

विगत रैन रवि उदित छबि सहित लखन रघुवीर।
पहुँचे सरित सुहावनी सलिला पम्पा तीर।।
सहित विहंगिनि केलि विहंगा। चिर बिहार जहँ मृगी-कुरंगा ।।
राजहंस - हंसिन जल - क्रीड़ा। निरखि राम अतिशय मन पीड़ा।।
खग मृग टेरि कहत विधि एही। शशिमुखि कतहुँ लखी वैदेही।।
मज्जन तर्पन - पम्पा तीरा। शोध - सुकण्ठ चले रघुबीरा।।
चलि मतङ्गमुनि - आश्रम आये। दरस तहाँ शबरी के पाये न।

शबरी नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर उनकी कुशल पूछती है और कहती है कि बहुत दिनों तक मैं मतङ्ग मुनि की पद सेवा की है और अन्त में वह मुनि मुझे यह कह कर गए कि तुम इस आश्रम में निवास करो जहाँ एक दिन राम आएंगे उनके दर्शन करके तुम्हारी समस्त पाप नष्ट हो जाएंगे। अब मैं आपके दर्शन कर लिए हैं अब अब आप मुझे अपने धाम में स्थान दे यह कहकर वह अग्नि में प्रवेश करती है और राम की कृपा से बैकुण्ठ को प्राप्त होती है-

नयन नेह - जल भरत अपेसू।रामहिं कहेउ यथा आदेसू।।
बहु दिन मुनि मतङ्ग-पद सेवा। अन्त गये सुरपुर सुनिदेवा।।
मुनि के बचन - आश्रम वासू। दिवस एक जहँ राम निवासू ।।
दरस मिलें जब नलिनि-विलोचन।
शबरी ! तब तत्र पाप-विमोचन।।
राम - राम रघुपति श्रीरामा। दासिहिं सदय लेहु निज धामा।।
शुद्ध काठ बहु, चिता सजाई। शबरी पुनि तहँ अनल जराई।।
कौन प्रवेश राम, मन धारी तेहि। साहस प्रभु विस्मय भारी ।।
दहकि शरीर भयेउ जरि कागी ।अहह! धन्य शबरी बढ़भागी।।
जासु अस्मरन मंगल नामा। मुक्ति दैन पावन हरिधामा।।
सो प्रतच्छ पुनि दरसन पाई। शबरी-गतिप्रभु स्वयं बनाई।।
राम प्रसाद पाप तेहि नासू ।अनायास बैकुण्ठ निवासू ।।
राम-चरित-घट-सुधा सो, लहि अरण्य सुख-खानि।
किष्किन्धा गाथा कहत, कवि कृतिवास बखानि।।

तेलुगू रामायण में इस संवाद पर दृष्टिपात करने पर कुछ भिन्नता प्राप्त होती है। रंगनाथ रामायण के नाम से विख्यात यह अपनी सरल, प्रवाहपूर्ण शैली के कारण विद्वानों और लोक दोनों में समान रूप से समादृत है। इसकी रचना गोनबुद्ध राजा ने की है जिसका उल्लेख इस ग्रन्थ के आरम्भ में मिलता है। इस रामायण की रचना उस समय में प्रचलित राम कथा के आधार पर हुई है जो संस्कृत रामायण से कई स्थानों में भिन्न है।रंगनाथ रामायण में भी शबरीवृतान्त अरण्यकाण्ड के अन्तिम भाग में वर्णित है।

यहाँ पर जो राम को शबरी विषय में बताता है वह दनु है जिसे पूर्व में स्वर्ग प्राप्त था। वह शाप के कारण राक्षस वन गया था। वह बताता है कि पम्पा के आस-पास श्रेष्ठ ज्ञानी मतङ्ग मुनि का आश्रम है, उनकी शिष्या शबरी आपका आदर-सत्कार करेगी। उस स्त्री के निवास के पास यदि आप जायें, तो सूर्यपुत्र से आपकी मित्रता होगी, जिसकी सहायता से आप जानकी को प्राप्त कर सकेंगे और साम्राज्य का लाभ भी करेंगे। इस प्रकार कहकर वह स्वर्ग चला गया। राम पम्पा सरोवर के पश्चिम भाग में स्थित **तरु-लता-समूह से विलसित, प्रबल पुण्यों का आवास** शबरी के आश्रम-स्थल में पहुँचे। शबरी ने भक्तिपूर्वक राम के चरणों पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया और उनकी पुनः-पुनः स्तुति करते हुए उनसे कहा – हे रघुराम, मैं आज आपके दर्शन कर सकी। मेरी तपस्या आज सफल हुई। मैने अद्वितीय पुण्यों को प्राप्त किया। हे काकुत्स्थ, मार्ग के श्रम से आप बहुत थक गए होगें, कहीं और न जाकर आज हमारे आश्रम में ठहर जाइए। मैंने अपने गुरु मतङ्ग मुनि के द्वारा आपका वृत्तान्त सुना है। आप आदिदेव है, सर्वनिगमवेद्य है, आपकी स्तुति करना असम्भव है। यह मतङ्ग मुनीन्द्र का आश्रम है; तपश्चर्या से परिपूर्ण तथा विश्रामदायक है। इन प्रकार (उम आश्रम का) महत्त्व बताकर उसने बड़े प्रेम से वन के कन्द, मूल, फल ले जाकर उन्हें दिये। राम ने उन फलों को खाया। राम उस रात को वहीँ ठहर गये और दूसरे दिन शबरी को देखकर बोले-'सीता की वियोगाग्नि से में अत्यन्त व्याकुल हूँ, एक स्थान पर ठहर नही पा रहा हूँ; अव मुझे सीता की खोज के निमित्त जाना है। कृपया आप मुझे आज्ञा दें। तब शबरी बोली- 'दनु नामक देवता ने आपको भविष्य में करने योग्य सभी विषयो को कहा ही है। फिर भी मैं कहूँगी। हे राजन्, आप अवश्य ही रावण का वध करेंगे और सीता को प्राप्त करेंगे। इसमें सन्देह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी आप अकेले मत जाइए। यहाँ से आप ऋष्यमूक पर्वत के निकट जाइए। उम पर्वत पर तीक्ष्ण बुद्धिवाले, सूर्य-पुत्र सुग्रीव नामक वानर राजा रहता है। वह अपने अग्रज के हाथों अपना राज्य तथा अपनी स्त्री को खो चुका है। आप उसका उपकार कीजिए जिससे उसके मन में आपके प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाय। उसके पश्चात् आप उनके साथ लड़का जाइए और अतिशक्तिशाली रावण को युद्ध में मारकर अपने बलविक्रम की ख्याति चारो ओर फैलाते हुए अपनी स्त्री सीता को प्राप्त कीजिए।

इस प्रकार शबरी ने उन्हें भविष्य में करने योग्य सभी कार्य बतलाकर अपने गुरु के वचनों का स्मरण किया। अग्नि में अपना शरीर भस्म करके दिव्य विमान पर आरूढ हो दिव्यलोक को चली गई।

निष्कर्ष(Conclution)-

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि रामायण में शबरी और राम संवाद में शबरी का चित्रण एक सिद्धा, अनन्य तपस्विनी, ज्ञानवती, विज्ञान में अबहिष्कृत, धर्म और कर्म और भक्ति के मर्म को जानने वाली, अपने गुरुजनों में पूर्ण आस्था रखने वाली श्रमणी के रूप में किया गया है। वह गुरुजनों के वचनों के अनुसार चिरकाल तक राम की प्रतीक्षा करती है। उसने गुरुजनों के द्वारा लगाए गए वन की निष्ठापूर्वक रक्षा की है। यहाँ पर राम उसके तप से प्रभावित होते हैं, उसको तपोधने कहकर सम्बोधित भी करते हैं। उसने राम की प्रतीक्षा में बहुत सारे फलों को चुन-चुन कर एकत्र किया हुआ है और उन्हीं से वह उनका आदर सत्कार करती है। वाल्मीकि रामायण में राम के ईश्वर रूप में होने के विशेष वर्णन प्राप्त नहीं होता। अध्यात्म रामायण में शबरी एक विज्ञानवती तपस्विनी की अपेक्षा एक भक्त अधिक है। शबरी भक्त और राम भक्तवत्सल के रूप में हैं। उसे भक्ति के कारण ही राम के दर्शन प्राप्त हुए हैं जो उसके गुरु भी प्राप्त नहीं कर सके-

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैवं द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा।।

यहां राम का चित्रण परमात्मा के रूप में है-**रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः**। इस रामायण में मतङ्गवन का वर्णन नहीं है। कम्बरामायण में शबरी संवाद वाले अध्याय का नाम शबरीमुक्तिपटल रखा गया है जिससे ज्ञात होता है कि राम का वर्णन परमात्मा के रूप में अपेक्षित है। यहाँ पर भी शबरी में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का आधिक्य है। वह राम को देखकर भाव-विभोर हो आंखों से अशुद्ध धाराएं बहाते हुए बड़ी भक्ति से उनकी स्तुति करती है।

कृतिवास रामायण में यह प्रसङ्ग अत्यन्त सङ्क्षेप में वर्णित है। यहाँ शबरी, मतङ्गवन आदि का विशेष वर्णन नहीं किया है। शबरी राम के दर्शन करके अपने शरीर को त्याग देखकर मुक्ति प्राप्त कर लेती है। रंगनाथ रामायण में इस संवाद में कुछ भिन्नता प्राप्त होती है। यहाँ शबरी के विषय में दनु नामक राक्षस बताता है जो शापभ्रष्ट देव है। इस तेलुगु रामायण में मतङ्गऋषि के आश्रम का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इसमें भी शबरी का भाव-विभोर भक्त का रूप ही प्रमुखता से चित्रित है। उत्तर भारत की अत्यधिक प्रसिद्ध रामचरितमानस के राम-शबरीसंवाद पर अध्यात्म रामायण की स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अध्यात्मरामायण की अपेक्षा तुलसी की शबरी भक्तिभाव में और भी अधिक डूबी हुई है। यहाँ पर भी शबरी को राम नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी रामायणों में शबरी- राम-संवाद प्राप्त तो होता है परन्तु उनमें परस्पर भिन्नता भी है। इस पर चिन्तकों, समीक्षकों तथा कवियों की अपनी-अपनी दृष्टि रही है। इसमें आई भिन्नता उनकी दृष्टि एवं आस्था के परिचायक हैं। परवर्ती कवियों ने इसको अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्द्धित एवं परिष्कृत करके राम की लोकोत्तरता तथा उनके वैष्णव रूप को अधिक स्पष्ट एवं प्रासङ्गिक बनाने का प्रयास किया है।

इस संवाद में एक और अत्यधिक रोचक प्रसङ्ग है वह है शबरी के द्वारा कन्दमूल-फल का समर्पण।इस शोधपत्र में जिन रामायणों का अध्ययन किया गया। उन सभी में शबरी श्रद्धा और प्रेमपूर्वक चुनकर रखे गए कन्दमूल फलों का राम को समर्पित करती है। परन्तु कहीं पर भी चखकर झूठे बेर खिलाने का प्रसङ्ग प्राप्त नहीं होता। कृतिवास रामायण में तो फल प्रदान करने का प्रसङ्ग है ही नहीं। प्रोफेसर राधा वल्लभ त्रिपाठी ने **रामायण में शबरी प्रसंग : एक परिचर्चा** में कथावाचस्पति की उपाधि से विभूषित कथावाचक राधेश्याम का उल्लेख किया है जिन्होंने सूरसागर का संदर्भ देते हुए शबरी द्वारा झूठे बेर खिलाए जाने का उल्लेख किया है। यह झूठे बेर का प्रसङ्ग कहां से आ गया इसके विषय में कहना कठिन है। सम्भवतः राम के भक्तवत्सल स्वरूप को और निखारने और भक्तों में जाति-धर्म-योनि आदि का कोई भेदभाव नहीं होता है इस तथ्य की स्थापना करने के लिए इसे रामकथाओं में संयुक्त किया गया। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सभी रामायणों में वर्णित राम-शबरी संवाद में कथानक मूलरूप से समान है जिसमें राम के पतितपावन लोकोत्तर चरित को ही रेखांकित किया है। देशकाल और दृष्टिकोण के प्रभाव से इसमें कुछ भिन्नता आ गई है जो अत्यन्त स्वाभाविक है।

****

सन्दर्भ (References)

1. शब्दकल्पद्रुम
2. वाल्मीकि रामायण. अरण्यकाण्ड 73/23.25
3. वही. अरण्यकाण्ड 74/1.5
4. तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः। पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणी धर्मसंस्थिताम्॥ वही. अरण्यकाण्ड 74/6,7
5. वही. 74/ 8,9
6. वही. 74/10.16
7. वही. 74/17,18
8. वही. 74/19.30

9.तामुवाच ततो रामः शबरी संशितव्रताम् ।अर्चितोऽहं त्वया भक्त्या गच्छ कामं यथासुखम्॥ इत्युक्ता जटिला वृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा । तस्मिन्मुहूर्ते शबरी देहं जीर्ण जिहासती ॥
अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने । ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम सा ॥ दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना । दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना॥ विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः ॥
तत्पुण्यं शबरीस्थानं जगात्मसमाधिना॥ वही. 74ध् 31.35

10. अध्यात्मरामायणए अरण्यकाण्ड दशम सर्ग 1ए2
11. वही. 4.9
12. वही. 12.16
13. वही. 17.19
14. सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥
द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मदुणेरणम् । व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ॥
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्धयाऽमायया सदा ।पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् । मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ॥
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः । वाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ॥
अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि । एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ॥ वही. 22.27
15. वही. 20.22
16. वही. 28.31
17. यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना ॥३२॥ कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना ॥
जानासि सर्वज्ञ सर्वे त्वं विश्वभावन । तथाऽपि पृच्छसे यन्मां लोकाननुसृतः प्रभो ॥
ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राधुना स्थिता । रावणेन हृता सीता लङ्कायां वर्ततेऽधुना ॥
इतः समीपे रामास्ते पम्पानाम सरोवरम् । ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः द्यद्य चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं सुग्रीवो वानराधिपः । भीतभीतः सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रमः द्यद्य वालिनश्च भयादभ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात् । बालिनस्तत्र गच्छ त्वं तेन सख्यं कुरु प्रभो ॥
सुग्रीवेण स सर्वं ते कार्यं सम्पादयिष्यति । वही. 33.38
18. वही. 39.41
19. कम्बरामायण अध्याय 12
20. कृतिवास रामायण अरण्यकाण्ड दोहा 53
21. वही दोहा 54
22. हे दशरथ के वरपुत्रए ताडकाविजयीए कौशिक के यज्ञ के रक्षकए मुनियों के ध्येयए ताडकापुत्रों को दण्ड देनेवालेए परमपवित्र गङ्गानदी के तट पर पैदल चलनेवालेए निर्मल पद.रजवालेए अहल्या के उद्धारकए हर के प्रचण्ड तथा विशाल कोदण्ड को भङ्ग करनेवालेए भयकर भार्गवराम का गर्व तोडनेवालेए अभिराम नामवालेए पितृ.वचन का पालन करने वालेए सत्कीर्त्तिवालेए विराध के कुकर्मों को रोकनेवालेए सफल मुनित्राताए सत्यसपन्नए खर.दूषणादि राक्षसों का शिरच्छेदन करनेवालेए मारीच का वध करनेवालेए सीता.वियोग.जनित मोह से अभिभूत होनेवालेए खगेन्द्र को मोक्ष प्रदान करनेवालेए महान् विक्रम केधामए अति पुण्यप्रद नामवाले… 23. रङ्गनाथ रामायण अध्याय 27
24. रङ्गनाथ रामायण अध्याय 27
25. अध्यात्मरामायणए अरण्यकाण्ड दशम सर्ग 1ए2
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेममगन मुख वचन न आवा। पुनि पुनि पदसरोज सिर नावा।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥
कंदमूलफल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि। प्रेम सहित प्रभु खायेए बारंबार बखानि॥
. रामचरितमानसए अरण्यकाण्ड दोहा 33
26 . रामचरितमानसए अरण्यकाण्ड दोहा 35.36
27. https://www.pashyantee.com/category/radhavallabh-tripathi/
28. भिलनी इस तरह मिली इनसे जिस तरह धर्म धर्मात्मा से
या यों कहिये इस तरह मिली जीवात्मा ज्यों परमात्मा से॥
सुंदर पत्तों ते आसन पर अपने प्रभु को बैठाती है
मेहमानी के कुछ बेरों को डलिया में भर कर लाती है।
वे फल शबरी के जूठे थे ;यह लिखा सूर सागर में हैद्ध
हम भी कहते हैं जो कुछ है सब प्रेम और आदर में है।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) नीति में महिलाओं का स्थान

(रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ.कमल राज सिंह उइके
सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र एव प्रभारी प्राचार्य
शासकीय महाविद्यालय बरका, जिला -सिंगरौली (म.प्र.)

सारांश (Abstract)
यह शोध पत्र सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) नीति के अंतर्गत महिला उद्यमियों की स्थिति का विश्लेषण करता है, विशेषकर मध्य प्रदेश के रीवा जिले के संदर्भ में। अध्ययन में यह पाया गया है कि हालांकि राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय नीतियां महिला सशक्तिकरण और उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापक प्रावधान करती हैं, किंतु रीवा जिले में महिला उद्यमियों को वित्तीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक स्तर पर महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि नीति निर्माण और उनके कार्यान्वयन के बीच एक महत्वपूर्ण अंतराल (Policy-Implementation Gap) विद्यमान है। अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर, लेखक ने रीवा जिले में महिला MSME क्षेत्र को सशक्त करने के लिए कई सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

बीज शब्द (Keywords)-महिला उद्यमिता, MSME नीति, स्वरोजगार, रीवा जिला, सामाजिक सशक्तिकरण, वित्तीय समावेश, लैंगिक न्याय, ग्रामीण विकास, महिला स्वयं सहायता समूह, आर्थिक विकास

प्रस्तावना (Introduction)-भारतीय अर्थव्यवस्था की बुनियाद सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSME) पर निर्मित है। ये उद्यम न केवल राष्ट्रीय जीडीपी में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, बल्कि लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं। भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार, "MSME क्षेत्र कुल रोजगार का लगभग 40 प्रतिशत प्रदान करता है।"[1] इसी महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए, भारत की नीतिनिर्माता संस्थाओं ने समय-समय पर MSME को प्रोत्साहित करने और विकसित करने के लिए विभिन्न नीतियां बनाई हैं।

महिला उद्यमिता भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्टों में कहा गया है कि "महिला उद्यमियों का विकास न केवल लैंगिक समानता लाता है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास को भी गति देता है।"[2] भारत में महिला उद्यमियों की संख्या पिछले दशक में तेजी से बढ़ी है, लेकिन उनकी MSME क्षेत्र में भागीदारी अभी भी पुरुषों की तुलना में काफी कम है। भारतीय उद्यमिता सर्वेक्षण के अनुसार, "भारत में MSME क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी लगभग 20-25 प्रतिशत है, जबकि पुरुषों की भागीदारी 75-80 प्रतिशत है।"[3]

रीवा जिला मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित एक जिला है, जो अपनी कृषि, खनिज और हस्तशिल्प के लिए जाना जाता है। इस जिले की जनसंख्या लगभग 12-13 लाख है, जिसमें बड़ी संख्या में ग्रामीण और जनजातीय समुदाय निवास करते हैं। रीवा जिले में महिला साक्षरता दर 65-70 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत (75%) से कम है।[4] यह स्थिति महिला उद्यमिता के विकास में एक बाधा बन जाती है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य यह है कि रीवा जिले में MSME नीति के अंतर्गत महिला उद्यमियों की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया जाए, उनके समक्ष आने वाली चुनौतियों को चिह्नित किया जाए, और उनके सशक्तिकरण के लिए व्यावहारिक सुझाव दिए जाएं।

1. MSME नीति: एक संक्षिप्त परिचय-सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSME) को परिभाषित करते हुए, "भारतीय सांख्यिकी मंत्रालय ने कहा है कि निवेश और वार्षिक बिक्री के आधार पर ये तीन श्रेणियों में विभाजित हैं: सूक्ष्म उद्यम में निवेश 25 लाख तक होता है, लघु उद्यम में 25 लाख से 5 करोड़ तक, और मध्यम उद्यम में 5 करोड़ से 10 करोड़ तक।"[5] इन उद्यमों का आर्थिक और सामाजिक महत्व भारतीय विकास कार्यक्रमों में प्रमुख स्थान रखता है।

भारत सरकार ने महिला MSME के विकास के लिए कई नीतिगत पहलें की हैं। "2020 में, भारत सरकार ने 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' के तहत महिला उद्यमियों के लिए विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए योजनाएं शुरू कीं, जिनमें वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और बाजार पहुंच शामिल थीं।"[6] राज्य स्तर पर, मध्य प्रदेश सरकार भी 'मुख्यमंत्री महिला उद्यमिता विकास योजना', 'स्वयं सहायता समूह विकास योजना' और अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं को उद्यमिता में प्रोत्साहित कर रही है। MSME नीति के मुख्य उद्देश्य हैं: (क) रोजगार सृजन करना, (ख) आर्थिक विकास को गति देना, (ग) क्षेत्रीय विषमताओं को कम करना, (घ) निर्यात को बढ़ावा देना, और (ड) सामाजिक सशक्तिकरण लाना। इन सभी उद्देश्यों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाना भी एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

2. रीवा जिले में MSME क्षेत्र: वर्तमान स्थिति-
रीवा जिला मध्य प्रदेश का एक आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ जिला है। यहां की मुख्य आर्थिक गतिविधियां कृषि, खनन और हस्तशिल्प केंद्रित हैं। जिले में लगभग 8,000-9,000 MSME इकाइयां पंजीकृत हैं, जिनमें महिलाओं द्वारा संचालित केवल 800-900 इकाइयां (लगभग 10-12 प्रतिशत) हैं।[7] यह अनुपात राष्ट्रीय औसत से भी कम है। रीवा जिले में महिला MSME उद्यमियों के मुख्य क्षेत्र हैं: खाद्य प्रसंस्करण, वस्त्र और कपड़े का व्यवसाय, सौंदर्य सेवाएं, कृषि आधारित उद्यम, और परंपरागत शिल्प। इनमें से अधिकांश उद्यम परिवार-आधारित हैं और दहेज या बचत से शुरू किए गए हैं। "जिले में महिला उद्यमियों का औसत व्यवसायिक अनुभव 3-5 वर्षों का है, जबकि पुरुष उद्यमियों का अनुभव 7-10 वर्षों का है।"[8]

3. महिला MSME उद्यमियों के समक्ष चुनौतियां- रीवा जिले में महिला उद्यमियों को कई बहुआयामी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है:

3.1 वित्तीय चुनौतियां- "वित्तीय अभिगम्यता महिला उद्यमियों के विकास में सबसे बड़ी बाधा है।"[9] भारतीय बैंकिंग प्रणाली में महिलाओं के लिए ऋण प्राप्त करना कठिन होता है, क्योंकि बैंकर महिलाओं को ऋण देने में अधिक जोखिम देखते हैं। रीवा जिले में, "महिला MSME उद्यमियों को बैंक से ऋण मिलने की सफलता दर मात्र 25-30 प्रतिशत है, जबकि पुरुषों के लिए यह दर 55-60 प्रतिशत है।"[10] इसके अलावा, महिलाएं अक्सर बिना जमीन या संपत्ति के होती हैं, जिसे बैंक ऋण के लिए संपार्श्विक (Collateral) के रूप में मांगते हैं। इस कारण, कई महिला उद्यमियों को साहूकारों और अनौपचारिक वित्तीय स्रोतों का सहारा लेना पड़ता है, जहां ब्याज दर बहुत अधिक होती है।

3.2 सामाजिक और सांस्कृतिक चुनौतियां
रीवा जिले में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना महिलाओं के व्यावसायिक स्वायत्तता को सीमित करती है। "कई परिवारों में, महिलाओं को घर के बाहर काम करने की अनुमति

नहीं दी जाती, और उद्यमिता को आमतौर पर एक पुरुष का काम माना जाता है।"[11] सामाजिक जिम्मेदारियों का बोझ—जैसे घरेलू काम, बच्चों की देखभाल, और बुजुर्गों की सेवा—महिलाओं को अपने व्यवसाय पर पूरा ध्यान केंद्रित करने से रोकता है। विवाह के बाद महिलाओं की गतिशीलता भी सीमित होती है, क्योंकि सामाजिक मानदंड महिलाओं को पत्नी और माता के रूप में परिभाषित करते हैं, न कि स्वतंत्र व्यावसायी के रूप में।

3.3 शैक्षणिक चुनौतियां-रीवा जिले में महिला साक्षरता दर कम होने के कारण, अधिकांश महिला उद्यमियों को व्यावसायिक प्रबंधन, बहीखाता (Accounting), और आधुनिक व्यावसायिक कौशल की कमी होती है। "शिक्षा की कमी महिलाओं को सरकारी योजनाओं का लाभ लेने, फॉर्म भरने, और बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ बनाती है।"[12] इसके अलावा, तकनीकी शिक्षा और डिजिटल कौशल की कमी महिलाओं को आधुनिक MSME क्षेत्र में प्रवेश करने से वंचित करती है।

3.4 अवसंरचना और बाजार पहुंच की समस्याएं-रीवा जिले में परिवहन, संचार और बिजली जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। यह महिला उद्यमियों को अपने पण्यों को बाजार तक पहुंचाने में कठिनाई देता है। "महिला MSME उद्यमियों को अपने पणों को बिक्री के लिए स्थानीय बाजार या मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो उन्हें कम कीमत देते हैं।"[13] ई-कॉमर्स और ऑनलाइन विपणन के माध्यम से राष्ट्रीय बाजार में पहुंचने की क्षमता अधिकांश महिला उद्यमियों में नहीं है, क्योंकि उन्हें इंटरनेट और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का ज्ञान नहीं होता।

4. नीति कार्यान्वयन में अंतराल-भारत और मध्य प्रदेश की सरकारों ने कागज पर महिला MSME के विकास के लिए कई आकर्षक योजनाएं प्रस्तुत की हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर उनका कार्यान्वयन बेहद कमजोर है। यह नीति-कार्यान्वयन अंतराल (Policy-Implementation Gap) कई कारणों से उत्पन्न होता है:

4.1 प्रशासनिक कमजोरियां-"जिला और तहसील स्तर पर MSME को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त कर्मचारी और बजट नहीं हैं, जिससे महिला केंद्रित योजनाओं का सही ढंग से प्रचार-प्रसार नहीं हो पाता।"[1] महिलाओं को योजनाओं की जानकारी नहीं मिलती, और जो जानकारी मिलती भी है वह अक्सर अधूरी या गलत होती है।

4.2 संस्थागत बाधाएं-बैंक, सरकारी कार्यालय और विकास संस्थानों में महिला-केंद्रित सेवाओं की कमी है। "अधिकांश बैंकों में महिला उद्यमियों के लिए विशेष काउंटर या सहायता व्यक्ति नहीं हैं।"[15] इसके अलावा, आवेदन प्रक्रिया बहुत जटिल होती है और महिलाओं को इसे पूरा करने में कठिनाई होती है।

4.3 निगरानी और मूल्यांकन की कमी-योजनाओं के कार्यान्वयन की निगरानी बेहद कमजोर है। ""सरकारी स्तर पर इस बात की कोई व्यवस्थित जांच नहीं की जाती है कि महिलाएं वास्तव में योजनाओं का लाभ ले रही हैं या नहीं।"[16] इससे योजनाओं के प्रभाव का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

5. सफल महिला MSME उद्यमियों के उदाहरण-हालांकि रीवा जिले में महिला MSME की स्थिति चुनौतीपूर्ण है, कुछ सफल महिला उद्यमियों के उदाहरण हैं जो प्रेरणादायक हैं। "ये महिलाएं, अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के बावजूद, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से व्यवसाय शुरू करने में सफल रही हैं।"[17] कुछ महिलाएं खाद्य प्रसंस्करण, कपड़ा बनाने, और पारंपरिक शिल्प में सफलता पाई हैं। इन सफल महिलाओं ने अपने स्थानीय समुदाय में अन्य महिलाओं को भी प्रशिक्षण दिया है।इन सफलता की कहानियों से यह स्पष्ट होता है कि यदि उचित नीति समर्थन, वित्तीय पहुंच, और सामाजिक सहायता दी जाए, तो रीवा जिले में महिला MSME क्षेत्र में तेजी से विकास संभव है।

6. महिला MSME सशक्तिकरण के लिए सुझाव

रीवा जिले में महिला MSME को सशक्त करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

6.1 वित्तीय सुधार

- महिला उद्यमियों के लिए ब्याज दरों में छूट दी जानी चाहिए।
- "बैंकों को महिलाओं के लिए संपार्श्विक-मुक्त ऋण योजनाएं शुरू करनी चाहिए, क्योंकि महिलाओं के पास अक्सर संपत्ति नहीं होती।"[18]
- माइक्रो-फाइनेंस संस्थाओं को लक्ष्य-निर्धारित तरीके से काम करना चाहिए, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

6.2 शैक्षणिक सुधार

- स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से व्यावसायिक प्रबंधन और बहीखाता प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, ताकि महिलाएं ऑनलाइन बाजार में प्रवेश कर सकें।
- तकनीकी कौशल विकास के लिए सरकार द्वारा विशेष प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जाने चाहिए।

6.3 सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार

- महिला उद्यमिता के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए व्यापक जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए।
- सामुदायिक नेताओं, धार्मिक प्रभावशाली व्यक्तियों, और परिवारों को महिला उद्यमिता का समर्थन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
- "महिला सशक्तिकरण को एक सांस्कृतिक मूल्य के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए, न कि केवल एक आर्थिक आवश्यकता के रूप में।"[19]

6.4 अवसंरचनात्मक विकास

- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क, बिजली और संचार सुविधाओं में निवेश बढ़ाया जाना चाहिए।
- महिला उद्यमियों के लिए सामान्य उत्पादन केंद्र (Common Production Centers) स्थापित किए जाने चाहिए, जहां वे उचित मूल्य पर उपकरण किराए पर ले सकें।
- ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्मों तक पहुंच प्रदान करने के लिए सामुदायिक कंप्यूटर केंद्र खोले जाने चाहिए।

6.5 प्रशासनिक सुधार

- महिला MSME के प्रचार के लिए जिले में एक अलग विभाग या समन्वय इकाई स्थापित की जानी चाहिए।
- प्रशासकीय प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाना चाहिए, ताकि महिलाएं आसानी से योजनाओं के लिए आवेदन कर सकें।
- "समय-समय पर योजनाओं के कार्यान्वयन की स्वतंत्र ऑडिट की जानी चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि महिलाएं वास्तव में लाभान्वित हो रही हैं।"[20]

निष्कर्ष (Conclusion)-रीवा जिले में MSME नीति में महिलाओं की स्थिति एक गंभीर चिंता का विषय है। भले ही राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने की नीतियां हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर उनका कार्यान्वयन अपर्याप्त है। महिला उद्यमियों को वित्तीय, सामाजिक, शैक्षणिक, और संस्थागत स्तर पर कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हालांकि, कुछ सफल महिला उद्यमियों के उदाहरण यह दर्शाते हैं कि यदि सही समर्थन दिया जाए, तो रीवा जिले में महिला MSME क्षेत्र में तेजी से विकास संभव है। इस विकास के लिए आवश्यक है: (1) वित्तीय प्रणाली में सुधार,

विशेषकर संपार्श्विक-मुक्त ऋण योजनाएं, (2) महिलाओं के लिए शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रमों में निवेश, (3) सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करने के लिए जागरूकता अभियान, (4) अवसंरचनात्मक विकास, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, और (5) प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाना और निगरानी को मजबूत करना। यह शोध पत्र इस बात को रेखांकित करता है कि "महिला MSME सशक्तिकरण केवल एक आर्थिक मुद्दा नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है।"[21] रीवा जिले जैसे पिछड़े क्षेत्रों में महिला MSME को प्रोत्साहित करने से न केवल महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकती हैं, बल्कि पूरे क्षेत्र का सामाजिक और आर्थिक विकास भी संभव है।

****

संदर्भ सूची (References)

1. भारत सरकार, उद्योग मंत्रालय (2023)। "सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास नीति", नई दिल्ली।
2. संयुक्त राष्ट्र संस्था (2022)। "Women Entrepreneurship and Economic Development Report", न्यूयॉर्क।
3. भारतीय उद्यमिता सर्वेक्षण (2022)। "Women in MSME: A National Study", दिल्ली।
4. मध्य प्रदेश सरकार, शिक्षा विभाग (2023)। "मध्य प्रदेश में महिला साक्षरता सूचकांक", भोपाल।
5. भारतीय सांख्यिकी मंत्रालय (2023)। "MSME Definitions and Classifications", नई दिल्ली।
6. भारत सरकार, वित्त मंत्रालय (2020)। "आत्मनिर्भर भारत अभियान योजना", नई दिल्ली।
7. रीवा जिला प्रशासन (2022)। "जिले में MSME इकाइयों का विवरण", रीवा।
8. अखिल भारतीय उद्यमिता संस्थान (2023)। "Women Entrepreneurs in Central India: A Longitudinal Study", इंदौर।
9. भारतीय बैंकिंग एसोसिएशन (2023)। "Credit Access for Women Entrepreneurs", मुंबई।
10. रीवा जिला सहकारी बैंक संस्थान (2022)। "Women Entrepreneurs and Loan Accessibility Report", रीवा।
11. सामाजिक विज्ञान अनुसंधान संस्थान (2021)। "Gender and Entrepreneurship in Rural India", भोपाल।
12. शिक्षा और कल्याण संगठन (2022)। "Impact of Literacy on Women Entrepreneurship", दिल्ली।
13. ग्रामीण विपणन अनुसंधान केंद्र (2023)। "Market Access for Rural Women Entrepreneurs", गुड़गांव।
14. लोक प्रशासन अनुसंधान संस्थान (2022)। "MSME Development: Administrative Challenges", नई दिल्ली।
15. बैंकिंग अनुसंधान और विकास संस्थान (2023)। "Banking Services for Women Entrepreneurs", मुंबई।
16. राजनीति विज्ञान अनुसंधान संस्थान (2022)। "Monitoring and Evaluation of Development Schemes", नई दिल्ली।
17. स्वयं सहायता समूह विकास संस्थान (2023)। "Success Stories of Women Entrepreneurs", नागपुर।
18. वैश्विक बैंकिंग विकास संस्थान (2023)। "Collateral-Free Lending Models", वाशिंगटन।
19. सांस्कृतिक विकास और सामाजिक परिवर्तन संस्थान (2022)। "Women Empowerment as Cultural Value", कोलकाता।
20. सुशासन और नीति विश्लेषण केंद्र (2023)। "Audit and Accountability in Development Programs", नई दिल्ली।
21. राष्ट्रीय विकास अनुसंधान संस्थान (2023)। "Women's Economic Empowerment and National Development", नई दिल्ली।

विज्ञान और तकनीक में भारतीय पारंपरिक ज्ञान की भूमिका: समाजशास्त्रीय विश्लेषण

मनजीत सिंह
पीएच.डी. शोधार्थी
समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय ईमेल: manjeetcuhp730@gmail.com

डॉ. विश्व ज्योति
सहायक/सह-प्राध्यापक
समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय

सारांश
भारतीय समाज ने सदियों से ज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पारंपरिक ज्ञान प्रणाली, जिसे अक्सर विज्ञान के पूर्व आधुनिक रूप' के रूप में देखा जाता है, न केवल प्राकृतिक और सामाजिक जीवन के प्रबंधन में उपयोगी रही है बल्कि यह भारतीय संस्कृति और सामाजिक संरचना के साथ गहराई से जुड़ी हुई है, इस शोध का उद्देश्य भारतीय पारंपरिक ज्ञान और विज्ञान एवं तकनीक के विकास के बीच संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है, ये ज्ञान केवल तकनीकी कौशल तक सीमित नहीं थे बल्कि सामाजिक नियमों, सांस्कृतिक प्रथाओं और धार्मिक विश्वासों के साथ जुड़े हुए इस शोध का उद्देश्य समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह विश्लेषित करना है।कि कैसे भारतीय पारंपरिक ज्ञान ने सामाजिक संरचना सांस्कृतिक मूल्यों और सामुदायिक व्यवहार को आकार दिया और आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के साथ उसका संवाद किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। यह अध्ययन गुणात्मक पद्धतियों पर आधारित हैI ऐतिहासिक विश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन। सामाजिक विश्लेषण के माध्यम से यह दर्शाया गया है। कि पारंपरिक ज्ञान के संचयन और हस्तांतरण की प्रक्रिया सामाजिक संस्थाओं परिवारों एवँ समुदायों के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान में सामुदायिक भागीदारी और अनुभव आधारित शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था। आधुनिक विज्ञान ने तकनीक एवम औद्योगिक प्रगति को तेज किया,लेकिन भारतीय पारंपरिक ज्ञान में मौजूद स्थानीय संसाधनों के संरक्षण सतत विकास और सामाजिक प्रथाओं के समन्वय में अद्वितीय योगदान है। इसलिए आधुनिक विज्ञान और तकनीक के विकास में पारंपरिक ज्ञान के तत्वों का समन्वय करना आवश्यक है। इससे न केवल तकनीकी नवाचार को बढ़ावा मिलेगा बल्कि समाज और पर्यावरण के संतुलन को भी बनाए रखा जा सकेगा। यह शोध यह सुझाव देता है कि भारतीय पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच संवाद स्थापित करना सामाजिक विकास और तकनीकी नवाचार के लिए नई संभावनाओं को जन्म दे सकता है। यह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण न केवल ज्ञान के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करता है, बल्कि यह भविष्य में विज्ञान और तकनीक के साथ पारंपरिक ज्ञान के समन्वय के महत्व को भी उजागर करता है।

शोध के मुख्य बिंदु :
विज्ञान,तकनीक,भारतीय,पारंपरिक,ज्ञान,आयुर्वेद,ऐतिहासिक,दृष्टिकोण

भूमिका = भारत एक बहुसांस्कृतिक बहुभाषी और ऐतिहासिक रूप से समृद्ध देश है जहाँ ज्ञान की परम्परागत प्रणालियाँ गहराई से समाज संस्कृति और दैनिक जीवन में व्याप्त हैं। इन प्रणालियों में न केवल व्यावहारिक आयोजनों की समझ नही है बल्कि उनका सामाजिक महत्व भी है। पारंपरिक ज्ञान का अर्थ सिर्फ तकनीकी कौशल या वैज्ञानिक आकड़ो नहीं है। यह सामाजिक मूल्यों, धार्मिक विश्वासों,

पारिवारिक प्रथाओं सामुदायिक संबंधों और सांस्कृतिक पहचान का भी एक ताना बाना है। पारंपरिक ज्ञान प्रणाली ने भारतीय समाज में लंबे समय तक विज्ञान और तकनीक के विकास में योगदान दिया। उदाहरण स्वरूप,आयुर्वेद न केवल एक चिकित्सा प्रणाली है, बल्कि यह जीवन शैली, आहार, स्वास्थ्य व्यवहार और बीमारी नियंत्रण में उपयोगी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। खगोलशास्त्र गणित और वास्तुकला की पारंपरिक पद्धतियों ने न केवल खगोल और रचनात्मक डिजाइन या रूपरेखा में योगदान किया बल्कि सामाजिक समय संवेग पर भी गहरा प्रभाव डाला किया। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, पारंपरिक ज्ञानसंचयन और उसका हस्तांतरण सामाजिक संस्थाओं जैसे परिवार, गुरु शिष्य प्रणाली, समुदाय के माध्यम से होता था। इस प्रकार, यह ज्ञान केवल तकनीकी ज्ञान नहीं था, बल्कि सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा था।जब आधुनिक विज्ञान और तकनीक का युग आया, तो कई बार इस पारंपरिक ज्ञान को कम आंका गया या उपेक्षित किया गया। लेकिन पिछले कुछ दशकों में,अंतरराष्ट्रीय और भारतीय शोध में यह स्पष्ट हो गया है कि पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच संतुलन और सहयोग न केवल संभव है, बल्कि लाभदायक भी है।भारत के वैज्ञानिक जैसे आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, नागार्जुन आदि ने अपने ग्रंथों के माध्यम से विज्ञान और गणित की नींव को सशक्त किया। आज जब हम वैज्ञानिक नवाचारों और तकनीकी विकास की दौड़ में अग्रसर हैं, तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम पारंपरिक ज्ञान की पुनःसमीक्षा करें और उसकी वैज्ञानिक प्रासंगिकता को समझें। पारंपरिक तकनीकें,जैसे जल संचयन की प्रणालियाँ,धातु विज्ञान, चिकित्सा, कृषि विधियाँ सभी अपने समय में अत्यंत उन्नत थीं और आज भी पर्यावरणीय संकट,स्वास्थ्य संकट और तकनीकी असमानता जैसे मुद्दों से निपटने में सहायक हो सकती हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली को "संपूर्ण" इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह केवल किसी एक विषय तक सीमित नहीं थी, बल्कि जीवन के विविध पहलुओं स्वास्थ्य, खगोल, भूगोल, कृषि, समाज, निर्माण और आचार को अपने भीतर समाहित करती थी। इसीलिए इसे 'होलिस्टिक' ज्ञान प्रणाली के रूप में देखा जाता है, जो समग्र जीवन दृष्टिकोण पर आधारित थी (Kapoor, 2001). आधुनिक समाज में जब तकनीक ने मानव जीवन को गति तो दी है, वहीं उसने मानवता, प्रकृति और परंपराओं से दूरी भी बढ़ा दी है। ऐसे समय में भारतीय पारंपरिक ज्ञान एक संतुलन प्रदान कर सकता है, जो तकनीक और मानवता के बीच सेतु का कार्य करे। यह शोधपत्र इसी विचार को केंद्र में रखकर पारंपरिक ज्ञान की वैज्ञानिकता एवं आधुनिक उपयोगिता का मूल्यांकन करता है (Miche, 2010). पर्यावरण और विज्ञान में वैदिक योगदान इस शोध में यह भी देखा गया है कि पारंपरिक ज्ञान केवल ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका स्वरूप सार्वभौमिक और व्यावहारिक है। उदाहरणतःआयुर्वेद और योग को आज पूरे विश्व में चिकित्सा और जीवनशैली सुधार के वैकल्पिक साधन के रूप में अपनाया जा रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक ज्ञान की वैज्ञानिकता वैश्विक स्तर पर स्वीकार्य बन चुकी है। (World Health Organization WHO Report on Traditional Medicine Strategy, 2014 - 2023). भारतीय पारंपरिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान से इस मायने में अलग है कि वह केवल मशीनी नवाचार नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक आयामों को भी साथ लेकर चलता है। यही कारण है कि आज "इंटीग्रेटेड साइंस" और "इको-सेंट्रिक डेवलपमेंट" जैसे मॉडल पुन भारतीय संदर्भों की ओर झुक रहे हैं। (Shiva, 1988). इस शोध का लक्ष्य इस बात को सिद्ध करना है कि पारंपरिक ज्ञान न केवल प्राचीन है बल्कि प्रासंगिक भी है, और इसकी वैज्ञानिक पुनर्व्याख्या करके हम सामाजिक, पर्यावरणीय और तकनीकी संकटों के समाधान खोज सकते हैं। पारंपरिक और आधुनिक ज्ञान के मध्य संवाद स्थापित कर भविष्य की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकते हैं (Ranga, 1995). आज जब भारत "मेक इन इंडिया", "डिजिटल इंडिया", और "आत्मनिर्भर भारत" की ओर बढ़ रहा है, तब यह और भी जरूरी हो गया है कि हम अपने ही देश के पारंपरिक संसाधनों और ज्ञान प्रणालियों को पहचानें और उन्हें आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़ें। इससे न केवल वैश्विक स्तर पर भारत की स्थिति मजबूत होगी, बल्कि स्थानीय समस्याओं का समाधान भी अधिक प्रभावी ढंग से भारतीय परंपरागत ज्ञान की प्रमुख विधाएँ कौन कौन सी हैं, और उनका समाजशास्त्रीय महत्व क्या है सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों और सामुदायिक व्यवहार में पारंपरिक ज्ञान ने किस प्रकार योगदान दिया है साहित्य समीक्षा पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच संबंध पर पिछले कुछ दशकों में बहुत शोध हुआ है। नीचे हम प्रमुख दृष्टिकोणों और अध्ययन को सारांशित कर रहे हैं। आयुर्वेद और चिकित्सा दृष्टिकोण आयुर्वेद केवल चिकित्सा उपकरण नहीं था बल्कि यह जीवनशैली, आहार और सामाजिक स्वास्थ्य का एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता था। आयुर्वेदिक ग्रंथों में न केवल रोग उपचार की विधियाँ हैं, बल्कि बीमारी के कारणों, रोग प्रतिरोधक क्षमता, पोषण विज्ञान, मनोविज्ञान और आध्यात्मिकता पर भी गहरी समझ है। राजा (2015) ने अध्ययन किया है कि किस प्रकार आधुनिक बायोफार्मास्युटिकल शोध आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों, हर्बल अर्कों और पारंपरिक फार्मूला पर आधारित है। यह शोध दर्शाता है कि पारंपरिक ज्ञान आधुनिक दवा अनुसंधान और विकास में एक अमूल्य संसाधन बन सकता है।योग और समाज उन्होंने तर्क दिया कि योग सिर्फ शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह मानसिक संतुलन, प्रबंधन तनाव और सामाजिक संबंधों में भी महत्वपूर्ण है। इससे यह समझ में आता है कि कैसे योग ने सामाजिक संरचनाओं और समूह अन्तरक्रियाओं को प्रभावित किया। वर्मा (2019) के के अनुसार में यह दिखाया गया है कि योग अभ्यास समुदायों में सांस्कृतिक पहचान बनाने, पारस्परिक समर्थन और सामूहिक पहचान को मजबूत करने में सहायक रहा है। खगोलशास्त्र, गणित और समय सिंह (2018) के अनुसार में यह वर्णित है कि प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र और गणितीय पद्धतियाँ, जैसे पंचांग, ज्योतिष, स्थानमिति और ज्यामिति, सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग थे। समय मापन, ऋतुओं का निर्धारण, कृषि चक्र और धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन इन ज्ञान प्रणालियों पर आधारित था। सिंह यह भी बताते हैं कि आधुनिक खगोल विज्ञान और गणितीय मॉडलिंग इन प्रणालियों से प्रेरणा ले सकती है। कृषि, जल प्रबंधन और पर्यावरण सैद्धान्तिक आधार यह शोध मुख्यतः**निम्नलिखित समाजशास्त्रीय एवं ज्ञान सिद्धांतों पर आधारित है** संरचना सिद्धांत एंथोनी गिडेंस के संरचनात्मक सिद्धांत के अनुसार, समाज संरचनाएँ और एजेंट (व्यक्ति) परस्पर क्रिया में रहते हैं। पारंपरिक ज्ञान प्रणाली में, सामाजिक संरचनाएँ जैसे परिवार, गुरुशिष्य परंपरा, धार्मिक समूह ज्ञान के संचयन और हस्तांतरण में एजेंट की भूमिका को सीमित नहीं करतीं बल्की उसे सक्षम भी बनाती हैं। उसी समय, एजेंट ज्ञान धारक सामाजिक संरचनाओं को पुनरुत्पादित एवं बदलने की क्षमता रखते हैं। इस सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य से, पारंपरिक ज्ञान न सिर्फ संरचनाओं द्वारा बनाए रखा जाता है,बल्कि समाज में बदलाव और नवाचार के लिए एजेंटों के माध्यम से पुनर्कल्पित भी किया जाता है। ज्ञान समाजशास्त्र-पीटर बर्गर और थॉमस लुकमैन द्वारा प्रस्तावित इस दृष्टिकोण के अनुसार, वास्तविकता का निर्माण सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है। पारंपरिक ज्ञान,समाज में निहित विश्वासों, सांस्कृतिक व्यावहारिकताओं और

अनुभवों का परिणाम है। इसका अर्थ है कि वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान भी सामाजिक संरचनाओं, मान्यताओं और सांस्कृतिक संदर्भों के भीतर निर्मित होता है। इस शोध के लिए यह सैद्धांतिक आधार महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच संवाद की व्याख्या करने में मदद करता है। ज्ञान आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ मिलकर काम करता है, तो यह नवाचार का स्रोत बन सकता है न सिर्फ आर्थिक लाभ के लिए बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए भी। विज्ञान और तकनीक में भारतीय पारंपरिक ज्ञान की भूमिका **एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण भारतीय समाजशास्त्र की दृष्टि से पारंपरिक ज्ञान प्रणालियाँ** विज्ञान और तकनीक में केवल ऐतिहासिक योगदान नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। यह ज्ञान न केवल तकनीकी समाधान प्रदान करता है, बल्कि समाज में पहचान, शक्ति और समरसता के प्रश्न भी जन्म देता है। **पहला आयाम है पहचान और वित्तीय मूल्य।** पारंपरिक ज्ञान, जैसे आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र, स्थानीय कृषि और जल प्रबंधन पद्धतियाँ, आधुनिक विज्ञान के साथ जुड़कर स्थानीय समुदायों को अपनी पहचान पुन स्थापित करने का अवसर देती हैं। यह ज्ञान पश्चिमी वैज्ञानिक मॉडल के अतिरिक्त वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो स्थानीय परिस्थितियों और संसाधनों के अनुरूप अधिक प्रभावी साबित हो सकता है।**दूसरा आयाम है सामाजिक संस्थागत संरचना** पारंपरिक ज्ञान व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित नहीं रहता बल्कि समुदाय गुरु शिष्य परंपरा और सांस्कृतिक संस्थानों के माध्यम स संचरित होता है। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से यह समझना महत्वपूर्ण है कि कैसे यह ज्ञान सामाजिक नेटवर्क, सांस्कृतिक प्रथाओं और संस्थागत सहयोग के माध्यम से विकसित और प्रसारित हुआ। उदाहरण स्वरूप, जल प्रबंधन और कृषि तकनीकें स्थानीय अनुभव और सहयोगात्मक प्रयासों का परिणाम रही हैं। **तीसरा आयाम है नवोन्मेष और क्रियात्मक उपयोगिता।** आधुनिक विज्ञान में पारंपरिक ज्ञान का समावेश शोध, नवाचार एवं तकनीकी समाधान में सहायक हो सकता है। सूक्ष्म भूगोल उपाय, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और आयुर्वेदिक तकनीकें उदाहरण हैं। इससे सामाजिक दृष्टि से समुदायों की भागीदारी बढ़ती है और ज्ञान उत्पादन में सामाजिक न्याय का अवसर मिलता है। लेकिन पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान में शामिल करते समय चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। इनमें मानकीकरण और प्रमाण की कठिनाइयाँ,शक्ति और असमानता के सवाल, और संस्कृति बनाम व्यावसायीकरण शामिल हैं। ने भारतीय पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा और दस्तावेज़ीकरण कर इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाई **समाजशास्त्रियों के लिए यह विश्लेषण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दिखाता है कि पारंपरिक ज्ञान केवल पुराना या ऐतिहासिक नहीं है।** यह सामाजिक संरचनाओं समुदाय और विज्ञान के बीच एक सेतु का कार्य करता है। इस ज्ञान का आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ सहयोग केवल तकनीकी समाधान नहीं बल्कि सामाजिक न्याय, सामुदायिक सहभागिता और सांस्कृतिक संरक्षण का अवसर भी प्रदान करता है। इस प्रकार, भारतीय पारंपरिक ज्ञान ने विज्ञान और तकनीक के विकास में सक्रिय भूमिका निभाई है। **समाजशास्त्रीय दृष्टि से इसे समझना जरूरी है** ताकि समाज में इसके मूल्य, सामाजिक प्रसार और नवोन्मेषी संभावनाएँ सही तरह से पहचानी जा सकें। यह केवल एक ऐतिहासिक योगदान नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी सहायक संसाधन है। विज्ञान और तकनीक में भारतीय पारंपरिक ज्ञान समाजशास्त्रीय विश्लेषण भारतीय पारंपरिक ज्ञान विज्ञान और तकनीक के विकास में सिर्फ ऐतिहासिक योगदान नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से इसे समझने के लिए मुख्य रूप से कुछ आयाम देखे जा सकते हैं। पहचान और सांस्कृतिक मूल्य पारंपरिक ज्ञान,जैसे आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र और स्थानीय कृषि तकनीकें, स्थानीय समुदायों को अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं सामाजिक सम्मान लौटाने का माध्यम बनती हैं। यह ज्ञान पश्चिमी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करता है।

और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अधिक व्यवहारिक साबित होता है।सामाजिक संस्थागत प्रसार यह ज्ञान व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित नहीं रहता बल्कि समुदाय गुरु शिष्य परंपरा और सांस्कृतिक संस्थानों के माध्यम से संचरित होता है। **समाजशास्त्रियों के लिए यह महत्वपूर्ण है** कि वे समझें कैसे पारंपरिक ज्ञान सामाजिक नेटवर्क और सांस्कृतिक तंत्र के जरिए विकसित और संरक्षित होता है। उदाहरण स्वरूप जल प्रबंधन और कृषि पद्धतियाँ सामूहिक प्रयासों और स्थानीय अनुभवों का परिणाम रही हैं। विश्लेषण पारंपरिक ज्ञान की विविध विधाएँ और उनका समाजशास्त्रीय महत्व आयुर्वेद और स्वास्थ्य व्यवहार साक्षात्कार और साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट हुआ कि आयुर्वेद सिर्फ बीमारियों का इलाज करने वाला तंत्र नहीं था, बल्कि यह एक समग्र जीवन दर्शन था। पारंपरिक चिकित्सकों ने रोग नियंत्रण में सामाजिक व्यवहार आहार जीवनशैली और वनस्पति आधारित नुस्खों का उपयोग किया।समाजशास्त्रीय दृष्टि से आयुर्वेद ने समुदायों में स्वास्थ्य चेतना और सामूहिक परिचर्चा का एक मंच प्रदान किया। उदाहरण स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में आयुर्वेदिक जड़ी बूटियाँ एक पारिवारिक संसाधन होती थीं जिन्हें स्थानीय बुजुर्गों से सीखकर अगली पीढ़ी में साझा किया जाता था। योग और सामुदायिक जीवन फील्ड अवलोकन में यह पाया गया कि योग केंद्रों आश्रम, पंचायत केंद्र, गांव स्थल में सामाजिक सहभागिता बहुत अधिक होती है। लोग योग अभ्यास में न केवल शारीरिक लाभ के लिए आते हैं, बल्कि सामाजिक नेटवर्क बनाने सांस्कृतिक पहचान को पुनर्स्थापित करने और आध्यात्मिक संवाद में भाग लेने के लिए भी शामिल होते हैं। **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से योग समूहों ने स्थानीय पहचान और सामूहिक पहचान को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।** युवा पीढ़ी में योग का पुनरुत्थान न केवल स्वास्थ्य लाभ के लिए संभव हुआ है, बल्कि यह सांस्कृतिक पुनरावृत्ति का भी साधन बन गया है। खगोलशास्त्र, समय मापन और धार्मिक अनुष्ठान पारंपरिक खगोलशास्त्र और गणितीय पद्धतियाँ धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों के आयोजन में केंद्रीय भूमिका निभाती थीं मंदिर पुजारियों और ज्योतिषाचार्यों के विचारो एवं उनके साथ की गयी बातचीत में मंदिर पुजारियों और ज्योतिषाचार्यों के अनुसार प्राचीन पंचांग एवं खगोलीय गणनाएँ धार्मिक तिथियों, त्योहारों और कृषि चक्रों को निर्धारित करने के लिए आज भी उपयोग होती हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से, ये पद्धतियाँ समय संवेग की सामूहिक समझ को बनाए रखने में सहायक रही हैं। यह न केवल धार्मिक व्यवस्था को सुविधा देती है, बल्कि सामाजिक तालमेल और सामूहिकता का अहसास भी बनाती कृषि, जल प्रबंधन और पारिस्थितिकी अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि पारंपरिक जल संरचनाएँ जैसे बावड़ियाँ,तालाब प्राकृतिक नालें न केवल उपयोगी जल भंडारण संरचनाएँ थीं बल्कि सामुदायिक सहयोग और पारिस्थितिकी संतुलन के केंद्र भी थीं। में ग्रामीण बुजुर्गों ने बताया कि बारिश के मौसम में समुदाय के सदस्य मिलकर तालाबों की देखभाल करते थे, जल स्तर का नियंत्रण करते थे और प्राकृतिक संसाधनों का साझा प्रबंधन सुनिश्चित करते थे। **समाजशास्त्रीय दृष्टि से, इस तरह की संरचनाएँ स्थानीय स्वशासन एवं सामाजिक जिम्मेदारी का प्रतीक थीं हस्तशिल्प एवं सांस्कृतिक ज्ञान हस्तशिल्प जैसे कपड़ा बुनाई** मिट्टी के बर्तन लकड़ी का कारिगरी आदि में पारंपरिक तकनीकें केवल उपयोगात्मक नहीं थीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और आर्थिक स्थिरता का ज़रिया थीं। साक्षात्कार में हस्तशिल्प कारीगरों ने यह बताया कि ये तकनीकें पीढ़ी दर पीढ़ी परिवारों में हस्तांतरित होती थीं, और इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था और सामाजिक नेटवर्क को मजबूती मिलती थी। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह एक ऐसा मॉडल था जिसमें कला, ज्ञान और जीवन निर्वाह का एकीकृत स्वरूप था। पारंपरिक ज्ञान का संचयन और हस्तांतरण और सामाजिक संरचनाओं का मॉडल समाजशास्त्रीय विश्लेषण बताते हैं कि पारंपरिक ज्ञान का संचयन और हस्तांतरण मुख्यतः निम्न संरचनाओं के माध्यम से होता रहा है: गुरु शिष्य परंपरा गुरु शिष्य प्रणाली भारतीय परंपरागत ज्ञान का एक प्रमुख स्तंभ रही है। आयुर्वेदाचार्य, हस्तशिल्प

गरू, ज्योतिषाचार्य आदि अपने शिष्यों को न केवल तकनीकी ज्ञान सिखाते थे, बल्कि जीवन मूल्य, सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों का भी प्रशिक्षण देते थे। यह संरचना न केवल ज्ञान का संरक्षण करती थी, बल्कि सामाजिक पहचान और विश्वसनीयता को भी बनाए रखती थी। पारिवारिक और घरेलू हस्तांतरण बहुत सी तकनीकें और ज्ञान घरेलू स्तर पर पारिवारिक सदस्यों के बीच हस्तांतरित होते थे। उदाहरण के लिए, खेती और जल प्रबंधन में उपयोग होने वाली पारंपरिक विधियाँ अक्सर माता पिता से बच्चों को सिखाई जाती थीं।हस्तशिल्प कारीगरों के परिवारों में बच्चों को बचपन से ही गुरू घर के आसपास काम करना पड़ता था, और इसी दौरान वे ज्ञान सीखते और अनुभव प्राप्त करते थे। इससे यह सुनिश्चित होता था कि ज्ञान का प्रसार और निरंतरता बरकरार रहे। सामुदायिक संरचनाएँ समुदायों में पारंपरिक ज्ञान साझा करने के लिए सामाजिक संस्थाएँ थीं जैसे पंचायत, धार्मिक समूह, संगठित त्योहार, ग्रामीण मेलों और ज्ञान समारोहों। कई शोधकर्ता बायोफ़ार्मास्युटिकल कंपनियों यूनिवर्सिटी लैब्स और चिकित्सा संस्थाओं के साथ मिलकर ऐसे अध्ययन कर रहे हैं,जिनमें पारंपरिक औषधीय पौधों का रासायनिक विश्लेषण,उनकी प्रभावशीलता और सुरक्षा का आकलन किया जाता है। यह न केवल नई दवाओं की खोज को सक्षम बनाता है, बल्कि स्थानीय समुदायों के ज्ञान की पारिस्थितिकी और जल संरक्षण पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणालियाँ बावड़ियाँ, तालाब, प्राकृतिक नदियाँ को आधुनिक जल संरक्षण नीतियों में शामिल किया जा रहा है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से, ऐसे प्रयास स्थानीय जन भागीदारी को प्रोत्साहित करते हैं, सामुदायिक स्वशासन को सशक्त करते हैं और जल संसाधनों के समुचित कृषि नवाचार पारंपरिक कृषि विधियों जैसे मिश्रित खेती जैव विविधता संरक्षण, प्राकृतिक उर्वरकों आदि को आधुनिक कृषि प्रणाली में पुनर्जीवित किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, कृषकसहकारी समितियाँ और गैर सरकारी संगठन उन तकनीकों को जियो वैज्ञानिक और जैव तकनीकी शोध के साथ जोड़ रहे हैं ताकि कम लागत, **पर्यावरण के अनुकूल और अधिक उत्पादक कृषि मॉडल तैयार किया जा सके।** इस दृष्टि से, पारंपरिक और वैज्ञानिक ज्ञान के अधिगमन से न केवल उत्पादन बढ़ सकता है, बल्कि पौष्टिकता और शैक्षणिक संस्थानों और नीति निर्माताओं द्वारा पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित और प्रोत्साहित करने की दिशा में कई कदम उठाए गए हैं। विश्वविद्यालयों में पारंपरिक ज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है जैसे आयुर्वेद,योग, पारंपरिक पर्यावरण प्रबंधन के पाठ। इसके अलावा,सरकारें और संगठन स्थानीय समुदायों, ज्ञान धारकों और वैज्ञानिकों के बीच भागीदारी बढ़ाने पर जोर दे रही हैं। इस तरह, ज्ञान नीति पारंपरिक और आधुनिक नवाचार और आर्थिक विकास जब पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान मिलकर काम करते हैं, तो नवाचार की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। यह न सिर्फ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नवाचार है, बल्कि सामाजिक नवाचार भी है जैसे सामुदायिक चालित पर्यावरणीय प्रबंधन मॉडल, स्वास्थ्य न्यूनतम मेडिसिन वितरण,और सांस्कृतिक पर्यटन आधारित आर्थिक गतिविधियाँ। इस प्रकार, पारंपरिक विज्ञान और आधुनिक तकनीक का संयोजन आर्थिक समृद्धि, सामाजिक समरसता और पर्यावरण स्थिरता को एक साथ आगे बढ़ा सकता है।

निष्कर्ष-यह शोध स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि भारतीय परंपरागत ज्ञान प्रणाली न केवल ऐतिहासिक मूल्य की धरोहर है, बल्कि आधुनिक विज्ञान और तकनीक के संदर्भ में आज भी गहन प्रासंगिकता रखती है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि पारंपरिक ज्ञान का संचयन, हस्तांतरण और उपयोग सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और सामुदायिक भागीदारी के साथ गहरे रूप से जुड़ा हुआ हैं।आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ पारंपरिक ज्ञान का संयोजन नवाचार, स्थिरता और सामाजिक समरसता के लिए एक समृद्ध मंच प्रदान कर सकता है। जब नीति, शिक्षा, अनुसंधान और समुदाय मिलकर काम करते हैं, तो पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने, बढ़ावा देने और उसके नवाचारों का उपयोग करने की दिशा में वास्तविक प्रगति संभव हो सकती है। इस प्रकार, भारतीय समाज और वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय दोनों के लिए यह समय है कि वे पारंपरिक ज्ञान की संभावनाओं को पहचानें, उसे सशक्त करें और उसे भविष्य के लिए एक जीवंत और गतिशील संसाधन बनाएं।

सुझाव एवं नीतिगत अनुशंसा

नीति निर्माण में पारंपरिक ज्ञान को शामिल करें राष्ट्रीय और राज्य स्तर की नीतियों में पारंपरिक ज्ञान प्रणाली को आधिकारिक मान्यता दें। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, जल प्रबंधन आदि क्षेत्रों के लिए ऐसी नीतियाँ तैयार करें जो पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने और उसे वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ जोड़ने का मार्ग प्रदान करें।

पारंपरिक ज्ञान धारकों को सशक्त बनाएं ग्राम स्तर पर पारंपरिक ज्ञान धारकों (जैसे आयुर्वेदाचार्य, हस्तशिल्प कारीगर, बुजुर्ग किसान) को संगठित करें। उन्हें प्रशिक्षण, संसाधन और मंच प्रदान करें ताकि वे अपने ज्ञान को साझा कर सकें, उसे दस्तावेजीकृत कर सकें और अगली पीढ़ी को हस्तांतरित कर सकें।

शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में पारंपरिक ज्ञान शामिल करें विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और व्यावसायिक संस्थानों में पारंपरिक ज्ञान जैसे आयुर्वेद, योग, पारंपरिक पर्यावरण प्रबंधन, जल नीति आदि को पाठ्यक्रम में शामिल करें। इससे छात्रों में पारंपरिक और आधुनिक ज्ञान के बीच समझ पैदा होगी और नवाचार की भावना बढ़ेगी।

****

संदर्भ सूची

1.Capra, F. (1975). The Tao of Physics: An exploration of the parallels between modern physics and Eastern mysticism. Shambhala Publications.
2.Danino, M. (2010). The Lost River: On the Trail of the Sarasvati. Penguin Books India.
3.Gupta, A. K. (2016). Grassroots Innovations: Minds on the Margin are not Marginal Minds. Penguin Random House India.
4.Kapoor, K. (2001). Indian Knowledge Systems [Lecture series]. Indira Gandhi National Centre for the Arts (IGNCA).
5.Kothari, D. S. (1985). Ancient Indian Science: A Reappraisal. Indian National Science Academy.
6.Ranga, N. G. (1995). The Indigenous Knowledge Systems in India. Indian Journal of Traditional Knowledge.
7.Shiva, V. (1988). Staying Alive: Women, Ecology and Development. Zed Books.
8.UNESCO. (2003). Indigenous Knowledge and Sustainable Development. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. https://unesdoc.unesco.org
9.World Health Organization. (2013). WHO Traditional Medicine Strategy 2014–2023. World Health Organization. https://www.who.int/publications/i/item/9789241506090
10.Indian Knowledge System Division. (2021). Indian Knowledge System (IKS) Curriculum Framework. Ministry of Education, Government of India. https://iksindia.org
11.Capra, F. (1975). The Tao of Physics: An exploration of the parallels between modern physics and Eastern mysticism. Shambhala Publications.
12.Sharma, R. (2010). Traditional Knowledge in India: Historical Perspectives. New Delhi: Academic Press.
13.Kapoor, A. (2015). Science, Technology and Society in Ancient India. Mumbai: Global Publishing.
14.Singh, P. (2018). Indigenous Knowledge Systems and Modern Science. Jaipur: Rajasthan Studies.
15.Reddy, K. (2020). Water Management and Traditional Practices in India. Hyderabad: Eco Studies.
16.Verma, S. (2019). Yoga and Society: A Sociological Perspective. Delhi: Social Science Review.
17.Jitendra, V., & Kumar, S. (2021). "Community Transmission of Traditional Knowledge in Rural India." Journal of Sociological Research, 12(2), 45–67.
18.Mishra, N. (2018). Sociology of Indigenous Knowledge Systems. Patna: Social Science Press.
19.Pandey, R. (2017). "Traditional Agricultural Practices and Environmental Sustainability." International Journal of Agrarian Studies, 9(1), 23–40.
20.Joshi, M. (2019). Biodiversity and Traditional Farming in India. Jaipur: Green Earth Publications.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

वैश्विक राजनीति में हिन्दी की भूमिका : सॉफ्ट पावर और सांस्कृतिक कूटनीति का विश्लेषण

मौ० सुलेमान
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
गुलाब सिंह हिंदू (पी०जी०) कॉलेज चांदपुर - स्याऊ (बिजनौर) गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय मुरादाबाद,
ईमेल-suleman.rza15@gmail.comमो. 8510889925

सार (Abstract)
इक्कीसवीं सदी की वैश्विक राजनीति में शक्ति की अवधारणा केवल सैन्य और आर्थिक सामर्थ्य तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि संस्कृति, भाषा, विचार और मूल्य भी अंतरराष्ट्रीय प्रभाव के महत्त्वपूर्ण स्रोत बन चुके हैं। इसी संदर्भ में 'सॉफ्ट पावर' की अवधारणा विशेष महत्त्व रखती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिन्दी भाषा की भूमिका का विश्लेषण एक सांस्कृतिक एवं भाषायी सॉफ्ट पावर के रूप में किया गया है। यह अध्ययन यह तर्क प्रस्तुत करता है कि हिन्दी केवल भारत की आंतरिक संपर्क भाषा नहीं है, बल्कि प्रवासी समुदाय, सांस्कृतिक कूटनीति, मीडिया, सिनेमा और डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से भारत की वैश्विक छवि निर्माण में एक प्रभावी उपकरण बनती जा रही है। शोध-पत्र में यह भी विवेचना की गई है कि वैश्विक राजनीति में हिन्दी की संभावनाओं के साथ-साथ कौन-सी संरचनात्मक, कूटनीतिक और नीतिगत चुनौतियाँ विद्यमान हैं, तथा उन्हें कैसे संबोधित किया जा सकता है।

कुंजी शब्द (Keywords): हिन्दी, सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति, वैश्विक राजनीति, भाषा-राजनीति, भारतीय विदेश नीति।

1. प्रस्तावना (Introduction)
भाषा केवल विचारों के संप्रेषण का साधन मात्र नहीं होती है, बल्कि वह संस्कृति, सामाजिक पहचान, ऐतिहासिक स्मृति और राजनीतिक सत्ता की वाहक भी होती है। भाषाएँ किसी समाज की विश्व-दृष्टि (Worldview) को प्रतिबिंबित करती हैं और समय के साथ वे शक्ति-संरचनाओं से गहराई से जुड़ जाती हैं। इसी कारण वैश्विक राजनीति में भाषा को तटस्थ माध्यम नहीं, बल्कि प्रभाव, प्रभुत्व और वैचारिक नियंत्रण के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा जाता है। इतिहास साक्षी है कि लैटिन, फ्रेंच और अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं ने अपने-अपने युगों में वैश्विक राजनीति, कूटनीति और ज्ञान-उत्पादन पर प्रभुत्व स्थापित किया है। औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ी भाषा का प्रसार केवल प्रशासनिक सुविधा का परिणाम नहीं था, बल्कि यह सांस्कृतिक वर्चस्व और वैचारिक आधिपत्य (Cultural Hegemony) की एक सुसंगठित प्रक्रिया का हिस्सा था। उपनिवेशवाद के औपचारिक अंत के पश्चात भी अंग्रेज़ी का वैश्विक वर्चस्व बना रहा, जिससे अंतरराष्ट्रीय राजनीति, शिक्षा, मीडिया और वैश्विक शासन संस्थानों में भाषायी असमानता की स्थिति उत्पन्न हुई। इक्कीसवीं सदी में जब वैश्विक राजनीति बहुध्रुवीय (Multipolar) संरचना की ओर अग्रसर है, तब शक्ति की अवधारणा भी पुनर्परिभाषित हो रही है। सैन्य और आर्थिक सामर्थ्य के साथ-साथ संस्कृति, विचार, मूल्य और भाषा अब अंतरराष्ट्रीय प्रभाव के महत्त्वपूर्ण स्रोत बन चुके हैं। इसी संदर्भ में 'सॉफ्ट पावर' की अवधारणा विशेष महत्त्व रखती है, जिसमें भाषा को सांस्कृतिक आकर्षण और संवाद के एक प्रभावी माध्यम के रूप में देखा जा सकता है।

भारत, एक उभरती वैश्विक शक्ति के रूप में, न केवल अपनी आर्थिक एवं रणनीतिक क्षमताओं के कारण, बल्कि अपनी सभ्यतागत विरासत, सांस्कृतिक विविधता और भाषायी समृद्धि के कारण भी अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। ऐसे में हिन्दी भाषा की भूमिका पर पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है, जो करोड़ों लोगों की मातृभाषा होने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति, साहित्य और सामाजिक चेतना की वाहक है। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दी को केवल राष्ट्रीय संपर्क भाषा तक सीमित रखा जाए, अथवा उसे भारत की वैश्विक सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर का एक सक्रिय उपकरण बनाया जा सकता है? इन्हीं प्रश्नों को केंद्र में रखते हुए प्रस्तुत शोध-पत्र वैश्विक राजनीति में हिन्दी की भूमिका का विश्लेषण करता है और यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार हिन्दी भाषा भारत की अंतरराष्ट्रीय छवि निर्माण, सांस्कृतिक संवाद और वैचारिक प्रभाव विस्तार में योगदान दे सकती है।

2. सैद्धांतिक ढाँचा : सॉफ्ट पावर और भाषा-राजनीति
2.1 सॉफ्ट पावर की अवधारणा: अंतरराष्ट्रीय संबंधों के परंपरागत अध्ययन में शक्ति (Power) को प्रायः सैन्य क्षमता, आर्थिक संसाधनों और भौतिक बल के संदर्भ में समझा गया है। परंतु शीत युद्ध के पश्चात वैश्विक राजनीति में आए संरचनात्मक परिवर्तनों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल हार्ड पावर अर्थात सैन्य क्षमता, आर्थिक संसाधनों और भौतिक बल के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय प्रभाव बनाए रखना न तो पर्याप्त है और न ही टिकाऊ। इसी पृष्ठभूमि में अमेरिकी विद्वान जोसेफ नाई (Joseph Nye) ने सॉफ्ट पावर (Soft Power) की अवधारणा प्रस्तुत की है। जोसेफ नाई के अनुसार "Soft power is the ability to get what you want through attraction rather than coercion or payment." अर्थात् सॉफ्ट पावर वह क्षमता है जिसके माध्यम से कोई राज्य दूसरों को आकर्षित कर, उनके विचारों और प्राथमिकताओं को प्रभावित कर सकता है बिना बल प्रयोग या आर्थिक दबाव के। जोसेफ नाई के अनुसार सॉफ्ट पावर के तीन प्रमुख स्रोत होते हैं—1. संस्कृति (Culture) 2. राजनीतिक मूल्य (Political Values) 3. विदेश नीति की वैधता और नैतिकता (Foreign Policy Legitimacy) भाषा इन तीनों स्रोतों को जोड़ने वाला केंद्रीय माध्यम है, क्योंकि संस्कृति का संप्रेषण, मूल्यों की अभिव्यक्ति और नीतियों का औचित्य भाषिक माध्यम से ही संभव होता है।

उदाहरण के लिए अमेरिकी सैन्य हस्तक्षेप जहाँ कई बार प्रतिरोध उत्पन्न करता है, वहीं हॉलीवुड, अंग्रेज़ी भाषा और अमेरिकी जीवन-शैली विश्व भर में अमेरिकी प्रभाव को स्वाभाविक रूप से स्थापित करती है। इसी प्रकार, फ्रांस का 'फ्रेंच इंस्टीट्यूट' या चीन का 'कन्फ्यूशियस इंस्टीट्यूट' भाषा के माध्यम से सॉफ्ट पावर का विस्तार करते हैं। इस संदर्भ में हिन्दी को भारत की सॉफ्ट पावर के एक संभावित स्रोत के रूप में देखा जा सकता है, जो सांस्कृतिक आकर्षण और भावनात्मक जुड़ाव के माध्यम से भारत की वैश्विक उपस्थिति को सुदृढ़ कर सकती है।

2.2 भाषा और सत्ता
(क) भाषा-राजनीति (Language Politics): भाषा कभी भी एक तटस्थ उपकरण नहीं होती है। वह सत्ता-संबंधों, सामाजिक संरचनाओं और राजनीतिक प्राथमिकताओं से गहराई से जुड़ी होती है। भाषा-राजनीति का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से कुछ भाषाएँ प्रभुत्व प्राप्त करती हैं, जबकि अन्य हाशिए पर चली जाती हैं। वैश्विक स्तर पर अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व केवल संचार की सुविधा का परिणाम नहीं है, बल्कि यह औपनिवेशिक विरासत, आर्थिक शक्ति और वैश्विक संस्थागत संरचना से जुड़ा हुआ है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मीडिया और वैश्विक अकादमिक जगत में अंग्रेज़ी की प्रधानता भाषायी

असमानता को जन्म देती है। भारत के संदर्भ में भी भाषा-राजनीति आंतरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर प्रभावी रही है। हिन्दी और अंग्रेज़ी के बीच संबंध, औपनिवेशिक अतीत और आधुनिक वैश्वीकरण की जटिलताओं को दर्शाता है।

(ख) सांस्कृतिक आधिपत्य : इटालियन विचारक एंतोनियो ग्राम्शी (Antonio Gramsci) ने 'सांस्कृतिक आधिपत्य (Cultural Hegemony)' की अवधारणा के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि सत्ता केवल बल प्रयोग से नहीं, बल्कि विचारों, संस्कृति और भाषा के माध्यम से भी स्थापित होती है। उनके अनुसार, शासक वर्ग अपने विचारों को 'सामान्य' और 'स्वाभाविक' के रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे अधीन वर्ग स्वयं उस व्यवस्था को स्वीकार कर लेता है। भाषा इस सांस्कृतिक आधिपत्य का एक प्रमुख उपकरण है। अंग्रेज़ी भाषा को 'वैश्विक सफलता की भाषा' के रूप में प्रस्तुत किया जाना इसी प्रक्रिया का उदाहरण है। इसके परिणामस्वरूप अन्य भाषाएँ जैसे हिन्दी वैश्विक विमर्श में द्वितीयक स्थान पर चली जाती हैं।

(ग) वैचारिक वर्चस्व और संप्रेषण: जर्मन दार्शनिक, समाजशास्त्री एवं फ्रैंकफर्ट स्कूल (Frankfurt School) के प्रमुख विचारक जुर्गेन हैबरमास (Jurgen Habermas) के संप्रेषणात्मक क्रिया सिद्धांत (Theory of Communicative Action) के अनुसार, भाषा सार्वजनिक विमर्श (Public Sphere) के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाती है। जो भाषा इस विमर्श पर नियंत्रण रखती है, वही वैचारिक दिशा भी तय करती है। डिजिटल युग में यह प्रक्रिया और भी तीव्र हो गई है। सोशल मीडिया, समाचार चैनल और डिजिटल प्लेटफॉर्म भाषा के माध्यम से राजनीतिक नैरेटिव गढ़ते हैं। हिन्दी का इन मंचों पर बढ़ता प्रयोग भारत के लिए वैचारिक उपस्थिति सुदृढ़ करने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार सॉफ्ट पावर और भाषा-राजनीति का यह सैद्धांतिक ढाँचा यह स्पष्ट करता है कि भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं है, बल्कि सत्ता, प्रभाव और वैचारिक प्रभुत्व का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण भी है। हिन्दी, यदि सुनियोजित नीति के अंतर्गत प्रयोग की जाए, तो वह भारत की सॉफ्ट पावर को वैश्विक राजनीति में सुदृढ़ करने की क्षमता रखती है।

3. हिन्दी एक सांस्कृतिक एवं भाषायी सॉफ्ट पावर के रूप में

3.1 हिन्दी की ऐतिहासिक–सांस्कृतिक भूमिका: हिन्दी का विकास केवल भाषिक विकास नहीं रहा है, बल्कि यह भारतीय समाज के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ा रहा है। संस्कृत की ज्ञान-परंपरा, प्राकृत–अपभ्रंश की लोकधारा और मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के समन्वय से विकसित हिन्दी ने जनसामान्य की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम प्रदान किया है। भक्ति आंदोलन के दौरान कबीर, तुलसीदास, सूरदास, रसखान और मीरा जैसे संत-कवियों ने हिन्दी को आध्यात्मिक और सामाजिक चेतना की भाषा बनाया। यह भाषा सत्ता की नहीं, बल्कि लोक की भाषा बनी जिसने सामाजिक समरसता, नैतिकता और मानवीय मूल्यों को व्यापक स्तर पर प्रसारित किया है। यही विशेषता हिन्दी को सांस्कृतिक सॉफ्ट पावर के रूप में सक्षम बनाती है, क्योंकि सॉफ्ट पावर का आधार ही जन-स्वीकृति और भावनात्मक जुड़ाव होता है। औपनिवेशिक काल में हिन्दी ने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने हिन्दी को सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय एकता और औपनिवेशिक प्रतिरोध का माध्यम बनाया है। इस प्रकार हिन्दी ने न केवल सांस्कृतिक बल्कि राजनीतिक चेतना को भी आकार प्रदान किया है।

3.2 साहित्य, दर्शन और लोक परंपरा में हिन्दी: हिन्दी साहित्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि वह भारतीय दर्शन, नैतिक चिंतन और सामाजिक यथार्थ का वाहक रहा है। उपनिषदों और गीता जैसे दार्शनिक ग्रंथों के हिन्दी रूपांतरणों ने जटिल दार्शनिक अवधारणाओं को जनसामान्य तक पहुंचाने का कार्य क्या है। यह प्रक्रिया ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का उदाहरण है, जो किसी भी भाषा को सॉफ्ट पावर बनाती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य विशेषतः प्रेमचंद, अज्ञेय, मुक्तिबोध और नागार्जुन ने सामाजिक न्याय, वर्ग-संघर्ष और सत्ता-संबंधों पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत किया है। यह साहित्य वैश्विक साहित्यिक प्रवृत्तियों के समकक्ष खड़ा दिखाई देता है और भारत को एक वैचारिक रूप से समृद्ध राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करता है।

लोक परंपरा के स्तर पर हिन्दी लोकगीत, लोककथा, रामलीला, नौटंकी और काव्य-गायन के माध्यम से सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखती है। प्रवासी भारतीय समुदायों में यही लोक परंपराएँ हिन्दी को भावनात्मक संपर्क-सूत्र के रूप में बनाए रखती हैं। मॉरीशस, फीजी और सूरीनाम जैसे देशों में हिन्दी लोक-संस्कृति भारत की सांस्कृतिक उपस्थिति का अप्रत्यक्ष विस्तार कर रही है।

3.3 हिन्दी और भारतीय सभ्यतागत पहचान: भारतीय सभ्यता की मूल विशेषता उसकी बहुलता, सहिष्णुता और संवादशीलता रही है। हिन्दी, अपने विविध रूपों अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मगही, छत्तीसगढ़ी आदि के माध्यम से इस सभ्यतागत बहुलता को अभिव्यक्त करती है। यह भाषा किसी एक क्षेत्र या वर्ग की नहीं, बल्कि एक साझा सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विकसित हुई है। सभ्यतागत पहचान के निर्माण में भाषा का विशेष स्थान होता है। जिस प्रकार फ्रेंच भाषा फ्रांस की सभ्यता का प्रतीक मानी जाती है और चीनी भाषा चीन की सांस्कृतिक निरंतरता को दर्शाती है, उसी प्रकार हिन्दी भारत की सभ्यतागत निरंतरता और सांस्कृतिक आत्मा की प्रतिनिधि बन सकती है।अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जब भारतीय नेता हिन्दी में संबोधन करते हैं, तो वह केवल भाषिक चयन नहीं होता है, बल्कि एक सभ्यतागत संदेश भी होता है कि भारत अपनी सांस्कृतिक जड़ों के साथ वैश्विक संवाद में सहभागी है। यह सांस्कृतिक आत्मविश्वास भारत की सॉफ्ट पावर को सुदृढ़ करता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हिन्दी अपनी ऐतिहासिक निरंतरता, साहित्यिक, दार्शनिक समृद्धि और लोक-सांस्कृतिक आधार के कारण एक प्रभावी सांस्कृतिक एवं भाषायी सॉफ्ट पावर बनने की पूर्ण क्षमता रखती है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हिन्दी को भावनात्मक गर्व से आगे बढ़ाकर एक रणनीतिक सांस्कृतिक संसाधन के रूप में देखा जाए।

4. हिन्दी और भारतीय सांस्कृतिक कूटनीति

4.1 विदेश नीति में सांस्कृतिक आयाम : सांस्कृतिक कूटनीति का तात्पर्य किसी राष्ट्र द्वारा अपनी संस्कृति, भाषा, मूल्यों और जीवन-दृष्टि के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय समुदाय में सकारात्मक छवि निर्माण से है। भारत की विदेश नीति के सांस्कृतिक आयाम की जड़ें उसकी सभ्यतागत निरंतरता में निहित हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसी अवधारणाएँ, सहिष्णुता और संवाद की परंपरा, भारत को सांस्कृतिक कूटनीति के लिए स्वाभाविक आधार प्रदान करती हैं। इस संदर्भ में हिन्दी जो भारतीय संस्कृति, साहित्य और दर्शन की वाहक भाषा है। विदेश नीति के सांस्कृतिक आयाम को सशक्त बनाने का एक केंद्रीय माध्यम बन सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि सांस्कृतिक कूटनीति, हार्ड पावर की तुलना में कम टकरावपूर्ण और अधिक टिकाऊ प्रभाव उत्पन्न करती है। भाषा के माध्यम से स्थापित संवाद भावनात्मक जुड़ाव पैदा करता है, जो राजनीतिक सहयोग और रणनीतिक साझेदारी के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करता है।

4.2 हिन्दी के माध्यम से सांस्कृतिक संवाद

(क) योग, आयुर्वेद और भारतीय दर्शन: योग और आयुर्वेद आज वैश्विक स्तर पर भारत की सांस्कृतिक पहचान के प्रमुख प्रतीक बन चुके हैं। योग के अंतरराष्ट्रीयकरण विशेषतः अंतरराष्ट्रीय योग दिवस (21 जून) ने भारतीय जीवन-दर्शन को वैश्विक विमर्श का हिस्सा बनाया है। योग-साहित्य, मंत्रोच्चार, दर्शन और अभ्यास-पद्धतियों में हिन्दी का प्रयोग इस संवाद को अधिक प्रामाणिक और भावनात्मक बनाता है। इसी प्रकार आयुर्वेदिक ज्ञान, जब हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत होता है, तो वह केवल चिकित्सा-पद्धति नहीं, बल्कि भारत की समग्र जीवन-दृष्टि को संप्रेषित करता है। भारतीय दर्शन कर्म, धर्म, मोक्ष और अहिंसा जैसी अवधारणाएँ हिन्दी के माध्यम से वैश्विक श्रोताओं तक पहुँचकर

भारत की बौद्धिक सॉफ्ट पावर को विस्तार देती हैं।

(ख) विश्व हिन्दी सम्मेलन : विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी को वैश्विक मंच प्रदान करने का एक महत्त्वपूर्ण संस्थागत प्रयास रहा है। यह सम्मेलन केवल भाषा-विकास तक सीमित न रहकर, भारत की सांस्कृतिक कूटनीति (Cultural Diplomacy) का एक प्रभावी उपकरण बनकर उभरा है। वर्ष 1975 से 2023 तक आयोजित कुल 12 विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी को एक राष्ट्रीय भाषा से आगे बढ़ाकर वैश्विक सांस्कृतिक, बौद्धिक और कूटनीतिक भाषा के रूप में स्थापित करने की निरंतर यात्रा को अभिव्यक्त करते हैं। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन (1975, नागपुर) ने हिन्दी को पहली बार संगठित रूप से अंतरराष्ट्रीय विमर्श का विषय बनाया। इसी क्रम में ग्यारहवाँ सम्मेलन (2018, पोर्ट लुईस, मॉरीशस) इस तथ्य का पुनः प्रमाण बना कि हिन्दी प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक स्मृति और भारत की सॉफ्ट पावर का प्रभावी माध्यम है। इस क्रम की परिणति बारहवें सम्मेलन (2023, फिजी) में हुई, जहाँ अनेक देशों की भागीदारी, फिजी के शीर्ष नेतृत्व की उपस्थिति तथा भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व एस. जयशंकर द्वारा किया जाना हिन्दी की वैश्विक स्वीकार्यता और सांस्कृतिक कूटनीति के सशक्त रूप को रेखांकित करता है। इन सम्मेलनों के समग्र प्रभाव से हिन्दी को वैश्विक सांस्कृतिक संवाद की भाषा के रूप में वैधता प्राप्त हुई। इस प्रकार विश्व हिन्दी सम्मेलन केवल साहित्यिक आयोजन नहीं है, बल्कि भारत की सॉफ्ट पावर रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण घटक बनकर उभरे हैं।

(ग) भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद और प्रवासी सांस्कृतिक मंच: भारत सरकार के अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (Indian Council for Cultural Relations) भारतीय सांस्कृतिक कूटनीति का प्रमुख संस्थागत आधार है। इस परिषद के माध्यम से विदेशों में हिन्दी शिक्षण, सांस्कृतिक कार्यक्रम, साहित्यिक गोष्ठियाँ और कलाकारों का आदान-प्रदान किया जाता है। ये गतिविधियाँ हिन्दी को भारत की सॉफ्ट पावर का एक संगठित उपकरण बनाती हैं। प्रवासी भारतीय समुदाय विशेषकर मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनीदाद-टोबैगो और गयाना जैसे देशों में हिन्दी सांस्कृतिक स्मृति और पहचान का केंद्र बनी हुई है। प्रवासी सांस्कृतिक मंचों पर हिन्दी भाषा भारत और प्रवासी समाज के बीच सेतु का कार्य करती है, जिससे भारत के प्रति भावनात्मक और राजनीतिक जुड़ाव सुदृढ़ होता है। यह जुड़ाव भारत की विदेश नीति के लिए अप्रत्यक्ष लेकिन प्रभावी समर्थन का आधार बनता है। इस प्रकार हिन्दी, भारतीय सांस्कृतिक कूटनीति का केवल सहायक तत्व नहीं, बल्कि उसका मौलिक आधार बन सकती है।

5. प्रवासी भारतीय समुदाय, वैश्विक दक्षिण और हिन्दी

5.1 गिरमिटिया देशों में हिन्दी : उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारत से बड़ी संख्या में श्रमिकों को गिरमिट प्रथा के तहत विभिन्न उपनिवेशों में ले जाया गया। जहां इन श्रमिकों के साथ केवल श्रमशक्ति ही नहीं, बल्कि उनकी भाषा, संस्कृति, लोक-परंपरा और धार्मिक विश्वास भी वहाँ पहुँचे। हिन्दी विशेषकर अवधी, भोजपुरी और ब्रज इन प्रवासी समुदायों की सांस्कृतिक पहचान की आधारशिला बनी। मॉरीशस, फीजी और सूरीनाम जैसे देशों में हिन्दी केवल एक घरेलू भाषा नहीं रही, बल्कि यह सांस्कृतिक स्मृति और सामुदायिक एकता का माध्यम भी बनी। मॉरीशस में हिन्दी को शैक्षणिक पाठ्यक्रम, मीडिया और सांस्कृतिक आयोजनों में संस्थागत मान्यता प्राप्त हुई है। फीजी और सूरीनाम में भी रामायण पाठ, लोकगीत, कथा-वाचन और धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से हिन्दी पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रही। इन देशों में हिन्दी की उपस्थिति ने भारत के साथ एक भावनात्मक सभ्यतागत सेतु निर्मित किया है, जो औपचारिक कूटनीति से कहीं अधिक गहरा और टिकाऊ सिद्ध हुआ।

5.2 प्रवासी राजनीति और सांस्कृतिक पहचान

(क) प्रवासी राजनीति (Diaspora Politics): आधुनिक राजनीति विज्ञान में प्रवासी राजनीति (Diaspora Politics) उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है, जिसके अंतर्गत प्रवासी समुदाय अपनी मूल भूमि और निवास-देश दोनों की राजनीति को प्रभावित करते हैं।

भाषा इस राजनीति का केंद्रीय उपकरण होती है, क्योंकि वही सामूहिक पहचान, स्मृति और एकजुटता को बनाए रखती है। हिन्दी, प्रवासी भारतीय समुदाय के लिए केवल संवाद की भाषा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और राजनीतिक चेतना का आधार बनी। मॉरीशस जैसे देशों में हिन्दी भाषी समुदाय ने राजनीतिक नेतृत्व, नीति-निर्माण और भारत–मॉरीशस संबंधों में सक्रिय भूमिका निभाई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भाषा, प्रवासी राजनीति में नरम प्रभाव (Soft Influence) का कार्य करती है।

(ख) भावनात्मक और राजनीतिक जुड़ाव: हिन्दी भाषा प्रवासी समुदाय में भारत के प्रति एक भावनात्मक जुड़ाव बनाए रखने में मदद करती है, जो समय के साथ राजनीतिक समर्थन में रूपांतरित हो सकता है। भारत द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम, विश्व हिन्दी सम्मेलन, और प्रवासी भारतीय दिवस जैसे आयोजन इस जुड़ाव को ओर सुदृढ़ करते हैं। यह भावनात्मक संबंध भारत की विदेश नीति के लिए अप्रत्यक्ष किंतु प्रभावी संसाधन के रूप में देखें जा सकते हैं। जब प्रवासी समुदाय भारत की सांस्कृतिक पहचान से स्वयं को जोड़कर देखते हैं, तो वे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत के हितों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाते हैं।

5.3 वैश्विक दक्षिण (Global South) में हिन्दी की संभावना:: वैश्विक दक्षिण (Global South) के देशों ने औपनिवेशिक शोषण, सांस्कृतिक वर्चस्व और भाषायी असमानता का साझा अनुभव किया है। इस संदर्भ में हिन्दी जैसी भाषा जो स्वयं औपनिवेशिक अनुभव और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रतीक रही है एक वैकल्पिक सांस्कृतिक विमर्श प्रस्तुत कर सकती है। अंग्रेज़ी के वैश्विक वर्चस्व के विपरीत, हिन्दी समानता, सामूहिकता और सांस्कृतिक संवाद पर आधारित दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह भाषा ज्ञान-उत्पादन, सांस्कृतिक आदान -प्रदान और वैचारिक सहयोग के क्षेत्र में वैश्विक दक्षिण के देशों के लिए एक प्रति-आधिपत्यवादी (Counter-hegemonic) माध्यम बन सकती है। भारत यदि दक्षिण–दक्षिण सहयोग (South–South Cooperation) के ढाँचे में हिन्दी को सांस्कृतिक संवाद की भाषा के रूप में विकसित करता है, तो यह न केवल भारत की सॉफ्ट पावर को सुदृढ़ करेगा, बल्कि वैश्विक राजनीति में भाषायी न्याय और बहुलतावाद को भी बढ़ावा देगा।

6. वैश्विक मीडिया, सिनेमा और डिजिटल प्लेटफॉर्म में हिन्दी

6.1 हिन्दी सिनेमा और वैश्विक दर्शक: हिन्दी सिनेमा (विशेषत: बॉलीवुड) आज भारत की सॉफ्ट पावर का सबसे दृश्य और प्रभावशाली
माध्यम बन चुका है। यह केवल मनोरंजन उद्योग नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व (cultural representation) और राष्ट्रीय छवि निर्माण का एक सशक्त उपकरण है। हिन्दी सिनेमा के माध्यम से भारतीय समाज, पारिवारिक मूल्यों, भावनात्मक संरचनाओं और नैतिक दृष्टिकोण को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचाया गया है। रूस, मध्य एशिया, पश्चिम एशिया, अफ्रीका और दक्षिण एशिया के अनेक देशों में हिन्दी फ़िल्मों की लोकप्रियता यह दर्शाती है कि भाषा की सीमाएँ भावनात्मक संप्रेषण में बाधा नहीं बनतीं है। 'राज कपूर' की फ़िल्मों से लेकर आधुनिक सिनेमा तक, हिन्दी फ़िल्मों ने भारत को एक सांस्कृतिक रूप से जीवंत और मानवीय समाज के रूप में प्रस्तुत किया है। यह प्रस्तुति भारत के प्रति सहानुभूति और आकर्षण उत्पन्न करती है, जो सॉफ्ट पावर का मूल आधार है। इसके अतिरिक्त, ओटीटी प्लेटफॉर्मों के उदय ने हिन्दी सिनेमा और वेब-सीरीज़ को वैश्विक दर्शकों तक सीधे पहुँच प्रदान की है। इससे भारत के सामाजिक–राजनीतिक विमर्श, ऐतिहासिक कथाएँ और समकालीन यथार्थ अंतरराष्ट्रीय पब्लिक स्फियर में स्थान बना रहे हैं।6.2 सोशल मीडिया और डिजिटल पब्लिक स्फियर: डिजिटल क्रांति के साथ वैश्विक राजनीति में डिजिटल पब्लिक स्फियर (Digital Public Sphere) का उदय हुआ है, जहाँ विचार, विमर्श और राजनीतिक नैरेटिव पारंपरिक मीडिया से बाहर निकलकर सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर निर्मित होते हैं।

हिन्दी की उपस्थिति इस डिजिटल पब्लिक स्फियर में निरंतर बढ़ रही है। यूट्यूब, एक्स (पूर्व ट्विटर), फेसबुक, इंस्टाग्राम और ब्लॉगिंग प्लेटफॉर्मों पर हिन्दी में होने वाला विमर्श अब केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं है। प्रवासी भारतीय समुदाय, विदेशी शोधार्थी और बहुभाषिक दर्शक भी इस विमर्श का हिस्सा बन रहे हैं। इससे हिन्दी एक ट्रांसनेशनल डिजिटल भाषा के रूप में उभर रही है। राजनीतिक दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि डिजिटल प्लेटफॉर्म सरकारों, राजनीतिक नेताओं और सामाजिक आंदोलनों को सीधे जनसंवाद का अवसर प्रदान करते हैं। हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत विचार अधिक व्यापक और समावेशी पहुँच रखते हैं, जिससे लोकतांत्रिक संवाद को बल मिलता है।

6.3 राजनीतिक नैरेटिव और छवि निर्माण: वैश्विक राजनीति में राष्ट्रों की छवि केवल कूटनीतिक वक्तव्यों से नहीं बनती है, बल्कि मीडिया, सिनेमा और डिजिटल नैरेटिव के माध्यम से निर्मित होती है। हिन्दी भाषा इस नैरेटिव निर्माण में एक प्रभावी भूमिका निभा रही है। हिन्दी में प्रस्तुत भाषण, वृत्तचित्र, सांस्कृतिक कार्यक्रम और डिजिटल सामग्री भारत को एक सभ्यतागत, लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक रूप से आत्मविश्वासी राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह नैरेटिव वैश्विक जनमत को प्रभावित करता है और भारत की विदेश नीति के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करता है। साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर नैरेटिव निर्माण प्रतिस्पर्धात्मक भी है। ऐसे में हिन्दी का रणनीतिक और संतुलित प्रयोग भारत को अपनी बात वैश्विक मंच पर अधिक प्रभावी ढंग से रखने में सहायक हो सकता है। डिजिटल युग में हिन्दी की यह भूमिका भारत की सॉफ्ट पावर को नए आयाम प्रदान करती है और वैश्विक राजनीति में उसकी सांस्कृतिक उपस्थिति को सुदृढ़ करती है।

7. वैश्विक राजनीति में हिन्दी : चुनौतियाँ और सीमाएँ

वैश्विक राजनीति में हिन्दी की भूमिका को समझने के लिए केवल संभावनाओं पर चर्चा पर्याप्त नहीं है; उसके समक्ष विद्यमान वास्तविक, व्यवहारिक और संरचनात्मक चुनौतियों का विश्लेषण भी आवश्यक है। हिन्दी की वैश्विक उपस्थिति को सीमित करने वाले कारक ऐतिहासिक, संस्थागत और नीतिगत तीनों स्तरों पर देखे जा सकते हैं।

7.1 अंग्रेज़ी का भाषायी वर्चस्व : अंग्रेज़ी का वैश्विक प्रभुत्व केवल सांस्कृतिक नहीं है, बल्कि संस्थागत और व्यावहारिक स्तर पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरणस्वरूप—संयुक्त राष्ट्र में यद्यपि बहुभाषिकता का सिद्धांत स्वीकार किया गया है, परंतु वास्तविक कार्यवाही, मसौदा-निर्माण और अनौपचारिक वार्ताएँ प्रायः अंग्रेज़ी में ही होती हैं। अंतरराष्ट्रीय अकादमिक प्रकाशनों, जर्नलों और वैश्विक रैंकिंग प्रणालियों में अंग्रेज़ी भाषा को प्राथमिकता दी जाती है, जिसके कारण हिन्दी में होने वाला गंभीर अकादमिक कार्य वैश्विक विमर्श से बाहर रह जाता है। वैश्विक मीडिया जैसे— CNN, BBC, Reuters आदि अधिकतर अंग्रेज़ी केंद्रित नैरेटिव प्रस्तुत करते हैं, जिससे हिन्दी या अन्य भाषाओं में निर्मित दृष्टिकोण वैश्विक जनमत तक नहीं पहुँच पाता है।

7.2 वैश्विक संस्थानों में भाषायी असमानता : वैश्विक संस्थानों में भाषायी असमानता हिन्दी की सीमाओं को और स्पष्ट करती है जैसे— विश्व व्यापार संगठन और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाओं की आधिकारिक कार्यकारी भाषाओं में हिन्दी का स्थान नहीं है, जबकि हिन्दी बोलने वालों की संख्या कई आधिकारिक भाषाओं से अधिक है। संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में हिन्दी के न होने के कारण भारत को अपने वक्तव्य, प्रस्ताव और दस्तावेज़ अंग्रेज़ी में प्रस्तुत करने पड़ते हैं, जिससे भाषायी आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति सीमित हो जाती है। यह स्थिति भाषायी न्याय (Linguistic Justice) के सिद्धांत पर गंभीर प्रश्न खड़े करती है।

7.3 भारत की आंतरिक भाषा-राजनीति : हिन्दी की वैश्विक भूमिका को भारत की आंतरिक भाषा-राजनीति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। व्यवहार में दक्षिण और पूर्वोत्तर भारत के कई राज्यों में हिन्दी को बढ़ावा देने की नीतियों को कभी-कभी भाषायी वर्चस्व के रूप में देखा जाता है। इस आंतरिक असहमति का प्रभाव भारत की सांस्कृतिक कूटनीति पर भी पड़ता है, क्योंकि वैश्विक मंच पर प्रस्तुत भाषा-नीति तभी प्रभावी होती है जब उसे घरेलू स्तर पर व्यापक स्वीकृति प्राप्त हो। उदाहरण के लिए, जब भारत हिन्दी को वैश्विक मंचों पर आगे बढ़ाने की बात करता है, तो आलोचक इसे आंतरिक बहुभाषिकता के साथ असंतुलन के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे भारत की सांस्कृतिक नीति को वैचारिक चुनौती मिलती है।

7.4 नीति-स्तर पर समन्वय का अभाव : हिन्दी के वैश्विक प्रसार में सबसे बड़ी व्यावहारिक बाधा समन्वित भाषा-रणनीति का अभाव है। विदेश मंत्रालय, शिक्षा मंत्रालय, सांस्कृतिक संस्थाएँ और विश्वविद्यालय अपने-अपने स्तर पर हिन्दी से जुड़े कार्यक्रम संचालित करते हैं, किंतु इनके बीच दीर्घकालिक समन्वय और स्पष्ट लक्ष्य निर्धारण का अभाव दिखाई देता है। उदाहरणस्वरूप, विदेशों में हिन्दी शिक्षण के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों, अद्यतन पाठ्यक्रम और डिजिटल संसाधनों की निरंतर आपूर्ति की कोई समग्र नीति स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती है। विश्व हिन्दी सम्मेलन जैसे आयोजनों के पश्चात भी उनके निष्कर्षों को ठोस नीतिगत रूप देने में निरंतरता की कमी रहती है। परिणामस्वरूप हिन्दी से जुड़े प्रयास कार्यक्रम आधारित (Event-based) बनकर रह जाते हैं, जबकि आवश्यकता रणनीति आधारित (Strategy-based) दृष्टिकोण की है।

8. नीतिगत सुझाव :वैश्विक राजनीति में हिन्दी की भूमिका को सुदृढ़ करने के लिए प्रतीकात्मक प्रयासों से आगे बढ़कर स्पष्ट, दीर्घकालिक और बहु-स्तरीय भाषा-रणनीति अपनाने की आवश्यकता है। निम्नलिखित नीतिगत सुझाव हिन्दी को भारत की प्रभावी सॉफ्ट पावर के रूप में विकसित करने की दिशा में ठोस आधार प्रदान कर सकते हैं।

8.1 विदेश नीति में भाषा-रणनीति का संस्थानीकरण: भारत की विदेश नीति में अब तक भाषा को सहायक तत्व के रूप में देखा गया है,न कि एक रणनीतिक संसाधन के रूप में। आवश्यकता इस बात की है कि विदेश मंत्रालय के अंतर्गत भाषा एवं सांस्कृतिक कूटनीति प्रकोष्ठ को सुदृढ़ किया जाए। भारतीय राजनयिकों के प्रशिक्षण में हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं को रणनीतिक संप्रेषण कौशल के रूप में सम्मिलित किया जाए। विदेशों में भारतीय दतावासों और सांस्कृतिक केंद्रों के माध्यम से हिन्दी में सार्वजनिक कूटनीति (Public Diplomacy) को प्रोत्साहित किया जाए। यह रणनीति हिन्दी को भारत की सभ्यतागत आख्यान (Civilizational Narrative) के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने में सहायक होगी।

8.2 संयुक्त राष्ट्र एवं वैश्विक मंचों पर हिन्दी की भूमिका: हिन्दी को वैश्विक मंचों पर स्थान दिलाना केवल भाषायी सम्मान का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह वैचारिक प्रतिनिधित्व, सांस्कृतिक समानता और भाषायी न्याय (Linguistic Justice) से जुड़ा हुआ विषय है। जिस भाषा को वैश्विक संस्थाओं में स्थान नहीं मिलता, उसके माध्यम से व्यक्त विचार, अनुभव और सभ्यतागत दृष्टिकोण भी हाशिए पर चले जाते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी का प्रश्न केवल भारत का नहीं, बल्कि बहुभाषिक वैश्विक लोकतंत्र का भी प्रश्न है।

(क) संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी : अब तक हुए प्रयास

अब तक संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को आधिकारिक या कार्यकारी भाषा का दर्जा प्राप्त नहीं हुआ है, जबकि हिन्दी बोलने वालों की संख्या विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है। तथापि, भारत सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक प्रयास किए गए हैं जैसे- संयुक्त राष्ट्र महासभा में भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा हिन्दी में संबोधन किए गए, जिनका तत्पश्चात आधिकारिक अनुवाद उपलब्ध कराया गया। संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी दिवस के आयोजन के माध्यम से हिन्दी की उपस्थिति को सांस्कृतिक स्तर पर रेखांकित किया गया। भारत द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया जाता रहा है कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या संयुक्त राष्ट्र की कुछ आधिकारिक भाषाओं से अधिक है, अतः यह भाषायी प्रतिनिधित्व का न्यायोचित प्रश्न है। किन्तु ये प्रयास अब तक प्रतीकात्मक (Symbolic) स्तर पर ही सीमित रहे हैं और इन्हें संस्थागत स्वरूप नहीं मिल सका है।

(ख) आगे क्या प्रयास किए जाने चाहिए : हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक/कार्यकारी भाषा बनाने हेतु दीर्घकालिक, चरणबद्ध और कूटनीतिक रणनीति अपनाने की आवश्यकता है; जैसे— भारत को वैश्विक दक्षिण (Global South), गिरमिटिया देशों तथा बहुभाषिक समाजों वाले राष्ट्रों के साथ मिलकर संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी के समर्थन हेतु राजनयिक गठबंधन तैयार करना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र में नई भाषा को शामिल करने का एक प्रमुख तर्क वित्तीय लागत से जुड़ा होता है। भारत को यह स्पष्ट करना चाहिए कि वह प्रारंभिक चरण में अनुवाद, व्याख्या एवं तकनीकी सहायता का आंशिक भार वहन करने को तैयार है। भारत को निरंतर यह अभ्यास करना चाहिए कि वह अपने प्रस्ताव, वक्तव्य और वैचारिक दस्तावेज़ हिन्दी के साथ-साथ अन्य भाषाओं में प्रस्तुत करे, जिससे हिन्दी की कार्यात्मक उपयोगिता सिद्ध हो। हिन्दी के प्रश्न को केवल राष्ट्रीय आग्रह के रूप में नहीं, बल्कि भाषायी समानता और वैश्विक लोकतंत्र के मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया जाए।

(ग) अन्य वैश्विक मंचों पर हिन्दी : संयुक्त राष्ट्र के अतिरिक्त, हिन्दी के लिए जी20, ब्रिक्स (BRICS) तथा शंघाई सहयोग संगठन (SCO) जैसे मंच अपेक्षाकृत अधिक व्यवहारिक अवसर प्रदान करते हैं। जी20 जैसे मंचों पर भारत द्वारा हिन्दी में वक्तव्य, सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ और आधिकारिक सामग्री प्रस्तुत करना एक सकारात्मक शुरुआत है। ब्रिक्स और शंघाई सहयोग संगठन जैसे मंच, जहाँ बहुध्रुवीयता और बहुभाषिकता की भावना प्रबल है, हिन्दी को संवाद-भाषा के रूप में विकसित करने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। वैश्विक मंचों पर संस्थागत अनुवाद तंत्र को मज़बूती देकर हिन्दी में गंभीर नीति-विमर्शको संभव बनाया जा सकता। तकनीकी प्रगति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence - AI) आधारित अनुवाद और डिजिटल संसाधनों का उपयोग कर हिन्दी को वैश्विक विमर्श में कार्यात्मक रूप से सक्षम बनाया जा सकता है।

8.3 डिजिटल और शैक्षणिक निवेश: डिजिटल युग में भाषा का भविष्य तकनीक और शिक्षा से गहराई से जुड़ा हुआ है। अतः हिन्दी में डिजिटल कंटेंट, ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और ओपन एक्सेस अकादमिक संसाधनों में निवेश बढ़ाया जाए। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन अनुवाद और भाषा-तकनीक में हिन्दी को प्राथमिकता दी जाए, ताकि वैश्विक डिजिटल स्पेस में उसकी पहुँच बढ़े। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्ययन केंद्रों, चेयर प्रोफेसरशिप और छात्रवृत्तियों को संस्थागत समर्थन दिया जाए। यह निवेश हिन्दी को ज्ञान-उत्पादन और अकादमिक संवाद की भाषा के रूप में सुदृढ़ करेगा।

8.4 प्रवासी समुदाय की भूमिका का सशक्तीकरण: प्रवासी भारतीय समुदाय हिन्दी की वैश्विक सॉफ्ट पावर का सबसे स्वाभाविक और प्रभावी माध्यम है। इसे और सशक्त करने के लिए प्रवासी सांस्कृतिक संगठनों, हिन्दी स्कूलों और साहित्यिक मंचों को नीति-स्तर पर समर्थन दिया जाए। विश्व हिन्दी सम्मेलन, प्रवासी भारतीय दिवस और सांस्कृतिक महोत्सवों को रणनीतिक कूटनीतिक मंच के रूप में विकसित किया जाए। प्रवासी युवाओं के लिए डिजिटल हिन्दी कार्यक्रम और सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजनाएँ प्रारंभ की जाएँ। इससे प्रवासी समुदाय भारत की सांस्कृतिक पहचान के राजदूतों (Ambassadors) के रूप में कार्य कर सकेगा।

8.5 समन्वित एवं समावेशी भाषा-नीति: सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि हिन्दी को बढ़ावा देने की नीति समावेशी और बहुभाषिक दृष्टिकोण पर आधारित हो। हिन्दी के वैश्विक प्रसार को अन्य भारतीय भाषाओं के विरोध में नहीं, बल्कि भाषायी विविधता के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया जाए। आंतरिक सहमति और संघीय संतुलन को ध्यान में रखते हुए भाषा-रणनीति बनाई जाए। यह दृष्टिकोण भारत की सांस्कृतिक कूटनीति को अधिक विश्वसनीय और स्वीकार्य बनाएगा।

9. निष्कर्ष (Conclusion)-प्रस्तुत शोध-पत्र का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि इक्कीसवीं सदी की वैश्विक राजनीति में शक्ति की प्रकृति बहुआयामी हो चुकी है, जहाँ सैन्य और आर्थिक सामर्थ्य के साथ-साथ भाषा, संस्कृति और वैचारिक प्रभाव भी निर्णायक भूमिका निभा रहे हैं। इस संदर्भ में हिन्दी की भूमिका को एक सांस्कृतिक एवं भाषायी सॉफ्ट पावर के रूप में समझना न केवल प्रासंगिक, बल्कि अपरिहार्य हो गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी केवल भारत की आंतरिक संपर्क भाषा नहीं है, बल्कि वह ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सभ्यतागत निरंतरता की वाहक भाषा के रूप में भारत की वैश्विक पहचान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देने की क्षमता रखती है। हिन्दी साहित्य, लोक-परंपरा, सिनेमा, मीडिया, डिजिटल प्लेटफॉर्म तथा प्रवासी समुदायों के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक उपस्थिति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुदृढ़ हुई है, जिससे भारत के प्रति भावनात्मक आकर्षण और वैचारिक स्वीकार्यता को बल मिला है जो सॉफ्ट पावर का मूल आधार है। डिजिटल तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ऑनलाइन शिक्षा और वैश्विक संचार माध्यमों के विस्तार ने हिन्दी के लिए नई संभावनाएँ सृजित की हैं। डिजिटल पब्लिक स्फियर में हिन्दी की बढ़ती उपस्थिति यह संकेत देती है कि आने वाले समय में हिन्दी वैश्विक विमर्श में अधिक सक्रिय और प्रभावी भूमिका निभा सकती है, विशेषकर यदि शैक्षणिक निवेश, सुदृढ़ अनुवाद तंत्र और प्रवासी समुदाय की भागीदारी को रणनीतिक रूप से जोड़ा जाए।

अंततः, यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि हिन्दी की वैश्विक भूमिका को एक बहुभाषिक और समावेशी वैश्विक व्यवस्था के संदर्भ में ही समझा जाना चाहिए। हिन्दी का प्रसार किसी अन्य भाषा के प्रतिरोध में नहीं, बल्कि भाषायी विविधता, सांस्कृतिक बहुलता और लोकतांत्रिक संवाद के संवर्धन के रूप में होना चाहिए। ऐसी दृष्टि न केवल हिन्दी को वैश्विक स्वीकार्यता दिला सकती है, बल्कि वैश्विक राजनीति में भाषायी न्याय और वैचारिक संतुलन को भी प्रोत्साहित कर सकती है।

****

संदर्भ सूची (References list)

1. नाई, जोसेफ एस. (2004). सॉफ्ट पावर : विश्व राजनीति में सफलता के साधन. पब्लिकअफेयर्स। https://www.hks.harvard.edu/publications/soft-power-means-success-world-politics
2. नाई, जोसेफ एस. (2011). द फ्यूचर ऑफ पावर. पब्लिकअफेयर्स। https://www.hks.harvard.edu/publications/future-power
3. भारत सरकार, विदेश मंत्रालय. भारत की सांस्कृतिक कूटनीति. https://mea.gov.in/india-and-the-world.htm
4. भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (ICCR). भारत की सांस्कृतिक कूटनीति. https://www.iccr.gov.in/
5. संयुक्त राष्ट्र, संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाएँ. https://www.un.org/en/about-us/official-languages
6. भारत सरकार, गृह मंत्रालय. राजभाषा नीति. https://rajbhasha.gov.in/
7. कचरू, ब्रज बी. (1986). भाषा, सत्ता और राजनीति World Englishes, Vol. 5(2-3), पृ. 121-140. Wiley-Blackwell. https://doi.org/10.1111/j.1467-971X.1986.tb00720.x.
8. ग्राम्शी, एंतोनियो. (1971). प्रिजन नोटबुक्स. इंटरनेशनल पब्लिशर्स। https://www.marxists.org/archive/gramsci/prison_notebooks/
9. थुस्सू, दया किशन. (2013). भारत की सॉफ्ट पावर का संप्रेषण : बुद्ध से बॉलीवुड तक, पैलग्रेव मैकमिलन, लंदन।
10. विश्व हिन्दी सचिवालय, विश्व हिन्दी सम्मेलन से संबंधित दस्तावेज. https://vishwahindi.com/new/
11. यूनेस्को, सांस्कृतिक विविधता और बहुभाषिकता. https://www.unesco.org/en/culture
12. हैबरमास, जुर्गन. (1989). पब्लिक स्फियर का संरचनात्मक रूपांतरण. एमआईटी प्रेस। https://mitpress.mit.edu/9780262581080/
13. भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय विदेशों में भारतीय सिनेमा. https://mib.gov.in/
14. ऑक्सफोर्ड इंटरनेट संस्थान, डिजिटल पब्लिक स्फियर और राजनीति. https://www.oii.ox.ac.uk/
15. विश्व बैंक, वैश्विक शासन और सांस्कृतिक प्रभाव. https://www.worldbank.org/en/topic/governance
16. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP), दक्षिण-दक्षिण सहयोग. https://unsouthsouth.org/about/about-unossc/
17. ब्रिक्स सूचना केंद्र, ब्रिक्स सांस्कृतिक सहयोग. https://infobrics.org/
18. G-20 भारत. (2023). वैश्विक सहयोग में संस्कृति की भूमिका. https://www.g20.org/en/
19. शंघाई सहयोग संगठन, सांस्कृतिक एवं जन-जन संपर्क. https://eng.sectsco.org/
20. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, भारतीय भाषाओं का संवर्धन. https://www.education.gov.in/

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

हिन्दी उपन्यासों में वर्किंग वीमेंस का विवेचनात्मक अध्ययन

आकांक्षा सिंह
शोधार्थी
पीएच.डी. हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
ईमेल: aakanksha123singh@gmail.com मो.नं. 9873310979

हिन्दी उपन्यास मानव-चरित्रांकन का अन्यतम माध्यम रहा है। मानव जीवन की अनेक घटनाओं का चित्रण उपन्यासकार अपने उपन्यासों में करता है। साहित्य की विविध विधाएं नाटक, कहानी रेखाचित्र आदि विभिन्न घटनाओं को अलग-अलग विषयों में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती हैं वैसे ही उपन्यास विधा भी घटनाओं को पात्रों अथवा चरित्रों के माध्यम से साकार करती है। विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं - "साहित्य समाज का दर्पण है।" अर्थात् समाज के बदलते स्वरूप एवं घटनाओं का चित्रांकन करना साहित्यकार का कर्तव्य है।

इस समाज में नारी तथा पुरुष मानव-जीवन के दो प्रधान पक्ष माने गए हैं। मानव समाज रूपी रथ इन्हीं दो पहियों के बल पर अग्रसर होता है। समय का पहिया निरंतर बदलता रहता है उसी के साथ सामाजिक परिवेश और समाज में स्त्री-पुरुष के जीवन में भी स्थित्यंतर हुआ है। प्राचीन काल से वर्तमान तक नारी का जीवन बहुत संघर्षों एवं परिवर्तनों से गुजरा है। पूज्यनीय देवी से साधारण व्यक्तित्व तक की पहचान का सफर आसान नहीं है। हिन्दी उपन्यासों में नारी को कथानक का केन्द्र बनाकर समय-समय पर उसके विविध पक्षों का उद्घाटन किया गया है। डॉ. हजारी प्रसाद व्दिवेदी ने स्त्री के बारे में लिखा है "पुरुष निसंग है, स्त्री आसक्त। पुरुष निर्व्दंव्द है, स्त्री व्दंव्दोन्मुखी। पुरुष मुक्त है, स्त्री बद्ध।"

समाज का निर्माण जिन व्यक्तियों से होता है, उनका सृजन एवं संस्कार स्त्री द्वारा ही होता है। अतः दूसरे के व्यक्तित्व को विकसित करने वाली स्त्री का अपना व्यक्तित्व विकसित होना अत्यावश्यक है। पुरुष ही हमेशा से धनोपार्जन के लिए घर से बाहर जाते थे महिलाएँ चार-दिवारी के अंदर कैद थीं। बीसवीं शताब्दी में औद्योगीकरण के बाद स्त्री-शिक्षा का प्रसार विशेष तीव्रता से हुआ और कालांतर में समानता का अधिकार। अब वे पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगीं। शिक्षित युवकों ने नई रोशनी में देखा कि नारी घर की दासी नहीं अपितु सहयोगिनी है। कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार "वर्तमान परिवेश में शादी से बढ़कर नारी आर्थिक सुरक्षा चाहती है, जिससे वह जिंदगी की बिकट से बिकट समस्या पर दो टूक निर्णय ले सके और अपने नीचे एक पक्की जमीन पा सके और अपने स्वाभिमान की रक्षा कर सके।"

प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी-उपन्यासों में नारी के चित्रण में निश्चित आदर्शों के अभाव के कई कारण थे जिसमें प्रमुख थे नारी की आर्थिक पराधीनता और समाज पर रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव। प्रेमचन्द के पहले नारी का अपना कोई अलग अस्तित्व ही नहीं था। समाज में उसे उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता था। वह सिर्फ लेखकों की दया का पात्र थी। मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं - "अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी आँचल में है दूध और आँखों में पानी।" वहीं आधुनिक काल के कवि जयशंकर प्रसाद ने समाज में स्त्रियों का बोध अपनी रचना 'कामायनी' की इस पंक्ति से कराया है, "नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग, पगतल में। पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।"

हिन्दी उपन्यास की परम्परा में प्रेमचंद ने अपने साहित्य में पहली बार नारी के स्वतंत्र, आत्मनिर्भर एवं वास्तविक स्वरूप को चित्रित किया। कल्पना की पॉलिश उन पर है तो लेकिन बहुत कम। उन पात्रों की अपनी मान्यतायें हैं, अपने आदर्श हैं, अपने विचार हैं और अपने दृष्टिकोण हैं। उनके जीवन की समस्त आशा-निराशायें सुख-दुख जैसे हमारी आँखों के समक्ष मूर्तिमान हो उठते हैं। गोदान की धनिया का व्यक्तित्व तो मानो विद्रोह के ही तानों-बानों से बुना हुआ है। अशिक्षित होने के बावजूद स्वाभिमान से भरपूर स्त्री है। विषम सामाजिक रूढ़ियों से धनिया को बड़ी घृणा है। वह झुनिया को अपने परिवार में शरण देती है। दातादीन के यह कहने पर कि 'तुम्हें उस दुष्टा को घर में न रखना चाहिए था', धनिया कहती है- "हमको प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। व्याहता न सही पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती ? वही काम बड़े-बड़े करते हैं, उनसे कोई कुछ नहीं बोलता, उन्हें कलंक भी नहीं लगता।" वहीं गोदान की पढी-लिखी, नौकरी पेशा वाली मालती का एक चित्र देखिये - "ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंग्लैंड से डॉक्टरी पढ़ कर आयी हैं और अब प्रेक्टिस करती हैं। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं।"

प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यासों में सबसे अधिक स्त्री मन को खंघालने का कार्य मनोविश्लेषण वादी लेखकों ने किया। जिसमें अज्ञेय, जैनेन्द्र और इलाचंद जोशी आते है। अज्ञेय रचित उपन्यास शेखर एक जीवनी में शशि एक स्थान पर शेखर से कहती है "स्त्री हमेशा से अपने को मिटाती आई है। ज्ञान सब उसमें संचित है जैसे धरती में चेतना संचित है पर बीज अंकुरित होता है तो धरती को फोड़कर।" जैनेन्द्र की दृष्टि में नर-नारी की समस्या का समाधान आत्म-लय ही है। जैनेन्द्र की नारी पति की अवहेलना नहीं करती। उसके सम्मुख तो वह इतनी कर्त्तव्यगत है, इतनी सत्यप्रिय है कि पतिव्रता भी लज्जित होवें। फिर भी उसके अन्दर कुछ घुमड़ता है जो उसे समाज से इतर भी प्रकृति के प्रति, विराट् के प्रति उन्मुख होने के लिये प्रेरित करता है, उसे जैसे आभास होता है कि समाज इति नहीं है, इसके आगे भी देखना होगा। इस नारी में तो एकदम शुद्ध भारतीय प्राण है। जैनेन्द्र कुमार कहते थे-"मुझे तो लगता है राधा भी अपने जमाने में खूब तिरस्कृता और लांछिता रही होंगी।"

नारी का व्यक्तित्व धीरे-धीरे सबल हो रहा था और अपने अधिकारों को पहचानने की जागरूक भावना ने उसे झकझोर दिया था। नारी ने स्पष्टतः समझ लिया था कि उसकी अवनति एवं पराभव का मूल कारण उसकी आर्थिक पराधीनता है। "अर्थाभाव के कारण जीवन में अवरोध उत्पन्न होने से उसमें घुटन, कुंठा, संत्रास, हीन भावना आदि का वातावरण व्याप्त हो जाता है।"

कामकाजी नारी को आदर्श और कर्तव्य इन दो दिशाओं में से अपना सुख और अधिकार खोजना होता है। पुरुष का विचार होता है कि जिसे वह पत्नी के रूप में अपनाता है वह तन मन से उसकी सेवा करे और हो सके तो धन से भी सेवा-अर्चना करें। हर युग हर परिस्थितियों में स्त्री ने खुद को बदला और समाज की प्रत्येक चुनौती को स्वीकार किया। अगर इस समाज में कुछ नहीं बदला तो वह है पुरुष की रुढ़ मानसिकता। 'कालचक्र' की कल्पना "अपने आप में कुमारेश से किसी तरह भी उन्नीस नहीं अपितु इक्कीस है।" दोनों के विचारों में भिन्नता होने के कारण दांपत्य संबंध में तनाव आ जाता है। इसी कारण से दोनों के संबंध विकृत होते जाते हैं। दोनों एक साथ रहते हुए भी अलगाव का अनुभव करते हैं। 'ज्वार' उपन्यास की सुषमा की स्थिति भी ऐसी ही है।

उसके पति अशोक को परिवार एक झमेला प्रतीत होता है। सुषमा अपने सामर्थ्य से बढ़कर सहनशक्ति से अपनी दोनों भूमिका अदा करती है। परंतु उसका पति स्वार्थी आत्मकेंद्रित है। वह उसकी हर बात को उपेक्षा के भाव से लेता है, उसकी हर बात अशोक को संदर्भहीन लगती है। पुरुष नारी पर अपना अधिकार चला सकता है, अपमान कर सकता है, उसके संबंधियों के आने, रहने के लिए रोक लगा सकता है तो पत्नी भी यही सोचने के लिए क्यों विवश न हो ? आज की नारी ने सुशिक्षित होकर समाज में एक निश्चित स्थान और परिवार में अपना अलग अस्तित्व एवं अस्मिता बनायी है। उसके चिंतन और बौध्दिक क्षमताओं का विकास हुआ है। वह मात्र घर-परिवार में रहकर संतुष्ट नहीं हो पा रही है। वह अपने व्यक्तित्व की सार्थकता की तलाश में घर से बाहर निकलकर अर्थार्जन कर रही है। वह केवल आर्थिक विवशता से नौकरी नहीं कर रही है, इसके साथ अर्थतर कारण भी हैं। अपने परिवार के लिए लडकियाँ पिता की भूमिका और ज्येष्ठ पुत्र की भी भूमिका निभा रही हैं जिसके चित्र हम पचपन खम्भे लाल दीवारे की सुषमा, मुझे चांद चाहिए की वर्षा के रूप में देख सकते हैं। पति की मृत्यु के बाद या तलाक के बाद किसी के आश्रय में न रहकर अपनी संतान के पालन का दायित्व उसने सहर्ष स्वीकार किया है, जैसे आपका बंटी की शकुन। स्त्री परिवार का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए और गृहस्थी की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अपने पति के साथ मिलकर कामकाज की ओर अग्रसर हो रही है,जैसे एक इंच मुस्कान की रंजना।

आज की आधुनिक स्त्रियां दोहरे दायित्वों को अपनाकर जटिल स्थिति को झेल रही हैं। कामकाजी नारी में स्वाभिमान अधिक पाया जाता है। आर्थिक स्वावलंबन अपनाकर पारिवारिक दायित्वों एवं संबंधों से वह मुक्त होना नहीं चाहती है। आर्थिक आवश्यकता न होते हुए भी वह अपनी आत्म सार्थकता की तलाश के लिए अर्जक का कार्य कर रही है जैसे रुकोगी नहीं राधिका की राधिका, उसके हिस्से की धूप की मनीषा। सन् साठ के पूर्व के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में इस प्रकार की प्रवृत्ति अनुपलब्ध है क्योंकि उस समय के समाज में नारियाँ आर्थिक विवशता के कारण ही नौकरी करती थी। यही चित्र साठोत्तरी उपन्यासों में प्रतिबिंबित होता है।

स्पष्ट है कि आधुनिक नारी समाज के कठोर आघात सहते हुए भी आत्महनन तथा आत्महत्या जैसे हीन कार्य अपनाना नहीं चाहती। वह आत्मनिर्भर बनकर समाज को चुनौती देने का यत्न करती है। शेषयात्रा' में अनु के रूप में एक ऐसी ही नारी का चित्रण हुआ है, जो पति द्वारा त्याग दिये जाने पर टूटती नहीं, बल्कि साहस मेहनत तथा कठोर जीवन संघर्ष से अपनी दारुण स्थिति को बदलकर एक नयी जिंदगी के निर्माण में सफल होती है। आज की नारी अपनी त्रासद स्थिति से उठने के लिए दीर्घ मेहनत और आत्मविश्वास के बलपर आत्मनिर्भर बन सकती है। अपनी जिंदगी स्वयं गढ सकती है। अनु मातापिता विहीन है। मामा मामियों के संरक्षण में बडे ऐशोराम में जीवन बिताती है। उसकी शादी विदेश में रहनेवाले प्रणवकुमार से होती है। विदेश में घर, परिवेश, रहनसहन, खानपान आदि में बडी मुश्किल से वह अपने को संभाल पाती है। कुछ ही दिनों में पतिद्वारा त्याग दी जाती है। भारतीय संस्कारों में पली अनु इस आकस्मिक घटना को सह नहीं सकती। परिणाम स्वरूप इस स्थिति को पागलपन का दौरा कहकर मेंटल अस्पताल में भर्ती कराया जाता है अनेक प्रयत्नों के बावजूद पति को पाने में असमर्थ अनु अपनी नयी जिंदगी आरंभ करती है। तलाकशुदा नारी को जो यातनाएं भुगतनी पडती है उन सभी को दृढ़ता से मुकाबला करती हुई वह डॉक्टर बनती है । पति द्वारा की जानेवाली उपेक्षा 'छिन्नमस्ता' की प्रिया को शादी के बाद फिर अर्थार्जन करने के लिए प्रेरित करती है। प्रिया अमीर घराने की बहु है, पति करोडपति है। विवाह के पहले वह नौकरी करती थी तब उसे नौकरी की आवश्यकता थी।

शादी के बाद वह नौकरी छोडती है। परंतु ससुराल का वातावरण ठीक नहीं था। वह एक स्थान पर फिलिप से कहती है कि "सच कहूँ फिलिप, पैसे की कमी नहीं थी। अमीरी की आवरण में छिपे गरीब मन का ओछापन झेलते झेलते मैं थक गई थी हर चीज के लिए पैसा मांगना और फिर हिसाब देना, रोज की झकझक ।"5 इसलिए वह स्वतंत्र व्यवसाय शुरू करती है। वह पति नरेंद्र से कहती है कि "नरेंद्र मैं व्यवसाय रूपये के लिए नहीं कर रही, हाँ चार साल पहले लब मैंने पहले पहल काम शुरू किया था, मुझे रूपयों की जरूरत थी, पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी है। यह आये दिन की विदेशों की उडान ... यह मेरी जिंदगी के कैनवास को बड़ा करती है।" उसे पति से जितने चाहें उतने पैसे मिलते थे। परंतु उसे हिसाब देना पडता था। उसे यह अच्छा नहीं लगता। वह सोचती है कि स्त्री का कोई स्वाभिमान नहीं।

रेत की मछली' की कुंतल पति द्वारा तलाक देने के बाद नौकरी करती है, "उसके पास स्वावलंबी होने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं।" पिता के विरोध में उसने प्रेमविवाह किया था । इसलिए पति से तलाक होने के बाद स्वाभिमानी कुंतल पिता के घर न जा सकी। अपने भरण पोषण के लिए उसे नौकरी करनी पडती है।

नौकरी करने के मूल में निस्संदेह आर्थिक कारण होता है, उसके साथ इसमें सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारण भी होते हैं। आर्थिक स्वातंत्रता के लिए नौकरी करनेवाली नारियों के सामने धनाभाव का होना ही आवश्यक नहीं, उनमें निराशा, परिस्थितियों का दबाव, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, असंतोष का भाव आदि भी होते हैं। वे पारिवारिक माहौल में समझौता नहीं कर पाती। अतः अपने ढंग से वे जीना चाहती हैं। इसके लिए आर्थिक स्वतंत्रता अनिवार्य होती है।

सहचारिणी' की नीलम पति के मानसिक शोषण से हताश होकर रवि और रेणु के भरण पोषण के लिए नौकरी करती है। 'खुली हवा' की राधा पति से तंग होकर माता-पिता के पास आती है। वह माता-पिता से सामाजिक संरक्षण चाहती है, और आर्थिक संरक्षण के लिए नौकरी करती है। 'उसका घर' की ऐलमा भाई से तंग आकर नौकरी करने के लिए घर छोडकर चली जाती है। दमे की बीमारी के कारण पति ने उसे त्याग दिया था। वह आश्रय पाने के लिए भाई के पास आती है। परंतु भाई उसे अपने बॉस को खुश करने का साधन बनाता है। 'सुरंगमा' की सुरंगमा बिना प्यार के ही पलकर बडी होती है। पिता शराबी जुआरी था। माँ क्षय रोग से पीडित होकर मर जाती है। अकेली सुरंगमा अपने जीविकोपार्जन के लिए बैंक में नौकरी करती है। उसके हिस्से की धूप' की मनीषा पति की अतिव्यस्तता तथा उदासीनता से दुःखी है। वह कहती है- "वैवाहिक जीवन की स्मृतियों को खोद खोद कर निकालने पर भी वह एक क्षण ऐसा ढूंढ नहीं पाती जब औसत पति पत्नी की भांति दोनों ने अनाप-शनाप विषयों पर गपशप की हो।"

प्रायः दिखाई यह देता है कि शिक्षित नारियों में परिस्थितियों का विश्लेषण करने की क्षमता होती है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत हैं। नारियों के मन में सदियों से पल रहे हीन भाव आज शिक्षा के कारण दूर हो गये हैं। आज बढ़ती शिक्षा, जागृति, आत्मनिर्भरता ने नारी को विचोर करने की शक्ति में परिवर्तन कर दिया है। "वह पुरुष को संरक्षक नहीं मित्र अथवा साथी रूप में देखना चाहती है। उसमें पुरुष के समान स्वावलंबी बनने की चाह प्रबल हो गई है।" यही कारण है कि अर्थाभाव न होते हुए भी अर्थार्जन करने की इच्छा नारी स्वतंत्रता की उद्घोषणा कर रही है। आर्थिक रूप से परिवार के किसी सदस्य पर निर्भर रहना वह अपमानजनक मानती है। 'बेघर' की संजीवनी ऐसी ही नारी है जो भाई-भाभी पर निर्भर रहना नहीं चाहती। इसलिए नौकरी करती है।

आपका बंटी' की शकुन शादी के पहले से नौकरी करती है। विवाह विच्छेद होने के बाद भी नौकरी करती है। आर्थिक स्वतंत्रता ही शकुन

को सही निर्णय ले पाने और जीवन में आगे बढने के लिए प्रेरित करती है। आर्थिक स्वतंत्रता और स्त्री संबंध के बारे में प्रमिला कपूर ने लिखा है कि "नये आर्थिक ढाँचे का विकास दो चरणों में हुआ। पहले चरण में शिक्षित नारी का नौकरी और विवाह के बीच एक को चुनना पडा। जिन्होंने नौकरी को चुना उनमें से अधिकांश को विवाह और पारिवारिक जीवन से वंचित रहना पड़ा। दूसरे चरण में केवल नौकरी अथवा विवाह के प्रश्न को छोड दिया गया और नौकरी एवं विवाह दोनों की मिली-जुली भूमिकाएं निभाने का आम प्रचलन हुआ।"

वैवाहिक जीवन पति पत्नी को बांध देता है। परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए, विवाह कुछ सीमा रेखाएँ दंपत्तियों के बीच अवश्य खींच देता है जो समाज स्वीकृत है। आज के युग में वैवाहिक जीवन के संदर्भ में भी पुरुष स्त्री के स्वतंत्र विचार व्यक्त होने लगे हैं। वैवाहिक सूत्र में बंधे स्त्री पुरुष के लिए यह आवश्यक है कि वे जो भी कार्य करें एक दूसरे की स्वीकृति से, एक दूसरे के सहयोग से। इस संदर्भ में उसके हिस्से की धूप की मनीषा का विचार बडा महत्त्वपूर्ण बन पड़ता है "यह वैवाहिक जीवन भी बड़ी अजीब चीज है, वह सोच रही थी, जो करो एक साथ, साथ बैठो, साथ बोलो, चाहे बोलने को कुछ हो, चाहे नहीं, साथ घूमो, साथ दोस्त बनाओ, चाहे एक का दोस्त दूसरे को कितना भी नामुराद क्यों न लगे, साथ खाओ और साथ सोओ, चाहे एक के खर्राटे दूसरे को सारी रात जगाये, और ध्यान न रखे कि वह थका है।"

'अनित्य' की मुकर्जी बाबू ने काजल से इसलिए तलाक ली कि इन दोनों की विचारधाराएँ भिन्न थी। वह तलाक लेकर पुत्र को अपने पास रख लेता है। 'कम्मी और नंदा' की कम्मी पढ़ी लिखी सुशिक्षित नारी है। बचपन में तय हुई शादी मजबूरी मे कर लेती है। शादी के बाद उसे मालूम होता है कि पति धोखेबाज, मक्कार है। इससे शादी करने के पहले किसी अन्य लडकी से उसने प्रेम किया था, उसे एक बच्ची भी है, यह समझकर पति और उसकी प्रेमिका की शादी कर देती है और तलाक लेकर फिर नौकरी करने लगती है। वह हताश हो जाती है, तलाक के अतिरिक्त उसके पास अन्य विकल्प नहीं रहा।

निष्कर्षत: नॉन वर्किंग नारियों की तुलना में वर्किंग नारियां अधिक सुखी है। उन्हें परिवार में निश्चित मान-सम्मान मिला है। वह स्वावलंबी होने के कारण अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती हैं। आलोच्य उपन्यासों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि वर्किंग वीमेन आधुनिकता और परंपरा दोनों के बीच खड़ी है। वह न पूर्ण रूप से आधुनिकता को अपनाती है, न पूरी तरह परंपरा को नकारती है। इस दुर्बलता से उसे मुक्ति पाना आवश्यक है, तभी उसे जीवन में सुख मिलेगा। हर्ष की बात यह है कि वह पुरुष से अपने अधिकार माँगती हुई उनके प्रति कटु नहीं बन गई है। वह पुरुष के साथ रहकर स्वतंत्रता से जीना चाहती है।

****

संदर्भ सूची-

1. डॉ. हजारी प्रसाद - बाणभप्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-110
2. कृष्ण बिहारी मिश्र, आधुनिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ. 28
3. प्रेमचंद-गोदान, पृष्ठ 183
4. शेखर : एक जीवनी भाग द्वितीय, पृ० 224
5. साहित्य-संदेश, नारी की कल्पना – श्री ज्ञानचन्द, फरवरी 1938
6. बिजलीप्रभा प्रकाश, जैनेंद्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल, पृ. 97
7. मधु भादुडी- कालचक्र, पृ. 109
8. ऊषा प्रियंवदा, उसके हिस्से की धूप, पृ. 61
9. प्रमिला कपूर, भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ, पृ. 8
10. मृदुला गर्ग, उसके हिस्से की धूप, पृ. 20

दोहरी जिम्मेदारी का बोझ: भारतीय कामकाजी महिलाओं में कार्य-परिवार संघर्ष का विश्लेषण

डॉ. अंजना सिंह
अतिथि विद्वान –हिंदी विभाग
प्रधानमंत्री कॉलेजऑफ़ एक्सीलेंस
शासकीय राजनारायण स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय बैढन, जिला –सिंगरौली (म.प्र.)

शोध सारांश

भारतीय शहरी परिवेश में कार्यरत मध्यम आयु वर्ग की महिलायें अक्सर कार्य-परिवार संघर्ष (WFC) की जटिलताओं में घिरी रहती हैं, जिसे घरेलू अपेक्षाओं और पेशेवर मांगों के बीच के अदृश्य तनाव के रूप में समझा जाता है। पारंपरिक लिंग भूमिकाओं के कारण उत्पन्न होने वाला यह 'दोहरी जिम्मेदारी का बोझ' अक्सर इन महिलाओं के करियर की प्रगति और व्यक्तिगत स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। यह शोध दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर मौलिक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है: पहला, संघर्ष के उन सूक्ष्म स्रोतों की पहचान करना जो संगठनात्मक नीतियों और पारिवारिक समर्थन की कमी से परे हैं (जैसे, 'माँ' होने की सामाजिक अपेक्षाएँ)। दूसरा, WFC से निपटने के लिए महिलाओं द्वारा उपयोग की जाने वाली जटिल समय-प्रबंधन और सीमा-निर्धारण रणनीतियों का विश्लेषण करना। अंतिम रूप से, यह शोध कार्य-परिवार सुविधा को बढ़ावा देने के लिए कार्यस्थल में लचीलेपन और पारिवारिक भूमिकाओं के पुनर्संरचना की आवश्यकता पर बल देता है, जिससे भारतीय कामकाजी महिलाओं के लिए एक अधिक संधारणीय और समान कार्य-जीवन संतुलन सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द (Keywords): दोहरी जिम्मेदारी, कार्य-परिवार संघर्ष (WFC), सीमा-निर्धारण, लिंग भूमिकाएँ, समय प्रबंधन, भारतीय महिलाएँ।

शोध विषय की विस्तृत व्याख्या:

1. समस्या का परिचय: आधुनिक कामकाजी महिला

आज की भारतीय कामकाजी महिलाएँ दो विरोधाभासी दुनियाओं के मिलन बिंदु पर खड़ी हैं। एक ओर, भारत की आर्थिक प्रगति और वैश्विकरण ने महिलाओं के लिए उच्च-स्तरीय पेशेवर करियर के द्वार खोले हैं, जिससे वे राष्ट्र निर्माण और अपने परिवार की आय में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। दूसरी ओर, ये पेशेवर उपलब्धियाँ पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और अपरिवर्तित घरेलू अपेक्षाओं के साथ टकराती हैं जिसे कार्य-परिवार संघर्ष (Work-Family Conflict - WFC) के रूप में समझा जाता है। यह संघर्ष केवल समय के बँटवारे तक सीमित नहीं है, बल्कि ऊर्जा, भावनात्मक संसाधनों और व्यक्तिगत पहचान के बँटवारे से भी जुड़ा हुआ है।

2. 'दोहरी जिम्मेदारी का बोझ' की व्याख्या

दोहरी जिम्मेदारी का बोझ एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक अवधारणा है जो इस तथ्य को दर्शाती है कि कामकाजी महिलाएँ अपने पेशेवर कर्तव्यों के अलावा, बिना किसी उचित समर्थन के, प्राथमिक रूप से घरेलू कार्यों और बाल-देखभाल की जिम्मेदारी भी उठाती हैं। भारतीय संदर्भ में, यह बोझ पितृसत्तात्मक मानदंडों और लिंग-आधारित भूमिकाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है, जहाँ घर का काम मुख्य रूप से 'स्त्री का काम' माना जाता है।

कार्य-परिवार संघर्ष तब उत्पन्न होता है जब एक भूमिका (पेशेवर या पारिवारिक) की माँगें दूसरी भूमिका की माँगों को पूरा करना कठिन बना देती हैं। यह संघर्ष मुख्यतः दो दिशाओं में होता है:

कार्य से परिवार संघर्ष (Work-to-Family Conflict): जब काम का तनाव, लंबे घंटे, या कार्यस्थल पर की गई भावनात्मक खपत घर में नकारात्मक रूप से प्रवेश करती है।

परिवार से कार्य संघर्ष (Family-to-Work Conflict): जब पारिवारिक दायित्व (जैसे, बच्चे की बीमारी या घरेलू काम) महिला को पेशेवर जिम्मेदारियाँ (जैसे, समय पर रिपोर्ट जमा करना या देर तक काम करना) पूरी करने से रोकते हैं।

यह अध्ययन तर्क देता है कि भारतीय कामकाजी महिलाओं के लिए, WFC मुख्य रूप से **'दोहरी जिम्मेदारी के बोझ'** के कारण और भी अधिक तीव्र हो जाता है।

3. अध्ययन का संदर्भ और आवश्यकता

यद्यपि कार्य-परिवार संघर्ष पर वैश्विक स्तर पर कई शोध हुए हैं, लेकिन **भारतीय संदर्भ की विशिष्टताएँ** इसे मौलिक विश्लेषण का विषय बनाती हैं। भारतीय परिवार अक्सर संयुक्त या विस्तारित होते हैं, जहाँ अपेक्षाओं और समर्थन का जाल जटिल होता है। इसके अलावा, मध्यम आयु वर्ग की महिलाएँ (35-55 वर्ष) अपने करियर के शिखर पर होती हैं, लेकिन साथ ही वे 'सैंडविच पीढ़ी' का भी हिस्सा होती हैं—यानी, वे अपने बच्चों की ज़रूरतों और वृद्ध माता-पिता/ससुराल वालों की देखभाल दोनों के बीच फँसी होती हैं।

यह शोध मौजूदा साहित्य में इस बात पर ध्यान केंद्रित करके एक महत्वपूर्ण अंतर को भरता है कि यह **दोहरा बोझ** कामकाजी महिलाओं के **मानसिक स्वास्थ्य, करियर की प्रगति और वैवाहिक संतुष्टि** को किस प्रकार प्रभावित करता है, और वे इसे कम करने के लिए कौन सी **अद्वितीय मुकाबला रणनीतियाँ** अपनाती हैं।

शोध का सैद्धांतिक निष्कर्ष:

1. मुख्य निष्कर्षों का सारांश

यह अध्ययन **"दोहरी जिम्मेदारी का बोझ: भारतीय कामकाजी महिलाओं में कार्य-परिवार संघर्ष का विश्लेषण"** ने अपने उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पूरा किया और भारतीय कामकाजी महिलाओं के संघर्ष के बहु-आयामी स्वरूप को उजागर किया। शोध से यह स्पष्ट होता है कि **पारंपरिक पितृसत्तात्मक अपेक्षाएँ** अभी भी भारतीय शहरी परिवारों में गहराई से आरोपित है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाएँ न केवल शारीरिक रूप से बल्कि **मानसिक रूप से भी अत्यधिक बोझ** से पीड़ित हैं।

WFC का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जो केवल तनाव तक सीमित नहीं है, बल्कि करियर की प्रगति में **स्पष्ट अवरोधों** और समग्र जीवन संतुष्टि में कमी के रूप में भी प्रकट होता है। इसके बावजूद, महिलाओं ने **जटिल सीमा-निर्धारण रणनीतियों** (जैसे, घर और काम के बीच स्पष्ट रूप से समय विभाजित करना) को अपनाया है, जो संघर्ष को प्रबंधित करने में सहायक होती हैं, हालांकि ये रणनीतियाँ अक्सर उनकी निजी ऊर्जा की कीमत पर आती हैं।

2. सैद्धांतिक और व्यावहारिक निहितार्थ

सैद्धांतिक निहितार्थ: यह शोध **भूमिका अतिभार सिद्धांत (Role Overload Theory)** को भारतीय संदर्भ में पुष्ट करता है, लेकिन साथ ही **समय-आधारित संघर्ष** के परे जाकर **ऊर्जा-आधारित संघर्ष** और **तनाव-आधारित संघर्ष** के पहलुओं को उजागर करके साहित्य में नया योगदान देता है।

व्यावहारिक निहितार्थ:

संगठनों के लिए: लचीले काम के घंटे, आवश्यक डे-केयर समर्थन, और प्रबंधन के स्तर पर पितृत्व अवकाश (Paternity Leave) को अनिवार्य करने जैसी नीतियों को तुरंत लागू करने की आवश्यकता है, ताकि कार्यभार का समान वितरण हो सके।

परिवारों के लिए: सामाजिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से पुरुषों को घरेलू जिम्मेदारी साझा करने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है, जिससे महिलाओं पर से 'दोहरी जिम्मेदारी' का बोझ कम हो।

3. शोध की सीमाएँ और भविष्य की दिशा

इस शोध की एक सीमा इसका **गुणात्मक** स्वरूप या **सीमित भौगोलिक क्षेत्र** हो सकती है, जिससे इसके निष्कर्षों को व्यापक रूप से लागू करने में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। भविष्य के शोध को **मात्रात्मक दृष्टिकोण** का उपयोग करके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों और ग्रामीण क्षेत्रों की कामकाजी महिलाओं के बीच इस संघर्ष की तुलना करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, भविष्य के अध्ययन इस बात पर भी केंद्रित हो सकते हैं कि पुरुष घरेलू कार्यों में किस हद तक भागीदारी करते हैं और इसका महिला के WFC पर क्या प्रभाव पड़ता है।

****

1. संदर्भ ग्रंथ सूची -

शोध विषय "दोहरी जिम्मेदारी का बोझ: भारतीय कामकाजी महिलाओं में कार्य-परिवार संघर्ष का विश्लेषण" के लिए, इन दो श्रेणियों के संदर्भों का उपयोग किया गया है

2. **खंड 1: कार्य-परिवार संघर्ष (WFC) के सैद्धांतिक जनक**
3. **Greenhaus, J. H. & Beutell, N. J. (1985).**
4. **महत्व:** इन्होंने **कार्य-परिवार संघर्ष (WFC)** की व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा दी, जिसमें तीन प्रकार के संघर्ष (समय-आधारित, तनाव-आधारित, और व्यवहार-आधारित) का उल्लेख है।
5. **Kahn, R. L., Wolfe, D. M., Quinn, R. P., Snoek, J. D., & Rosenthal, R. A. (1964).**
6. **महत्व: भूमिका अतिभार (Role Overload)** की मूल अवधारणा को समझने के लिए महत्वपूर्ण, जो बताती है कि एक व्यक्ति पर कई भूमिकाओं की मांगें कैसे तनाव पैदा करती हैं।
7. **Edwards, J. R., & Rothbard, N. P. (2000).**
8. **महत्व:** इन्होंने **सीमा सिद्धांत (Boundary Theory)** और कार्य-परिवार इंटरफ़ेस (Interface) पर काम किया। यह समझने के लिए ज़रूरी है कि लोग अपने जीवन के क्षेत्रों को कैसे अलग या एकीकृत करते हैं।
9. **Hobfoll, S. E. (1989).**
10. **महत्व: संसाधन संरक्षण सिद्धांत (Conservation of Resources Theory)** के जनक। यह समझाता है कि WFC तब होता है जब संसाधन (समय, ऊर्जा) कम होते हैं, और इससे कैसे तनाव बढ़ता है।
11. **खंड 2: 'दोहरी जिम्मेदारी का बोझ' और लिंग भूमिकाएँ**
12. **Hochschild, A. (1989).** *The Second Shift: Working Parents and the Revolution at Home.*
13. **महत्व: 'सेकंड शिफ्ट'** की अवधारणा के जनक। यह बताता है कि काम करने के बाद भी महिलाएँ घर पर एक और पूरी 'शिफ्ट' (घरेलू काम) करती हैं। यह आपके **'दोहरी जिम्मेदारी का बोझ'** की व्याख्या के लिए केंद्रीय है।
14. **Pleck, J. H. (1977).**
15. **महत्व:** कार्य-परिवार शोध में लिंग भूमिकाओं और पारंपरिक अपेक्षाओं की भूमिका पर प्रारंभिक कार्य।

आलोचक के दृष्टि से गोदान का मूल्यांकन

डॉ. निशा पटेल
(नेट/जे.आर.एफ.)
अतिथि विद्वान (हिन्दी विभाग)
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

सारांश-प्रस्तुत आलोचनात्मक निबंध प्रेमचंद के महत्वपूर्ण उपन्यास "गोदान" के साहित्यिक महत्व और विविध आलोचनात्मक दृष्टिकोणों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। दस्तावेज़ स्पष्ट करता है कि "गोदान" (1936) हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन और किसान-चेतना का महाकाव्य है, जो महाजनी सभ्यता द्वारा शोषित भारतीय गांव की व्यथा को दस्तावेज़ीकृत करता है। निबंधकार रामचंद्र शुक्ल, बच्चन सिंह, डॉ. नगेंद्र, जैनेंद्र कुमार, रामविलास शर्मा, मीनाक्षी मुखर्जी और अन्य प्रमुख आलोचकों की विमर्शात्मक टिप्पणियों का समन्वय करता है। प्रमुख विषयों में शामिल हैं: किसान जीवन का यथार्थवादी चित्रण, होरी का त्रासद पात्र, नगर-ग्रामीण द्वैत, मार्क्सवादी विश्लेषण, संयुक्त परिवार का विघटन, और पूंजीवाद एवं सामंतवाद का संक्रमण काल। उपन्यास को पीढ़ीगत चेतना के अंतर (होरी बनाम गोबर) और प्रेमचंद की भविष्य-दृष्टि का प्रतीक माना गया है।

बीज शब्द (Keywords)-गोदान , किसान-चेतना, महाजनी शोषण, होरी,ग्रामीण यथार्थवाद, सामंतवाद का पतन, पूंजीवाद का उदय, नगर-ग्रामीण द्वैत, संयुक्त परिवार, जनसंस्कृति, मार्क्सवादी विश्लेषण, पीढ़ीगत चेतना, प्रेमचंद की भविष्य-दृष्टि.

प्रस्तावना - हमारे प्राचीन महाकाव्यों में,कथाओं में गाँव की, गाँव के किसान और उसकी भूमि की बात कम ही आती है, किन्तु हमारे देश में उपन्यास कला का आधुनिक काल में जो विकास हुआ उसमें शायद ही किसी गाँव के किसान या उसके भूमि प्रेम को याद न किया गया हो अतः आधुनिक काल के उपन्यासों का इसका श्रेय सम्राट प्रेमचंद को है। जीवन के पहलू की बात गोदान में की है, गोदान भारतीय गाँव और किसान जीवन की व्यथा का एक ऐसा दस्तावेज है, जो महाजनी सभ्यता के द्वारा शोषित है। प्रेमचन्द हिन्दी के महत्वपूर्ण कथाकार है। उनके साहित्य की समीक्षा का आरम्भ उनके लेखन के साथ ही हो गया था। आरम्भ में उनके उपन्यासों की समीक्षाएँ हिन्दी की महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। बाद में उनके कृतित्व से सम्बंधित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई। हिन्दी के सभी प्रमुख आलोचकों ने प्रेमचन्द साहित्य पर लिखा है। इसके अलावा भारतीय विश्वविद्यालयों में उन पर अनेक शोध - कार्य हो चुके हैं। उनमें से बहुत प्रकाशित भी हुए हैं।

प्रकाशित होते ही गोदान (1936) को एक महत्वपूर्ण कृति मान लिया गया था। लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में उसकी समीक्षाएँ छपी, इसके पश्चात् भारत के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में गोदान को स्थान मिला, जो अब तक निर्विवाद रूप से बना हुआ है। इसलिए हिन्दी साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी गोदान तो पढ़ता ही है। गोदान एक ऐसी गाँव की व्यथा-कथा को प्रस्तुत करता है जो - "भारतीय उपन्यास मध्यवर्ग का महाकाव्य न होकर किसान चेतना की महागाथा है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में प्रेमचन्द की कहानियों एवं उपन्यासों पर संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणी की है। परन्तु उन्होंने गोदान का उल्लेख नहीं किया है। शुक्ल जी कहते है-इस तृतीय उत्थान का आरम्भ होते-होते हमारे हिन्दी साहित्य के उपन्यास का यह पूर्ण विकसित और परिष्कृत स्वरूप लेकर स्वर्गीय प्रेमचन्द जी आये। द्वितीय उत्थान के मौलिक उपन्यासकारों में शीलवैचित्र्य की उद्भावना नहीं के बराबर थी। प्रेमचन्द जी के ही कुछ पात्रो में ऐसे स्वाभाविक ढाँचे की व्यक्तिगत विशेषताएँ मिलने लगी। प्रेमचन्द की-सी चलती और पात्रों के अनुरूप रंग बदलने वाली भाषा भी पहले नही देखी गयी थी। बच्चन सिंह "हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास" में कहते है - "वे अपने देश के किशानों की दयनीय जिन्दगी की खुशहाल जिन्दगी की खबरों में। वे अपने देश के किसानों की दयनीय जिन्दगी का सीधा साक्षात्कार करते हैं और 'गोदान' भारतीय किसानों का मर्मस्पर्शी, करुण और त्रासद दस्तावेज बन जाता है। किसानी संस्कृति को उजागर करने के लिए उन्होंने सबसे पहले किसानी भाषा का प्रयोग किया। विभिन्न वर्गों, जातियों की सांस्कृतिक जड़े उनकी भाषा में निहित होती है। होरी ही मृत्यु सहज-सरल ग्रामीण जीवन की भी मृत्यु है। शहर और गाँव के गरीबों की संस्कृति एक है। औद्योगिक सभ्यता गाँव के सामूहिक जीवन को नष्ट करती जा रही है। नृत्य, गीत से संबद्ध जन-संस्कृति को बड़े लोग घृणा करते है। प्रेमचन्द उसे जीवित रखने के पक्ष में है। डॉ. नगेन्द्र 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'गोदान' को तो ग्रामीण जीवन और कृषि-संस्कृति का महाकाव्य ही कहा जा सकता है। ग्रामीण जीवन का इतना सच्चा, व्यापक और प्रभावशाली चित्रण हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में नही हुआ है, संभवतः वह संसार के साहित्य में बेजोड़ है। "गोदान" में सामान्य जीवनधारा की अत्यंत सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों की सामान्य जिन्दगी को उसकी सम्पूर्ण मार्मिकता में प्रस्तुत किया है। जिनकी पृष्ठभूमि में जीवन का गहरा और व्यापक अनुभव तथा तीव्र संवेदना विद्यमान है।

गोदान पर पहली सार्थक टिप्पणी जैनेन्द्र कुमार ने की थी। जैनेन्द्र कुमार जी अपने निबंध "प्रेमचन्द का गोदान यदि मैं लिखता" में प्रेमचन्द के सामने ही जैनेन्द्र ने उनकी आलोचना की और अपनी अलग रचनात्मक दृष्टि से गोदान को परखा। गोदान के चरित्र, कथानक विस्तार की बात कहकर उन्होंने प्रेमचन्द के कथानक में बिखराव की ओर महत्वपूर्ण संकेत किये है, वे कहते है कि प्रेमचन्द कई बार कथानक-विस्तार के लोभ का संवरण नहीं कर पाते, इससे कथानक की कसावट ढीली हो जाती है। विस्तार होने पर भाव कम हो जाता है। जैनेन्द्र जी कहते है है कि अगर मैं गोदान लिखता तो इसमें इतने पृष्ठ नही होते और न ही इतने ज्यादा पात्र/पात्रों की इतनी विपुल संख्या पर जैनेन्द्र जी को विस्मय होता है। गोदान में गाँव की कथा पर शहरी कथा के थोपे जाने की बात भी उन्होंने की है। प्रेमचन्द की भाषा, मुहावरे, वर्णन शैली पर जैनेन्द्र मुग्ध है। रामविलास शर्मा ने "प्रेमचन्द और उनका युग" में गोदान की मूल समस्या ऋण को बताया है। गोदान में और लोग भी कर्ज लेते है पर जिस तरह होरी कर्ज लेता है, उस तरह कोई और नही लेता। दूसरे बिन्दु के रूप में उन्होंने संयुक्त परिवारों के

टूटने को चिन्हित किया। गोदान के किसी पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता, लेकिन अगर मेहता से होरी को जोड़ा जा सके, तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचन्द्र से मिलता-जुलता होगा। मेहता को उन्होंने यदि विचार दिए हैं, तो होरी बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ इच्छा-शक्ति/डॉ. रामविलाम शर्मा ने प्रेमचन्द के साहित्य में निहित उपनिवेशवाद विरोधी चेतना को रेखांकित किया। इसी कड़ी में प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी जी ने "प्रेमचन्द घर में" लिखती है कि जब मैंने गोदान को पढ़ा और होरी की मृत्यु की बात पढ़ी तो होरी की मौत पर मुझे रुलाई आ गयी। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयी। शिवरानी जी कहती है कि मैने पूछा- "आपने उस बेचारे को मारा क्यों? उस बेचारी धनियाँ को विधवा बना दिया। " मुझे भी यह बहुत बड़ा सवाल लगता है, पर उससे बड़ा ये कि होरी को मारते समय यही दर्द प्रेमचन्द जी को भी हुआ होगा, उनका हाथ जरूर काँपा होगा लिखते समय कितने सवाल गोदान को पढ़ते हुये उठते है। क्योंकि प्रेमचन्द जी के लिए भी आसान नहीं रहा होगा।

नन्ददुलारे वाजपेयी ने "प्रेमचन्द: एक साहित्यिक विवेचन" में प्रेमचन्द के मानवतावादी सेवाधर्म के आधार में किसी सुव्यवस्थित चिन्तन का अभाव दिखता है। इस सुव्यवस्थित चिन्तन को सुसम्बद्ध दर्शन समझना चाहिए। वैसे प्रेमचन्द ने अपनी दृष्टि के सन्दर्भ में कभी मानवतवादी सेवाधर्म का हवाला नहीं दिया है, जैसे आचार्य रामचन्द शुक्ल ने "लोकधर्म" या "लोकमंगल" की बात की है।

वाजपेयी जी का मानना है कि प्रेमचन्द ने अपने सेवाधर्म या निष्काम कर्मयोग का गम्भीर दार्शनिक विवेचन नहीं किया है। प्रेमचन्द की वर्णन क्षमता पाठक को तो भाव में बहा ले जाती है- पर चित्रण के अभाव में व्यक्ति (पात्र) को उसकी गहरी पहचान में नही उभार पाती। होरी पाठक में करुणा का संचार करता है, पर इस भाव संचार के पीछे बुद्धि के रेशम की डोर भी हो, तो भाव-संचार मार सकता है। उनका मानना है कि गोदान उपन्यास के ग्रामीण और नगरीय कथा में ऐक्य की कमी है वे लिखिते है- "गोदान के नागरिक और ग्रामीण पात्र एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहने वाले दो परिवार के सामान है, जिनका एक-दूसरे के जीवन क्रम से बहुत कम सम्पर्क है। वे कभी-कभी आते-जाते मिल लेते हैं और कभी-कभी बात पर झगड़ा कर लेते हैं, परन्तु न तो उनके मिलने में और न झगड़े में ही कोई ऐसा संबंध स्थापित होता है, जिसे स्थायी कहा जा सके।" 'गोदान' विस्तार में न सही गहराई में यह उपन्यास युग का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें भारतीय जीवन की करुणा होरी के रूप में साकार हो गई है। होरी मानो देश की वास्तविक स्थिति का प्रतिनिधि है। मेरी राय से गोदान तो केवल भारतीय कृषक की असहाय अवस्था दिखाकर समाप्त हो जाता है। प्रेमचन्द प्रत्यक्षवादी लेखक थे। प्रत्यक्षवादी से तात्पर्य है कि आज जो आपने समाचार पत्रों में पढ़ा कल उसे प्रेमचन्द की कहानियों में पढ़िए, प्रेमचन्द का लेखन सामजिकता की सीमा के बाहर नही जाता। इसी में नन्ददुलारे बाजपेयी जी कहते है- "समय ने प्रेमचन्द का साथ उतना नहीं दिया जितना प्रेमचन्द ने समय का साथ दिया है।" इन्द्रनाथ मदान जी कहते हैं कि गोदान में नगर-कथा इसका अभिन्न अंग नही है, बाहर की चीज है, मैल है, जिसे धोया जा सकता है। अपनी इस मान्यता के साथ उन्होंने नददुलारे वाजपेयी की मान्यता को दुहराया लेकिन बाद में इन्द्रनाथ मदान ने यह माना की देहात और शहर की कथा एक-दूसरे की पूरक है और उपन्यास की संरचना के मूल में हैं।

मीनाक्षी मुखर्जी गोदान कल्पना और यथार्थ में लिखती है कि गोदान उपन्यास में तीसरे दशक के मार्क्सवाद और उसकी विरोधाभासी स्थिति को गोबर के चरित्र के संबंध से देखा जा सकता है। उपन्यास में पाठक की सहानुभूति जड़ और श्रेणीबद्ध समाज को खत्म करने की बात करने वाले विद्रोही चरित्र गोबर के पक्ष में नहीं जाती वरन् भाग्य नियति और मरजाद की रक्षा करने वाले उसके पिता होरी के पक्ष में जाती है। इस प्रकार देखे तो गोदान में प्रेमचन्द, खन्ना जैसे पात्र का निर्माण करते हैं और उसके चरित्र द्वारा यह दर्शाते है कि कैसे पूँजी एक मनुष्य को अमानवीय बना देती है। बेलारी गाँव और होरी के परिवार के चारों ओर घूमती होरी की कथा एवं शहर की मण्डलियों और गोष्ठियों के इर्द-गिर्द घूमती मेहता और मालती की कथा के बीच का अन्तर वास्तविक और काल्पनिक का अन्तर है। मेरी नजर में गोदान ढहते हुए सामन्तवाद और उभरते हुए पूँजीवाद का व्याख्यान है, गोदान महाजनी दुश्चक्र में फँसे किसान की मजदूर बनने तक की प्रक्रिया का जीवित दस्तावेज है। यह एक यातनामय जिन्दगी से उबरने छटपटाहट और उससे उबर न पाने की विवशता की करुण कहानी है। यह परम्परा से सताई जा रही औरत की मुक्ति की आवाज है। गोदान के राय साहब देश भक्त भी है। वे कही भी और कभी भी होरी के सामने नही आते, किन्तु उसके खेत, घर, जमीन जायदाद सब कुछ नीलाम हो जाते हैं और सड़क की मजदूरी करते हुए वह मर जाता है प्रेमचन्द यहाँ इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना चाहते है कि शोषण की मशीन पहले से अधिक धारदार और घातक हो गई है। प्रेमचन्द्र का यह निष्कर्ष बदले हुए सन्दर्भों में सौ फीसदी सही है। अंग्रेजी राज की व्यवस्था और उभरते हुए महाजनों के बारे में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि हमारे राय साहब ताल्लुकेदार ज्वालामुखी के मुँह पर बैठे हुए हैं। उन पर लाखों रुपयों का कर्ज है, विलासिता का यहाँ साम्राज है, कहने को तो वे मालिक है, लेकिन उनकी कुँजी अब धीरे-धीरे खन्ना जैने बैंकरों के हाथ में है। प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में जमीदार को एक पतनोन्मुख शक्ति के रूप में चित्रित किया है, परन्तु महाजनों को कही भी कमजोर नही दिखाया उनकी बढ़ती हुई शक्ति का जिक्र किया है। पीढ़ियों की चेतना के फर्क और प्रेमचन्द की भविष्य-दृष्टि के संदर्भ में होरी और गोबर में दो जीवन-दृष्टियों का फर्क है। होरी संयुक्त परिवार की चेतना का व्यक्ति है, जबकि गोबर के जीवन में व्यक्तिवाद का प्रवेश होने लगा है। प्रेमचन्द ने बहुत सूक्ष्म तरीके से होरी और गोबर की चेतना में फर्क दिखाया है, हालाँकि होरी की ट्रेजडी उन्हें ज्यादा आकर्षित करती रही है। वास्तव में होरी समस्त भारतीय किसानों का प्रतिनिधि नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक दौर में लुप्त होता हुआ, मिटता हुआ भारतीय किसान है। उसकी ट्रेजडी अनिवार्य है।

अन्ततः हम देखते हैं गोदान हिन्दी कथा-साहित्य का एक ऐसा उपन्यास है, जिसको लेकर हिन्दी आलोचना में बाद-विवाद और चर्चा का माहौल बराबर बना रहा। कई दृष्टियों से इस उपन्यास को परखने की कोशिश हुई। समकालीन विमर्श के तहत इस पर दलित और स्त्री दृष्टिकोण में भी विचार हुआ। मार्क्सवादी और गैर- मार्क्सवादी दोनो धारा के आलोचकों ने अपनी राय इस पर जाहिर की। गोदान अपने आप में अमर रचना है, जो समय के धूल से धूमिल नहीं हुई और जीवन के समग्रता को अपने में समेटे हुए है।

****

संदर्भ सूची:-

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 359
2- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृष्ठ 377
3- हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, पृष्ठ 561
4- गोदान एक पुनर्विचार - जैनेन्द्र कुमार, पृष्ठ 13-14
5- प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन
6- प्रेमचन्द घर में - शिवरानी देवी पृष्ठ 238

विकसित भारत @ 2047

विनोद कुमार वर्मा
पीएचडी शोध छात्र
भूगोल संजय गांधी स्मृति शास. स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय सीधी, मध्य प्रदेश

शोध निर्देशक
डॉ. के.एस. नेताम
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष संजय गांधी स्मृति शास. पीजी. महाविद्यालय सीधी, मध्य प्रदेश

सारांश (Abstract)-यह शोध पत्र 'विकसित भारत @2047' की अवधारणा पर केंद्रित है, जो भारत को स्वतंत्रता के 100वें वर्ष तक एक विकसित राष्ट्र बनाने का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारत की समृद्धि से प्रेरित होकर, वर्तमान सरकार की विभिन्न योजनाओं जैसे जन -धन योजना, उज्ज्वला योजना, मेक इन इंडिया, आत्मनिर्भर भारत और डिजिटल इंडिया के माध्यम से आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिदृश्यों का विश्लेषण किया गया है। शोध के उद्देश्य में जलवायु परिवर्तन में भारत की भूमिका, आत्मनिर्भरता का निर्माण, आर्थिक-सामाजिक विकास, अंतरराष्ट्रीय मैत्री एवं डिजिटल प्रगति शामिल हैं। निष्कर्षतः, 2047 तक 30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था, सतत विकास एवं युवा सशक्तिकरण के माध्यम से भारत वैश्विक शक्ति के रूप में उभरेगा। यह पत्र भौगोलिक दृष्टिकोण से विकास की चुनौतियों एवं अवसरों पर प्रकाश डालता है, जो नीति-निर्माताओं एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

बीज शब्द (Keywords)-विकसित भारत @2047, आत्मनिर्भर भारत, आर्थिक विकास, जलवायु परिवर्तन, सतत विकास, डिजिटल इंडिया, सामाजिक समावेशन, युवा सशक्तिकरण, पर्यावरण संरक्षण, अंतरराष्ट्रीय मैत्री।

प्रस्तावना- प्राचीन भारत का शासन लोक कल्याण और लोकसमृद्धि ही भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक एव आर्थिक उन्नति के शिखर पहुंचने का मूलाधार थी।एक समय सोने की चिड़िया कहलाने वाला भारतवर्ष विदेशी शासन के शोषणकारी नीतियों के कारण सामाजिक व आर्थिक रूप से विपन्नता की ओर धकेल दिया गया। 15 अगस्त 1947 को अंग्रेजी दासता से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भी भारत में आर्थिक व सामाजिक पिछड़ापन था। विभिन्न क्षेत्रों में भारत ने प्रगति भी की, किंतु विकसित भारत का लक्ष्य स्वतंत्रता के कई दशकों तक कोसों दूर रहा।हाल ही के वर्षों में भारत ने अपने प्राचीन स्वत्व से प्रेरणा ली और प्रगति के नवीन कीर्तिमान स्थापित करते हुवे अग्रणी राष्ट्रों की कतार में खड़ा हो गया है। आज भारत के विकास की गाथाविभिन्न क्षेत्रों में अदभुद उपलब्धियों से भरी है, जिससे विकसित भारत की राह आसान बनी है। राजकोष की सुदृढ़ता से लेकर, वित्तीय समावेशन, बुनियादी ढाँचे और कृषि क्षेत्र में हो रहे भारी निवेश और 'प्रधानमत्री फसल बीमा योजना', 'कृषि सिंचाई योजना और किसान कल्याण योजनाओं से देश का सर्वांगीण विकास के वातावरण का सृजन हुआ है।जी.एस.टी. जैसी 'एक कर, एक राष्ट्र' की अवधारणा से वस्तुओ एंवं सेवाओ का राष्ट्रव्यापी बाजार पनप रहा है, उससे विनिर्माण क्षेत्र में भारत दुनिया का श्रेष्ठ राष्ट्र बनने की ओर बढ़ चला है। 08 नवंबर 2016 को भारत के विमुद्रीकरण (नोटबंदी) के ऐतिहासिक फैसले से 'आय घोषणा योजना' और भ्रष्टाचार निरोधक अनेक कानूनों से भ्रष्टाचार व कालेधन के उन्मूलन की दिशा में बड़ी पहल हुई है। विमुद्रीकरण ने डिजिटल भुगतान को प्रोत्साहित किया जिससे पारदर्शिता को बढ़ावा मिला है। स्वदेशी डिजिटल तरीके जैसे भीम एप, रुपे डेबिट कार्ड विकसित हुए हैं।'जन-धन योजना', प्रत्यक्ष लाभांतरण जैसे वित्तीय समावेश के उपायों ने विकास को समाज के अंतिम छोर तक सुलभ बना दिया है।'मेक इन इंडिया', 'स्टार्टअप इंडिया' और 'स्टैंडअप इंडिया' जैसे कार्यक्रमों ने भारत के युवाओं को भारत में रहने और भारत के साथ विकसित होने की प्रेरणा दी है। इन सारी अनूठी पहलों के पीछे है, वर्तमान भारत का कुशल नेततृव।

चलो, देखते हैं वह कौन-कौन सी योजनाएँ हैं, जिनसे भारत के विकास को गति मिली है और उसका लाभ अतिंम व्यक्ति तक पहुंचता है।'जन -धन योजना','उज्ज्वला योजना',बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना','प्रधानमत्री गरीब कल्याण योजना','नमामि गंगे श्रम','प्रधानमत्री आवास योजना', आयुषमान भारत योजना' आदि के बारे में जानते हैं जिनसे आम-जनमानस में विकास के अर्थ को समझने का सामर्थ्य बढ़ा है? महिलाओ,युवाओं,किसानों,गरीबों और हर नागरिक को लाभ पहुचाने का हर संभव प्रयास करके भारत विश्व पटल पर एक नए रूप में सक्षम और सशक्त देश के रूप में नज़र आएगा। कोविड-19 महामारी जैसी कठिन परिस्थितियों में भी, भारत सरकार ने अन्य देशों की बड़ी आबादी वाले देशों की तलुना में अद्वितीय भूमिका निभाई है। 'वंदे भारत मिशन' दुनिया में सबसे बड़ी पहलों में से एक बन गया। वर्तमान सरकार ने जन कल्याण के हित में 125 करोड़ भारतीयों को 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' के अतंर्गत आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने का सुनहरा अवसर दिया है। कोई भी देश केवल मेधावी राजनेताओ और शीर्ष प्रशासकों से नहींचलता,बल्कि लोकतंत्र की सफलता के लिए देश के प्रत्येक नागरिक की उचित सलाह और सहयोग के रूप में भागीदारी भी महत्वपूर्ण है। इसकी आवश्यकता को समझते हुए, वर्तमान सरकार ने भारतीय नागरिक अपने सुझाव/विचार सोशल मीडिया, जैसे- फेसबुक, ट्विटर आदि के अलावा भारतीय वेबसाइटwww.mygov.in,www.pmindia.gov.in और www.narendramodi.in के माध्यम से भी सीधे प्रधानमत्री जी के पास भेजा जा सकता है।भारत की भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए सुदूर गाँवों आदि में भी हर नागरिक से जड़ने के लिए रेडियो उदबोधन कार्यक्रम 'मन की बात' का प्रसारण आरँभ किया। विकसित भारत @2047' मिशन की शुरुआत 11 दिसंबर 2023 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से की थी। इसका लक्ष्य भारत को स्वतंत्रता के 100वें वर्ष, 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनाना है। सरकार में पारदर्शिता वर्तमान भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि है और भारत में कई सरकारी निविदा परियोजनाओ के लिए ऑनलाइन प्रणाली की एक बेजोड़ शरुआत है।

मुख्य बिंदु:

(1) आर्थिक परिदृश्य - रोटी,कपड़ा,मकान,पूंजी,एवं प्रति व्यक्ति आय ,उर्जा, जीवन स्तर,व्यापारिका।सुरक्षा परिदृश्य - राफेल, सुखोई जैसे आधुनिक हथियार, अग्निपथ योजना।

तकनीकी परिदृश्य - चंद्रयान मिशन, मगंल मिशन।
(2)व्यावहारिक परिदृश्य- विचार ,तरीके,विधियां, ढांचा।
(3)पर्यावरणीय भौगोलिक परिदृश्य - जलवायु परिवर्तन संकट से निपटान,समग्र स्वच्छता, सततविकास हरित संपन्न,स्मार्टसिटी विकास।
(4)राजनीतिक परिदृश्य- अंतरराष्ट्रीय भाईचारा,आयात निर्यात,हस्तांतरण मित्रता,
(5)सामाजिकपरिदृश्य नारी, जाति, धर्म,भाषा,गरीबी।
(6)प्रशासनिकव्यवस्थाएं-शिक्षा,स्वास्थ्य,संचार,परिवहन, अधोसंरचना।

विकसित भारत @ 2047 के प्रमुख लक्ष्य -आर्थिकविकास:20वर्षों में30ट्रिलियनडॉलर की अर्थव्यवस्था बनना, जिसमें उद्योग, व्यापार और निवेश को बढ़ावा देना शामिल है। बुनियादी ढाँचा: आधुनिक सड़कों, रेल, बंदरगाहों और स्मार्ट शहरों का विकास करना। सामाजिक कल्याण: शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, आवास और सम्मानजनक जीवन स्तर में सुधार करना। युवा सशक्तिकरण: स्टार्टअप, मेक इन इंडिया और डिजिटल इंडिया जैसी पहलों के माध्यम से उद्यमिता को बढ़ावा देना। सतत विकास: पर्यावरण संरक्षण और हरित ऊर्जा पर ध्यान केंद्रित करना। आत्मनिर्भरता: घरेलू संसाधनों पर निर्भरता बढ़ाना और वैश्विक शक्ति के रूप में उभरना।

शोध उद्देश्य:- किसी भी लेख,परिकल्पना का आकलन करने से पहले उसे वैज्ञानिक विधि से जांच ,क्रियान्वयन निरीक्षण की आवश्यकता होती है। इस शोध के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित पाए गए हैं ,जो इस प्रकार है।
(1)भौगोलिक अध्ययन के दृष्टि से विश्व की जलवायु परिवर्तन में भारत की भूमिका
(2)आत्मनिर्भर भारत का निर्माण
(3) आर्थिक ,सामाजिक , विकास कार्यों पर जोर दिया जाएगा।
(4) अंतराष्ट्रीय, मैत्री, संघ,के साथ सामंजस्य स्थापित करना ।(5) वैश्विक स्तर पर भारत में डिजिटल विकास।

आर्थिक परिदृश्य - वर्तमान भारत एक विकासशील देश है। 21वीं सदी में देश अपनी क्षमताओं से आश्वस्त होकर भविष्य की ओर बढ़ रहा है। यह दुनिया की 3 री सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश 2027 तक हो जाएगा।आर्थिक विकास की दर 2023 - 24 में 8.2 प्रतिशत वृद्धि के साथ आगे बढ़ रही है।आज भी कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। भारत का सकल घरेलू उत्पाद 8 प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ता है ।उम्मीद है कि 2047 में यहां के लोगों की जीवन स्तर में सुधार होगा। भारत के किसान कृषि कार्य में आधुनिक विधियों ,और तकनीकी का उपयोग करने लगे हैं। जहां प्राचीन काल में पुरानी पद्धतियों को अपनाने से फसल उत्पाद में कमी होती थी वह अब की स्थिति में वृद्धि होगा।व्यापार की दृष्टि से देखा जाए तो भारत दूसरे देशों के साथ आपसी समझौते के द्वारा दूसरे देशों को सामान भेजना और लाने का कार्य में संलग्न हो गया है। सुरक्षा के क्षेत्र में अनेक तरह के लड़ाकू विमान,युद्धपोतक जहाज, जैसे नाविक, सैन्य छावनी के द्वारा अग्निभर्ति में नए नए कुशल सैनिकों की संख्या में भी वृद्धि करने लगी है ,जिससे देश की सुरक्षा विधिवत तरीके से हो सकेगा।अंतरिक्ष की स्थिति की जानकारी ,शोधकार्य के लिए वैज्ञानिकों के माध्यम से सेटेलाइट, चंद्रयान जैसे स्पेस शटल का भी निर्माण लगातार कर रही है,जो आने वाले भविष्य में इस देश की ढांचा को मजबूत और शक्तिशाली बनाएगा जो प्रगति की राह पर देश को विकसित करेगा।

व्यावहारिक परिदृश - व्यावहारिक परिदृश्य का अर्थ उस संदर्भ से है जहाँ किसी विचार, सिद्धांत या समस्या का वास्तविक जीवन में उपयोग किया जाता है।यह विभिन्न क्षेत्रों में लागू हो सकता है,जैसे व्यावसायिक कारोबार,कंपनी या उद्योग के भीतर एक वास्तविक और गतिशील विचार प्रस्तुत करना जिससे जरूरत की वस्तुएं एवं सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि की जा सके।इसमें बाजार की स्थिति, ग्राहकों की ज़रूरतें और तकनीकी प्रगति शामिल हैं। यह व्यावसायिक निर्णय लेने और भविष्य की रणनीतियों को आकार देने के लिए महत्वपूर्ण है। यह एक दार्शनिक या नैतिक विचार है जिसका व्यावहारिक या अनुभवजन्य परिणामों के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

पर्यावरणीय भौगोलिक परिदृश -सम्पूर्ण विश्व ही नहीं बल्कि भारत भी जलवायु परिवर्तन से संबंधित समस्याओं से जूझ रहा है। भारत में भूस्खलन, सूखा, बाढ़,और तापमान में वृद्धि की स्थिति देखने को मिल रहा है ।इससे निपटने के लिए वृक्षारोपण,बांध बनाना ,चेक डैम, सड़कों की देख रेख , कम CO_2 उत्सर्जित करने वाले संसाधनों का उपयोग करना,समुद्री जलस्तर में वृद्धि के लिए विभिन्न उपाय अपनाए जाते हैं।भारत जैसे विकासशील देश में वर्तमान स्थिति में समग्र स्वक्षता अभियान के तहत 2 अक्टूबर 2014 से प्रत्येक ग्रामीण क्षेत्रों में सुलभ शौचालय की व्यवस्था की गई है ,इससे पर्यावरण प्रबंधन में सुविधा होगी। ग्रीन हाउस प्रभाव से संबंधित समस्याओं से निपटने के लिए आधुनिक कृषि तकनीकी का उपयोग ,वृक्षारोपण करना ,साफ सफाई,चाहे जलीय क्षेत्र हो ,या भूमि सतह तो सभी जगह जरूरी होता है ,और भारत इस सिस्टम को अपना रहा है। जैसे नमामि गंगे कार्यक्रम,अपशिष्ट निपटान, और ग्रीन स्कैनरियो,से हमारे पर्यावरण में सुधार होने की संभावना है।सतत विकास का अर्थ होता है ,संपूर्ण विकास अर्थात किसी व्यक्ति,समाज ,राष्ट्र का समुचित वृद्धि करना ,उसमें शामिल शब्द जैसे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना,लोगों की जीवन स्तर में सुधार करना, कृषि उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना,मानवीय कल्याणकारी योजनाओं को शामिल करने से मानव विकास और राष्ट्र का विकास संभव है।आज के वर्तमान युग में भारत के प्रत्येक शहरों में स्मार्टसिटी योजना का क्रियान्वयन जारी है,इससे प्रत्येक शहर की ,सफाई,लाइट विकाश, रोडलाइट,ट्रैफिक लाइट,प्रशासनिक व्यवस्थाएं जो संपूर्ण शहर वासियों के लिए प्रदान की जा रही है। इस व्यवस्था से भारत के प्रत्येक शहर में सुधार होगा ।

राजनीतिक परिदृश- भारत विभिन्न देशों के साथ आपसी भाईचारे ,मित्रता की भावना ,रख रही है जैसे व्यापार,जल बटवारा, सैनिक समझौता,बैंकिंग क्षेत्रों में भूमिका निभा रहा है। सार्क, गेट,एशियन,जी20, जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं है जो इस कदम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। एक देश दूसरे देश की मदद करते चला आ रहा है। विदेशी व्यापार के तहत दूसरे देशों का उत्पादित सामान भी अपने देश में लाया जा रहा है। अंतरराष्ट्रीय समझौते से प्रत्येक देश एक दूसरे के साथ अंतर्संबंध रखने लगा है।

सामाजिक परिदृश- आधुनिक युग के प्रत्येक देश में लोगों की व्यवस्था समाज पर आधारित है। समाज से परिवार ,समाज से देश ,राष्ट्र ,प्रदेश का विकास होता है। इसमें भाषा , रीतिरिवाज,सामाजिक कार्य एवं स्थिति का विकास,आर्थिक स्थिति,रहन सहन ,धर्म आदि में विकास होता है। भारत जैसे विकासशील देश में विभिन्न धर्म के लोग निवास करते है ,उनका धर्म ,कल्चर संस्कृति भले ही अलग अलग है लेकिन यहां के लोग प्रत्येक धर्म को इक्वल /सामान मानते है। कोई भी व्यक्ति किसी धर्म का अपमान/ अवहेलना नहीं करता। समाज के नारियों के लिए पर्याप्त मात्रा में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है। पूर्व में ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने महिलाओं को शिक्षा ग्रहण कराने में भारत देश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तब से महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ सहायता,रोजगार,नवाचार,में मदद मिलने लगा है। प्रत्येक समाज के महिलाओं के लिए पर्याप्त मात्रा में रोजगार ,शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलने लगा है। महिलाओं के लिए नारी

सशक्तिकरण,बलात्कार,ट्रैफिकिंग जैसी समस्याओं से निपटने के लिए केंद्र और राज्य सरकारें अपनी अपनी योजनाओं के माध्यम से इस समस्या का समाधान करने लगी है। गरीबी समाज में पिछड़ापन का मुख्य कारण होता है ,भूमिहीन कृषक,मजदूर कृषक,और सीजनल कृषक अधिकर गरीबी की स्थिति से गुजरते है। भारत में मानसूनी वर्षा से बारिश होती है ,लगभग 68 % लोग कृषि कार्य वर्षा पर आधारित होकर करते हैं। जब किसी साल सही समय और सही रितु में बारिश हो गई तब वरदान साबित हो जाती है और जब सही समय में भी हवा होती तो अभिशाप बन जाती है। इनमें से कुछ कृषक तो हल्का फुल्का मशीनें का प्रयोग कर लेते हैं जिनका आर्थिक स्थिति कुछ सही रहता है।कुछ बिल्कुल गरीब है जो दिन का भोजन और रात का भोजन उपलब्ध भी नहीं कर पाते उनके लिए भारत सरकार के द्वारा उपभोक्ता राशन प्रदान करने वाली कार्यक्रम को विकास किया है।

प्रशासनिक व्यवस्थाएं:- भारत देश विभिन्न क्षेत्र में विकास कर रहा है ,शिक्षा , स्वास्थ,परिवहन, संचार, पर्यटन,और बैंकिंग, व्यापार आदि में विकास लगातार जारी है। वर्तमान भर डिजिटल विकास करने में लगा है ,आज के युग में नई नई मशीनों से कार्य,रोबोट, AI, शोध वैज्ञानिक लोग इसमें शामिल है। इन सभी के सहयोग से भारत तरक्की की रह पर 2047 में शामिल हो जायेगा । केंद्र सरकार से लेकर पंचायत लेवल तक विकास जारी है । आधुनिकीकरण और तकनीकी, प्रौद्योगिकी ने विकास की प्रक्रिया को और अधिक गति देने में महत्व पूर्ण भूमिका निभा रही है। वर्तमान समय में असंभव कार्य को संभव बनाने में मदद मिलने लगा है, अंडरग्राउंड टनल,पहाड़ी टनल, समुद्री इंटरनेट नेटवर्क जाल,पर्यटन विकास में पहाड़ी रोपवे ।ग्रामीण स्तर पर अधोसंरचना विकास जैसे - रोड,बिजली,तालाब,नहर, चापा ,सामाजिक वानिकी, इंदिरा आवास,प्रधानमंत्री आवास,और शहरी क्षेत्र में नल जल पेय पानी व्यवस्था,परिवहन ट्रैफिक निपटान,स्ट्रीट लाइट,मार्केट डेवलपमेंट,पार्किंग जोन, क्रीड़ा जोन, स्लम विकाश,इत्यादि। संचार क्षेत्र में प्रत्येक गांव शहर को इंटरनेट जाल से जोड़ना,फिर टीवी,रेडियो, फैक्स, तार,उपग्रह,रडार, कंप्यूटर न्यूज,समाचार पत्र , पत्रकार एवं मीडिया,सोशलमीडिया में फेसबुक,इंस्टाग्राम,ट्विटर,मैसेंजर, व्हाट्सअप, आदि ये सभी मानव जीवन की एक अभिन्न दैनिक साधन बन गए हैं। भारत में इन सभी साधनों का विस्तार तेजी से बढ़ रहा है और पूर्ण रूप से भारत डिजिटल बन रहा है। डिजिटल विकास से आशय है कि पूर्ण रूप से कैश लेश विधि, यानी प्रत्येक कार्य को तकनीकी से जोड़कर रखना जैसे, वस्तु एवं सेवाओं का लेन देन करने पर ऑनलाइन पेमेंट,ओरिजिनल डॉक्यूमेंट न रखने के बदले ,डिजिलॉकर में डॉक्यूमेंट सेव करके रखना, सभी सरकारी दस्तावेजों का रिकॉर्ड वेवपेज इंटरनेट साइट पर उपलब्ध कराना,सरकारी या निजी संस्थाओं का विवरण वेबपेज में मिलना,नवाचार/ विज्ञापन,मनोरंजन,आदि ये सभी एलिमेंट इसमें शामिल होते हैं जिससे भारत दुनिया के अन्य देशों की भांति ताल से ताल मिलकर चलने में सक्षम होने जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रारंभिक काल से ही यह भारत देश विश्व गुरु था यहां लोग विदेशों ये पढ़ने आया करते थे, चाणक्य,कौटिल्य,मेगस्थनीज,निकोलस,जैसे हजारों विदेशी छात्र उच्च शिक्षा के लिए भारत आए थे। वे विशेष रूप से नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने के लिए आते थे, जो अपनी समृद्ध शिक्षा प्रणाली के लिए प्रसिद्ध थे।प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र: नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों ने पूरे एशिया से छात्रों को आकर्षित किया।पढ़ाए जाने वाले विषय: ये विश्वविद्यालय न केवल बौद्ध धर्म और दर्शनशास्त्र, बल्कि चिकित्सा, खगोल विज्ञान, गणित, तर्कशास्त्र और युद्धकला जैसे विविध विषयों को भी पढ़ाते थे।आकर्षणका कारण: भारत की संपत्ति और समृद्ध संस्कृति के साथ-साथ, इन विश्वविद्यालयों की परिष्कृत शिक्षा प्रणाली विदेशी छात्रों के लिए एक बड़ा आकर्षण थी।आधुनिक शिक्षा के जनक लार्ड मैकाले ने भारतीय लोगों को अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने की सलाह दी, उसके पहले यहां कुछ मुनि संन्यासियों द्वारा धनुर्विद्या सिखाया जाता था।

बाद में ज्योतिबाफुले,सावित्रीबाई फुले ने महिलाओं के लिए शिक्षा सेवा प्रारंभ की। वर्तमान भारत में सर्वपल्ली राधाकृष्ण जी को विशेष रूप से जाना गया। योग शिक्षा में स्वामी विवेकानंद,रामदेव, पतंजलि ,राम रहीम ये सभी गुरु विश्व गुरु बने। आज का भारत तकनीकी प्रौद्योगिकी से संबंधित नवाचार से जुड़कर रोबोट टीचर भी बनाने लगी है,जिससे आने वाली पीढ़ी के लिए मशीन ही बच्चों को पढ़ा सके,अभी तक भारत के केरल में रोबोट टीचर बनाया जा चुका है।

जलवायु परिवर्तन -जिस प्रकार की जलवायु का अनुभव हम अब कर रहे है वह थोड़े बहुत उतार चढ़ाव के साथ विगत 10 हजार वर्षों से अनुभव की जा रही है। अपने प्रदर्भाव से ही पृथ्वी ने जलवायु में अनेक परिवर्तन देखे हैं। भूगर्भिक अभिलेखों से हिमयुगों और अंतर हिमयुगों में क्रमशः परिवर्तन की प्रक्रिया परिलक्षित होती है। भू आकृतिक लक्षण, विशेषतः ऊंचाइयों तथा उच्च अक्षांशो में हिमानियों के आगे बढ़ने व पीछे हटने के शेष चिन्ह प्रदर्शित करते हैं।हिमानी निर्मित झीलों में अवसादों का निक्षेपण उष्ण एवं शीत युगों के होने को उजागर करता है। वृक्षों के तनों में पाए जाने वाले वलय भी आर्द्र एवं शुष्क युगों की उपस्थिति का संकेत देते हैं।ऐतिहासिक अभिलेख भी जलवायु की अनिश्चितता का वर्णन करते हैं।ये सभी साक्ष्य इंगित करते हैं कि जलवायु परिवर्तन एक प्राकृतिक एवं सतत प्रक्रिया है।भारत में भी शुष्क एवं आर्द्र युग आते जाते रहे हैं।पुरातत्व खोजे दर्शाती हैं कि ईसा से लगभग 8000 वर्ष पूर्व राजस्थान मरुस्थल की जलवायु आर्द्र एवं शीतल थी।

निष्कर्ष (Conclusion)-'विकसित भारत @2047' भारत के लिए एक दूरदर्शी मिशन है, जो न केवल आर्थिक समृद्धि (30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था) का लक्ष्य रखता है, बल्कि सामाजिक समावेशन, पर्यावरणीय सततता एवं वैश्विक नेतृत्व को भी मजबूत करता है। इस शोध से स्पष्ट होता है कि प्राचीन स्वर्णिम विरासत से प्रेरित होकर, वर्तमान पहलें जैसे मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, नमामि गंगे एवं डिजिटल इंडिया ने विकास की गति को तेज किया है। जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों का सामना करने में भारत की भूमिका उल्लेखनीय है, जहां वृक्षारोपण, हरित ऊर्जा एवं स्मार्ट सिटी योजनाएं सतत विकास सुनिश्चित करेंगी। युवाओं की भागीदारी, अंतरराष्ट्रीय मैत्री एवं पारदर्शी प्रशासन के माध्यम से यह लक्ष्य प्राप्त्य है। हालांकि, असमानता, गरीबी एवं पर्यावरणीय संकट जैसी बाधाओं को दर करने के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं। अंततः, 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' की भावना से भारत 2047 तक एक सशक्त, समावेशी एवं पर्यावरण-अनुकूल राष्ट्र बनेगा, जो विश्व पटल पर नई ऊंचाइयों को छुएगा। यह शोध भविष्य की नीतियों के लिए एक आधार प्रदान करता है, जहां प्रत्येक नागरिक की सक्रिय भागीदारी ही सफलता की कुंजी होगी।

****

संदर्भ सूची-

1. Drishti IAS. (2025). विकसित भारत@2047 के लिये परिवर्तनकारी सुधार. Retrieved from https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/transformative-reforms-for-viksit-bharat-2047
2. Press Information Bureau (PIB). (2024). 'विकसित भारत 2047 - विज़न ऑफ न्यू इंडिया 3.0' कार्यक्रम में उपराष्ट्रपति के संबोधन का मूल पाठ. Government of India. Retrieved from https://www.pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=2079311
3. Chegg India. (2025). विकसित भारत पर निबंध- 2047 के लक्ष्य, महत्व और भविष्य की दिशा. Retrieved from https://www.cheggindia.com/hi/viksit-bharat-par-nibandh/
4. Doordarshan News. (2023). युवाओं के लिए 'विकसित भारत @2047 पहल की शुरुआत करेंगे प्रधानमंत्री. Retrieved from https://ddnews.gov.in/युवाओं-के-लिए-विकसित-भरत-204/
5. Bhatkhande Culture University. (2024). Viksit Bharat 2047. Retrieved from https://bhatkhandeuniversity.ac.in/hi/article/viksit-bharat-2047
6. Society of Indian Educators, Allahabad. (2024). विकसित भारत @2047 [PDF]. Retrieved from https://www.sieallahabad.org/hrt-admin/book/book_file/472ad8cc374660f67ab96e9ae3538267.pdf

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

नाट्यशास्त्र की अवधारणा एवं आधुनिक थिएटर कला

डॉ. एकता गोस्वामी
हिन्दी विभाग, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

शोध सारांश- भारतीय नाट्य परंपरा का मूलाधार नाट्यशास्त्र है, जिसकी रचना आचार्य भरतमुनि ने की। यह ग्रंथ न केवल नाटक की अवधारणा पर दृष्टिपात करता है बल्कि भारतीय सौंदर्यशास्त्र और राष्ट्रिय एकता की भी आधारशिला रखता है। आधुनिक नाट्य कला यद्दपि पाश्चात्य प्रभावों, तकनीकी विकास और सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित है, फिर भी नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्त इसके अंतर में विदद्यमान हैं। यह शोध पत्र नाट्यशास्त्र अवधारणा, आधुनिक नाट्य कला के साथ उसके सम्बन्ध और प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द- नाट्य शास्त्र, आधुनिक नाट्य कला, भरतमुनी, प्रसाद

भूमिका- नाटक मानव जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाला सशक्त माध्यम है। भारतीय संस्कृति में नाटक को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष- चारों पुरुषार्थों का प्रदाता माना गया है। नाट्य शास्त्र को पंचम वेद माना गया है तथा यह समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपयोगी है। आधुनिक काल में नाटक के रूप, शिल्प और प्रस्तुति में व्यापक परिवर्तन हुए हैं परंतु उसका मूल उद्देश्य 'मानव समाज की संप्रेषणीय अभिव्यक्ति' आज भी अपरिवर्तित है।

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन यन्न दृश्यते"॥

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि कहते हैं ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग, कर्म नहीं है जो नाट्यशास्त्र में समाहित ना हो। पंचम वेद के नाम से प्रसिद्ध नाट्यशास्त्र में नाटक के लिए आवश्यक बिंदुओं पर जो चर्चा की गई है उससे नाटक अपने आप में वृहत हो जाता है। लोक में व्याप्त समस्त विषयों को समाविष्ट करते हुए नाटक समाज में लोकमंगल की भावना को समादृत करता है। इसलिए समस्त कलाओं में इसकी ग्राह्यता सर्वाधिक है। काव्य के दो रूप माने गए हैं- दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। इनमें भी दृश्य काव्य महत्वपूर्ण है क्योंकि इसे देखा व सुना जा सकता है। दृश्य काव्य की संज्ञा रूपक है तथा रूपकों के 10 भेदों (नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, व्यायोग, समवककार, डिम, विथि, अंक, इहामृग) में भी नाटक को सर्वोच्च शिखर पर रखा गया है। "सर्वकला संयोगान्नाट्यस्य लोक प्रियतत्वम सिद्धम"।
भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है:-

"नाना भावो संपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोक वृत्तनुकरणम् नाट्यमेतन्मया कृतम"॥

अर्थात अनेक प्रकार के भावों से संपन्न, अनेक प्रकार की अवस्थाओं से सम्मिश्रित तथा लोक वृत्त का अनुकरण करने वाला यह नाटक मैंने रचा है।नाटक के बारे में कहा गया है- " अवस्थानुकृतिर्नाट्यम" अर्थात समाज में घटने वाली घटनाओं,उनके चरित्र और अवस्थाओं का अनुकरण नाटक है। नाटक के विषय भूतकाल की घटनाओं से प्रेरित होते हैं एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चरित्रों के माध्यम से इसे समाज से जोड़ा जाता है-

"यद द्रव्यम् जीवलोके तु नाना लक्षण लक्षितम।
तस्यानुकृति संस्थानम् नाट्योपकर्णम भवेत"॥

भरत मुनि यहां कहते हैं इस जीव लोक में विभिन्न लक्षणों से लक्षित जो भी द्रव्य हैं उसकी अनुकृति में निर्मित रचना नाट्योपकरण है। इस प्रकार नाट्य उपकरण की बात करते हुए भरत मुनि अनुकृति के संबंध में कहते हैं –

"लोकधर्मी भवेत त्वन्या नाट्यधर्मी तथा परा।
स्वभावो लोकधर्मी तु विभावो नाट्यमेव ही"॥

यह अनुकृति क्रमशः दो प्रकार की हो सकती है- लोक धर्मी और नाट्य धर्मी। लोक धर्मी वस्तु का स्वभाव होगा और विभाव होने पर वही नाट्य बन जाएगा। इस प्रकार निर्माण से लेकर मंचन तक नाट्य केवल लोक से जुड़ा है। लोक से प्रेरित और लोक हित में ही होगा।

वेद तथा अध्यात्म से युक्त होकर तथा शब्द छंद से समन्वित नाट्य लोक सिद्ध तथा लोकात्म होता है। लोकमंगल की अवधारणा को अपने में समाहित करते हुए नाट्य सामाजिक उत्थान की ओर अग्रसर था। नाटक के अर्थ एवं इसके प्रयोजन पर संतुष्टिपरक अध्ययन कर नाट्यशास्त्र की रचना प्रक्रिया पर विचार करें तो इसमें भी संसार कल्याण ही दृष्टिगोचर होता है। जिसका प्रमाण हमें नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। नाट्यशास्त्र के पहले अध्याय में ही कथा मिलती है जिसमें भरत मुनि स्वयं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं- " भरत मुनि अपनी पूजा समाप्त करके फुर्सत में बैठे थे। उनके शिष्य भी उनके साथ थे।उसी दिन आत्रेय आदि कुछ दूसरे मुनि उनके पास आ पहुंचे। इन मुनियों को नाटक या रंगमंच के बारे में कोई खास जानकारी नहीं थी वे जिज्ञासावश भरतमुनि के पास आ पहुंचे थे। इन मुनियों ने भरत से नाटक को लेकर पांच सवाल पूछे- 1 हे ब्राह्मण नाट्य वेद कैसे उत्पन्न हुआ, 2 यह किसके लिए उत्पन्न हुआ, 3 इसके कितने अंग हैं, 4 इसका प्रमाण क्या है, 5 इसका प्रयोग कैसे किया जाता है"। ऊपर से भोले से दिखने वाले इन सूक्ष्म प्रश्नों का उत्तर भी अत्यंत सूक्ष्म है। भरत मुनि यह बात समझ गए तथा इन प्रश्नों के उत्तरों की खोज में नाट्यशास्त्र जैसी 36 अध्यायों की पुस्तक का निर्माण हुआ।

डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी यहां लिखते हैं " पहला सवाल कैसे उत्पन्न हुआ के लिए शब्द है कथम उत्पन्न:। संस्कृत में कथम् के कैसे और क्यों यह दोनों अर्थ प्रचलित है। इसलिए भरत मुनि को लगा कि मुनि लोग नाट्य उत्पत्ति की प्रक्रिया ही नहीं पूछ रहे हैं,वह नाटक का प्रयोजन भी पूछ रहे हैं. फिर नाटय उत्पत्ति की प्रक्रिया भी दो तरह से बताई जा सकती है।आदिम काल में किस तरह नाट्य सामने आया और दूसरा नाट्य हर देश, हर काल में किस तरह रचा जाता है। यह बताते हुए उसकी रचना प्रक्रिया का निरूपण भी किया जाए. चौथा प्रश्न नाट्य का प्रमाण क्या है - में भी प्रमाण के दो अर्थ लिए जा सकते हैं मानदंड और माप।" नाट्यशास्त्र की अवधारणा को जानने के लिए इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर जानना अत्यंत आवश्यक है।

पहला प्रश्न नाट्यशास्त्र या नाट्य की उत्पत्ति के संबंध में भरत मुनि पहले अध्याय में समझाते हैं – ''हे ऋषियों! बहुत पहले की बात है स्वयंभू मन्वंतर समाप्त हो गया था। वैवस्वत मन्वंतर में सतयुग का भी अंत हो चुका था त्रेता युग आ गया था. लोग ग्राम्य धर्म में प्रवत्त हो गए थे और मनमानी करने लगे थे। ईर्ष्या और क्रोध में उनकी मति फिर गई थी। वह सुख और दुख के वश में हो गए थे। इससे इंद्र आदि देवताओं ने पितामह ब्रह्मा के पास जाकर कहा हम ऐसा खिलौना चाहते हैं जो देखा भी जा सके और सुना भी जा सके-

'जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामेभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान रसानाथर्वणादपि'॥

अतः ब्रह्मा ने चारों वेदों से - ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की रचना की। नाट्योत्पत्ति से तात्पर्य नाटक के मंचन अथवा इसके साक्षात्कार से था। यह साक्षात्कार तभी हो सकता था जब मनुष्य समाज में नाटक की

आवश्यकता को महसूस किया जाए और यह आवश्यकता तब महसूस की गई जब सुख-दुख एकमेक हो गए और नाटक के माध्यम से उनकी पहचान की जा सकती थी। तब ब्रह्मा द्वारा नाट्य वेद की रचना के बाद देवताओं ने यह प्रश्न किया कि नाटक का प्रयोग कौन करेगा? ऐसी स्थिति में भरत मुनि और उनके 100 शिष्यों ने नाटक को सीखा तथा इस संबंध में जो अन्य घटनाएं घटी उनका वर्णन नाट्यशास्त्र के चौथे अध्याय में हैं। दूसरे प्रश्न यह नाटक किसके लिए है - के उत्तर में भरत मुनि ने पांचवें अध्याय में नाट्य प्रस्तुति का विस्तार से वर्णन करते हुए लिखा है नाट्य निखिल विश्व से जुड़ जाने के लिए है। रंग दैवत पूजन और पूर्व रंग उसकी तैयारी की सीढ़ियां है। तीसरे प्रश्न नाटक में कितने अंग हैं - इसका उत्तर नाट्यशास्त्र में अनेक प्रकार से मिलता है. नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में नाटक के 11 तत्व बताते हुए भरत मुनि लिखते हैं रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रंगमंच 11 नाट्य के अंग हैं। चौथे प्रश्न के उत्तर में भरत मुनि ने लिखा है-

"लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणम् त्रिविधम् स्मृतम।
वेदाध्यात्म पदार्थेषु प्रायो नाट्य प्रतिष्ठितम्"॥

नाट्य का प्रमाण क्या है? इसके उत्तर में वह कहते हैं लोक वेद (शास्त्र) और अध्यात्म (अभिनेता की अपनी चेतना)। उन्होंने अभिनेता से बार-बार कहा है जो शास्त्र से विदित ना हो सके उसे लोक या अपने आसपास की व्यवहारिक दुनिया से समझने का प्रयास करें और जो लोक और शास्त्र दोनों से विदित ना हो सके उसके लिए अंतिम प्रमाण स्व चेतना ही है। मुनियों के अंतिम प्रश्न नाटक का प्रयोग कैसे होगा - इसका उत्तर तो संपूर्ण नाट्यशास्त्र में समाया हुआ है. भरत मुनि ने अपनी नाट्य दृष्टि से नाटक की सृष्टि करते हुए जीवन की समग्रता और मूल्य बोध को इससे जोड़ा और इस प्रकार रंगमंच का सौंदर्य शास्त्र रचते हुए नाट्यशास्त्र की रचना की।

राष्ट्रीय एकता में नाट्यशास्त्र की भूमिका-

इस देश की राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में भी नाट्य शास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। नाट्यशास्त्र के निर्माण के साथ ही भरत मुनि ने समस्त जाति समूहों में एकता स्थापित करने का प्रयास भी किया। 'इस देश के नैतिक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के परिचायक और इस महान राष्ट्र की अंतश्चेतना के द्योतक रामायण और महाभारत की भांति भरत का नाट्यशास्त्र भी एक अपूर्व कृति है जिस रूप में रामायण और महाभारत द्वारा इस देश के राष्ट्रीय चरित्र की अभिव्यंजना हुई। नाट्यशास्त्र का दृष्टिकोण यद्यपि उस से कुछ भिन्न है फिर भी इस दृष्टि से उसका महत्वपूर्ण स्थान है कि उसने यहां के जनजीवन और साहित्य को नई चेतन दी'। यदि हम ऐतिहासिक संदर्भ में तत्कालीन परिस्थितियों पर दृष्टिपात करें तो जान पड़ता है कि तत्कालीन वर्ण व्यवस्था ने सामाजिक जीवन में ऊंच-नीच और छोटे-बड़े की दीवार खड़ी कर रखी थी। कर्मों और व्यवसायों के आधार पर वर्गीकृत सामाजिक व्यवस्था को जन्मसिद्ध अधिकार मानने वाले लोगों ने शेष समाज को सर्वथा भिन्न एवं उपेक्षित तथा विस्मित कर दिया था. सर्वाधिक संपन्न एक वर्ग विशेष के निर्बाध प्रभुत्व ने बहुसंख्यक समाज की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था. उनके कठोर प्रतिबंधों एवं एकांगी पक्षपाती व्यवस्था के कारण राष्ट्रीय एकता निरंतर विशृंखलित होती जा रही थी। यह सामाजिक विभेद राष्ट्रीय एकता को निरंतर क्षीण कर रहे थे. यथा इस विभेद को दूर करने के लिए जो प्रयत्न किए गए नाट्यशास्त्र का नाम उनमें अग्रणी है। ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों का मंथन कर सर्वजन उपयोगी जिस शास्त्र का निर्माण किया गया उसे पंचम वेद नाम दिया गया। इस पंचम वेद के निर्माण का मुख्य उद्देश्य था- 'वेद केवल द्विजातियों के लिए थे किंतु यह पंचम वेद लोक सामान्य के लिए था'।इसके अध्ययन प्रयोग एवं दर्शन का अधिकार सर्व सामान्य को था यह चारों वेदों से प्रसूत होने के कारण भारतीय मर्यादाओं और आदर्शों के अनुरूप भी था।

'श्रुति-स्मृति-पुराण द्वारा समर्पित इस नाट्य वेद में लोक जीवन की सारी मान्यताएं और परंपराएं समन्वित थी। इसलिए लोक जीवन में उसका आदर सम्मान बड़ा। वह धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इस- चतुर्वर्ग का प्रदाता तथा लोक मंगल का कारण बना'। नाट्यशास्त्र ने वर्ग विषमताओं और जातीय भेदों को मिटाकर सबको एक साथ बैठने के लिए प्रेरित किया महामुनि भरत ने युग दृष्टा की भांति लोक परंपराओं को शास्त्रीय सूत्र में पिरोकर ब्रह्मा द्वारा सृजित नाट्य वेद को लोकोपयोगी बनाने का कार्य किया।

आधुनिक थिएटर कला-

नाटक एक स्वतंत्र एवं समग्र कला है और अनेक शास्त्रों को अपने में समादृत करता है। इसलिए इसकी शाश्वतता है, नैरंतर्य है। आधुनिक काल तक आते-आते नाट्यशास्त्र की यह परंपरा अनेक लोगों के लिए अपरिचित हो गई। जो पश्चिम की रंग परंपरा को देखने के आदी हो गए थे क्योंकि संस्कृत नाटकों की जो परंपरा अश्व घोष ईसा की प्रथम सदी से आरंभ होकर 20वीं शताब्दी तक कभी तेज तो कभी मंथर गति से चलती रही वह धीरे-धीरे शिथिल हो गई। इसी बीच मध्यकाल में 13वीं शताब्दी तक लोकनाट्य परंपरा (नौटंकी रास, रामलीला आदि) विकसित हुई। जो लोक जनजीवन से आस्था के माध्यम से गहरे जुड़ी तथा 18वीं शताब्दी तक आते-आते पारसी रंगमंच ने अपनी जड़ें जमा लीं। 19वीं शताब्दी में भारतेंदु के आगमन ने हिंदी रंगमंच को एक नई दिशा दी। यह समय इसलिए भी विशेष था कि सांस्कृतिक राजनीतिक साहित्यिक उथल-पुथल का प्रभाव नाटक कला पर भी पड़ा। भारतेंदु ने नाट्य लेखन और मंचन की जो आधुनिक युग में नींव रखी थी वह उनके अवसान से फिर शिथिल हो पड़ी। कई सालों के अंतराल के बाद नाटक लेखन में नया मोड़ देने के लिए प्रसाद का आगमन हुआ। जयशंकर प्रसाद ने प्राचीन संस्कृत नाटक शैली को नए अर्थों में अपनाया। 'भारतीय इतिहास के स्वर्ण युगीन पृष्ठों को नाटकों का उपजीव्य बनाने का अर्थ है कि उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था किंतु उनके रोमांटिक दृष्टिकोण ने उन्हें नई अर्थवत्ता में पिरोया, ठीक उसी तरह जिस तरह भारतीय पुनर्जागरण ने अपनी गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा को युग अनुरूप नया अर्थ दिया'। इस प्रकार नाट्य लेखन के क्षेत्र में तो नाटक को नई दिशा मिली, किंतु संस्कृत की गौरवशाली नाट्यशास्त्रीय परंपरा इस काल तक भुला दी गई। जिस प्रकार के नाटक आज खेले जा रहे हैं वह पश्चिमी रंगमंच के प्रभाव की देन है जो मध्यकालीन और मध्यवर्गीय चिंतन की उपज हैं। पारंपरिक रंग परंपरा आधुनिक रंगमंच में भले ही जीवित न हो पर वह परंपरा गांव में और शास्त्रीय नृत्य में जीवित है। कूडियट्टम, कथकली, यक्षगान, भरतनाट्यम आदि में प्रचलित है जो भारत की शास्त्रीय एवं लोक शैलियां हैं। आधुनिकता की दौड़ में सब कुछ शीघ्र पा लेने की अदम्य इच्छा रखने वालों के लिए यह परंपरा अजनबी है लेकिन जो पूरी तरह से समर्पित होकर इसमें रम गए हैं उन्होंने इस नाट्य शास्त्रीय परंपरा का न सिर्फ आधुनिक युग के साथ समावेश किया है बल्कि लोक परंपराओं के साथ इसे जोड़कर नवीन अर्थ भी प्रदान किए हैं। नाट्यशास्त्र के प्रणेता ने भी नाट्य शास्त्र की समाप्ति पर लिखा है-

'एवं नाटके प्रयोगे बहू-बहुविहितम कर्मशास्त्रम प्रणितम।
न प्रोक्त यच्च लोकादनुकृतिकरम् तच्च कार्यम् विधिज्ञे'॥

अर्थात नाट्यकर्मी लोक व्यवहार के आधार पर एवं नाना अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर नाट्य का निर्माण कर सकते हैं।

****

संदर्भ-

संक्षिप्त नाट्य शास्त्र, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी
रंग मंच के सिद्धान्त, देवेंद्र राज अंकुर
भारतीय नाट्य परंपरा और अभिनयदर्पण, वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन,इलाहाबाद
हिन्दी नाटक, डॉ बच्चन सिंह

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

'मृत्यु और हंसी' : स्त्री स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा
कवि एवं उपन्यासकार, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी,
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा - (मध्य प्रदेश) 486001
ईमेल - dr.vinod.vishwakarma@gmail.com, मो. - 09424733246

मानवीय समाज के सामानतावादी विकास और स्त्री के जीवन स्वरूप को बदलने के लिए निरंतर ही भारतीय एवं विश्व समाज में संघर्ष जारी रहे हैं। इसका कारण यह रहा है कि इतिहास के एक दौर ने स्त्री को अनेक जंजीरों में जकड़ कर रख दिया है। दिन में नैतिकतावादी जंजीरें हैं और आर्थिक रूप से कमजोर होने की एक मोटी जंजीर है। वह दौर मध्यकाल का हो सकता है, या यह पूरी तरह से नहीं कहा जा सकता कि किस दौर ने स्त्री को परतंत्रता प्रदान की लेकिन यह कहा जा सकता है कि स्त्री को लेकर के मनुष्य के हृदय में मध्यकाल की बर्बरता का दौरा आज भी जारी है। स्त्री को अभी भी वस्तु के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। ऐसा क्यों है ? इसके लिए नए तरह के संघर्ष की जरूरत है।

प्राकृतिक रूप से देखा जाए तो मानवीय समाज का निर्माण कुछ इस तरह से हुआ है कि इस समाज में सभी स्वतंत्र और सम्मान हैं। लेकिन भारतीय और वैश्विक सामाजिक ढांचे को देखा जाए तो पता चलता है कि समानता का जो प्राकृतिक स्वरूप है, वह कई स्तरों पर टूटा हुआ है। यह एक ऐसा असमान स्वरूप है, जो समानता के अंदर ही छुपा हुआ है। इसी दृष्टि से भारतीय और वैश्विक समाज में स्त्री के जीवन को देखा जा सकता है। समय के 21वीं शताब्दी तक पहुंच जाने के बाद भी आज जबकि स्त्री स्वतंत्रता और स्त्री न्याय के बहुत बड़े दावे किए जाते हैं। आज भी स्त्रियां कितनी स्वतंत्र हैं और वह अपनी स्वतंत्रता के लिए कितनी जद्दोजहद कर रही हैं, हमसे और आप से यह छुपा नहीं हैं। प्रदीप अवस्थी का पहला उपन्यास – 'मृत्यु और हंसी' इसी की कहानी को कहता है।

यह एक स्त्री वृंदा की स्वतंत्रता की आकांक्षा का उपन्यास है। वह स्त्री एक ऐसी स्त्री है जो हमें हमारे आसपास मिल जाएगी। वह समाज में पीड़ित वर्ग की प्रतिनिधि पात्र है। वृंदा जिस तरह से घुटन भरे माहौल में अपना जीवन जी रही है, ऐसा अनेक स्त्रियां भारतीय और विश्व समाज में जी रही हैं। इस लिहाज से देखा जाए तो यह उपन्यास व्यापक मुद्दों की बात करता है। उत्कृष्ट और उदात्त जीवन मूल्यों की तलाश करते हुए, पितृसत्ता पर कई सवाल खड़े करता है। मसलन यह पितृसत्ता में पुरुषों के लिए स्वतंत्रता है, स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता क्यों नहीं है ?

कहा जाता है कि जो संविधान बनाता है, वह अपने लिए सारी सहूलियत रख लेता है। इसी तरह से जब समाज की संरचना हुई तो पुरुष ने नियम बनाए और सारी सुख–सुविधाएं अपने लिए रख ली। इसी तरह से जब कोई पुरुष विवाहित होते हुए भी किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करता है, तो उसके प्रेम पर, उस पर कोई लांछन नहीं लगता। कोई कुछ भी सवाल नहीं उठाता। वह इसे अपना हक समझता है। लेकिन यही काम जब कोई स्त्री करने लगती है और वह भी तब करती है जब उसे अपने परिवार में प्रेम नहीं मिलता। तब क्या होता है ? प्रदीप अवस्थी का यह उपन्यास 'मृत्यु और हंसी' इस सामाजिक स्वरूप को हमारे सामने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रकट करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह कहा जा सकता है कि यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

उपन्यासकार आज 21 वी शताब्दी के उत्तर आधुनिक युग में हमें यह दिखाता है कि वास्तव में हम चाहे कितने भी बदल गए हों, हमारी सामाजिक परिस्थितियां, आर्थिक परिस्थितियां, यंत्रवाद, तकनीकी, मोबाइल, टीवी कुछ भी आ गया हो। लेकिन जो हमारा दिमाग है, स्त्री को लेकर के उतना ही संकुचित है, जितना सातवीं – आठवीं शताब्दी में रहा होगा या मध्यकालीन भारतीय समाज में और वैश्विक समाज में रहा होगा।विवाह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समानता की अवधारणा को विकसित करने की कोशिश की गई है। लेकिन आंतरिक रूप से देखा जाए तो विवाहित जोड़े कुछ ही प्रतिशत सुखी होते हैं नहीं तो 70% स्त्रियां विवाह के बाद अपने ही पुरुष से पहली रात को बलत्कृत होने के लिए विवश होती हैं। और अनचाहे बच्चों को जन्म देती हैं। वृंदा ऐसी ही एक स्त्री है, जिसका न चाहते हुए भी विवाह हो गया है, राघव से। और उसके दो बच्चे हैं। उसका पति एक दूसरी लड़की मोहिनी से प्यार करता है। वह उसे रोकना चाहती है लेकिन रोक नहीं पाती है। ऐसे में वह युवक कुणाल से प्रेम कर बैठती है। और पितृसत्ता के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है कि कोई स्त्री किसी दूसरे पुरुष से प्रेम करने लगे। अपने पति के होते हुए भी। इस समस्या के समय हमारे समाज का मनोविज्ञान कैसा है ? इसका विवरण प्रदीप अवस्थी ने व्यापकता और गहराई से 'मृत्यु और हंसी' उपन्यास में किया है।

उपन्यास का अंकन इतना सजीव है कि ऐसा लग रहा है कि कोई चलचित्र हमारे सामने चल रहा है। दिल दहला देने वाली स्थितियां पैदा हो जाती हैं। जब वृंदा अपने प्रेमी के साथ स्वतंत्र रूप से रास्तों पर विचरण करने लगती है। और वह चाहती है कि उसका पति खुलेआम प्रेम करता है, तो वह भी क्यों न खुलेआम प्रेम करे ? तो उसे मृत्यु का बोध होता है। नैतिकता सामाजिक मानदंड बच्चे और इज्जत का ख्याल आता है। यह सब स्त्री को ही क्यों होता है ? पुरुषों को क्यों नहीं होता ? पुरुष को क्यों नहीं लगता कि वह कुछ गलत कर रहा है ? स्त्री को ही क्यों लगता है कि वह कुछ गलत कर रही है ? इसी पशोपेश में ,गलत और सही की स्थिति को जीते हुए, एक समय ऐसा आता है कि वृंदा आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है।

'मृत्यु और हंसी' में उपन्यासकार लिखता है ,यथा " – यह एक अजीब विडंबना थी कि एक तरफ राघव मोहिनी के साथ दिन-रात समय बिताता था लेकिन कोई अफवाह नहीं होती थी। किसी की नजर भी नहीं पड़ती थी। या तो उस तरफ से पड़ती हो जिस तरफ मोहिनी थी। जैसे इस तरह पढ़ती थी जिस तरफ वृंदा थी। कुछ अस्वाभाविक वही क्यों नजर आता है जहां किसी औरत की बात हो।[1]"

स्त्री और पुरुष पारिवारिक ढांचे को छोड़कर के जब अलग-अलग व्यक्तियों से प्रेम करने लगते हैं। तब पारिवारिक ढांचा किस तरह से टूटकर बिखर जाता है। बच्चे अपने आप में क्या महसूस करने लगते हैं ? 'मृत्यु और हंसी' उपन्यास इस विषय पर भी प्रगाढ़ता से विचार विमर्श करता है। और पाता है कि जब ऐसी स्थितियां पैदा होती हैं तो कम उम्र में ही बच्चे अपनी जिम्मेदारियों को समझने लगते हैं या समझ ले तो अच्छा हो जाता है।

अंश और नैना नामक पात्र इस बाल मनोविज्ञान को प्रकट करने में व्यापक रूप से अपनी भूमिका निभाते हैं। इस उपन्यास में बाल मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान को इस तरह से पकड़ने की कोशिश की गई है कि कैसे स्त्री के पक्ष में खड़ा हुआ जा सके ? कैसे स्त्री की स्वतंत्रता की बात की जा सके ? कैसे पितृसत्ता की जंजीर को

खोला जा सके ? ऐसे में अंश जो वृंदा का बड़ा बेटा है, और 14 वर्ष के आसपास है, और उसकी दोस्त नैना । यह दोनों मिलकर के वृंदा को बचाते हैं । अंश को उसके स्कूल में दोस्तों से सिर्फ इसलिए प्रताड़ित किया जाता है कि उसकी मां अपने दोस्त के साथ क्रिकेट देखने आई थी ।उसका पापा क्यों नहीं आया था ? और एक रात जब वह देखता है तो उसकी मां नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या करने वाली है, वह अपनी मां को बचा लेता है । यहां मृत्यु बोध और ज्ञानात्मक संवेदना का उदय होता है । यहां सत–चित–वेदना के उदय को हम प्रभावी रूप से देखते हैं ।' मृत्यु और हंसी' वास्तव में मृत्यु और जीवन के बीच के संघर्ष को किस तरह से एक स्त्री जीती है ? उसको प्रकट करने में एक सफल उपन्यास है ।

टॉलस्टॉय के उपन्यास 'अन्ना कारेनिना' में अन्ना आत्महत्या कर लेती है । वह आत्महत्या इसलिए करती है कि वह जख्म भरे समाज में पितृसत्ता के दंश को झेलते हुए कड़वाहट पूर्ण समाज में अपने बीस साल बड़े पति के साथ अपना जीवन जी रही थी । जिससे वह प्रेम करती थी, उसके साथ जीना चाहती थी । लेकिन स्त्री को प्रेम करने और स्वतंत्र जीवन जीने की पितृसत्ता में स्वतंत्रता नहीं है, अन्ना सामाजिक माहौल और तानो को न सह पाने के कारण आत्महत्या कर लेती है । इस दृष्टि से देखा जाए तो 'मृत्यु और हंसी' एक बड़ा उपन्यास है । जिसमें वृंदा को लेखक बचाने में कामयाब हो जाता है । यह वृंदा को बचा लेना उपन्यास की बहुत बड़ी उपलब्धि है । पितृसत्ता में सेंध लगा देना है । मानवता के पक्ष में खड़े हो जाना है । स्त्री के पक्ष में प्रेम, स्वतंत्रता और न्याय की स्थापना का शंखनाद कर देना है । यह प्रकट कर देना है कि 'स्त्री और पुरुष' के लिए समाज में समान रूप से व्यवस्था होनी चाहिए । आर्थिक और सामाजिक स्तर पर दोनों को समानता का अधिकार है । और इस अधिकार पर स्त्री का भी पूरा हक है, उतना ही जितना पुरुष का ।

वृंदा की कार दुर्घटना हो गई है और उसका इलाज चल रहा है । ऐसे में उसके पति राघव का पिता कहता है – "राघव तुम दुखी मत हो, तुम्हारी दूसरी शादी हो जाएगी और फिर जो वृंदा की संपत्ति है, जो वृंदा का व्यवसाय तुम कर रहे हो, वह तो तुम्हें ही मिलना है ।"[2] यह कथन स्पष्ट रूप से यह प्रकट करता है कि न केवल भारतीय समाज एवं वैश्विक समाज में भी स्त्री केवल वस्तु है । और वस्तु को भोगा जाता है । उसे गुलाम रखा जाता है। उसे स्वतंत्रता नहीं दी जाती है । उसे जब चाहे तब छोड़ दिया जाता है। और उसके स्थान पर नई वस्तु उपभोग के लिए लाई जाती है । यह सत्ता का बहुत बड़ा वाक्य है । बहुत बड़ा खेल है । बहुत बड़ा तिलिस्म है। जिसे' मृत्यु और हंसी' उपन्यास व्यापक संघर्ष और मनोवैज्ञानिक ढंग से तोड़ने का प्रयास करता है ।

वृंदा कुणाल से प्यार करती थी । कुणाल वृंदा से प्यार नहीं करता था । वह वह मुंबई में रहता था और अभिनय के क्षेत्र में करियर बनाने के लिए संघर्ष कर रहा था । वृंदा ने कुणाल से टूट कर प्यार किया । अपना सब कुछ उसे दे दिया लेकिन कुणाल ने चतुराई से प्यार किया और उसने वृंदा छोड़ दिया । वृंदा के " मन में यह बात बैठ रही थी कि उसे दुत्कारा जा रहा है । अपमानित होकर भी वह सब कुछ बचा लेना चाहती थी । यह पितृ सत्ता से ग्रसित पिताओं का समाज था । बलत्कृत होती औरतों का समाज था । सब कुछ ढक कर रखने वालों का समाज था । चुप रहना था, सहना था और छद्म नैतिकताओं के बोझ को ढोना था। [3]

वास्तव में यह उपन्यास इसलिए व्यापक और काबिले गौर है की यह उस धारा में चिंतन करता है, उस चुप्पी के खिलाफ है, जिसमें स्त्री को बार-बार रौंदा जाता है । और अपने रौंदे जाने के बावजूद भी वह सब कुछ बचा लेना चाहती है । पुरुष को हो रहे पारिवारिक विखंडनकी उतनी चिंता नहीं होती है, जितना स्त्री को होती है ।

यह प्रश्न इस उपन्यास में बार-बार आया है, और यह इस उपन्यास का उजला हो पक्ष है, जो हमारे अंतर्मन को प्रकाशित कर देता है ।वास्तव में यह उपन्यास एक कदम आगे जाकर यह प्रस्तुत करता है कि इस पारिवारिक विखंडन की चिंता बार-बार स्त्री ही क्यों करती रहे ? और इसी चिंता में अपने आप को जलाती रहे ? अपने आप को मारती रहे ? अपने आप को नष्ट करती रहे ? इसीलिए लेखक ने वृंदा के चरित्र को कुछ इस तरह से गढ़ने की कोशिश की है कि अब सहना और सहकर मर जाना । बार-बार बलत्कृत होकर जीना ,स्त्री की नियति नहीं है बल्कि स्वतंत्र जीवन की आकांक्षा और स्वतंत्रता के लिए प्रयास, अब स्त्री के लिए पहला कदम होना चाहिए ।

'मृत्यु और हंसी' उपन्यास पढ़ते हुए औद्योगिकरण और शहरीकरण जिसे हम पोस्टकॉलोनियल समाज कहते हैं । जिसमें शहरों में एक नए तरह का समाज विकसित हो रहा है । दिल्ली, मुंबई जैसे शहर, जिन शहरों का चित्र इस उपन्यास में आया है । इसी तरह से बेंगलुरु अहमदाबाद जैसे शहर जो लगातार अपने आप को बदल रहे हैं । न्यूयॉर्क और लंदन जैसे शहर जो अपने आप को लगातार बदल रहे हैं । ऐसे में एक नया समाज विकसित हो रहा है । इस नए समाज और कॉलोनियल कल्चर में स्त्री को अब किस तरह से अपना जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए 'मृत्यु और हंसी' उपन्यास इस पर व्यापकता से विचार करता है ।

जब समाज बदल रहा है, संस्कृति बदल रही है, इस बदलाव में स्त्री को भी व्यापक रूप से उस धरातल की ओर जाना चाहिए जिसमें न्याय और समानता है, सम्मान और प्यार है । और वह रास्ता क्या हो सकता ? वह रास्ता सामाजिक दासता से ऊपर उठकर नए औद्योगिकरण को स्वीकार करना हो सकता है । और इस नए औद्योगिकरण में स्त्री भी उद्योग करना सीखें, आर्थिक रूप से सफलता ही उसकी स्वतंत्रता की पहली सीढ़ी है । यह हम इस उपन्यास में देख सकते हैं । जब वृंदा अपना व्यापार खुद संभालना चाहती है । इसीलिए यह उपन्यास बदलते हुए भारत और बदलती हुई स्त्री की छवि को हमारे सामने प्रस्तुत करता है । और यह बताने का सफल प्रयास करता है कि जिस तरह से भारत और विश्व बदल रहा है । उसी तरह से स्त्री भी बदल रही है । अब उसके साथ छद्म नैतिकता के आधार पर और छल नहीं किया जा सकता । अब उसे और गुलाम नहीं रखा जा सकता ।

"उत्तर आधुनिकतावाद मूलतः और तत्त्वतः चिंतन के पुराने केंद्रवाद को ध्वस्त कर बहुलताबाद (प्लुरिज्म) अथवा बहुसंस्कृतिवाद पर आधारित है। मूल धारणा यह कि एकीकृत के बजाय 'विभिन्नता' को मूल प्रश्न मानता है। पुरुष-शरीर तथा नारी-शरीर की मिन्नता पर न केवल बहस हुई है बल्कि नारियों ने कहा कि चूँकि पुरुष-शरीर से नारी-शरीर की भिन्नता है इसलिए यह भिन्नता भाषा, संस्कृति, जाति, लिंग-सभी क्षेत्रों में अलग की जानी चाहिए ताकि नारी-शरीर तथा नारी-चिंतन अपना स्वतंत्र-स्वायत्त स्थान पा सके। नारी शरीर के 'बायोलॉजिकल', 'साइकोलॉजिकल,' पोलिटिकल','कल्चरल' अलग 'मॉडल' बनने चाहिए ताकि पुराने 'स्टीरियो टाइप' बोगस ढाँचे के सामाजिक, आर्थिक साँचों को तोड़कर नारी-व्यक्तित्व मुक्ति के प्रयास में बिना पुरुप की मदद से अपना व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन तय कर सके। नतीजा यह है कि पुराने ढाँचे के प्रति विरोधी-विचार, हाशिए पर स्थित लोग, परिधि पर स्थित अश्वेत जातियाँ, अश्वेत नारियाँ, समलैंगिक संबंध चेतना की जब तक पहचान और आवाज नहीं थी उन्हें सत्ता की भागेदारी तथा सांस्कृतिक-सामाजिक संवाद में शामिल किया जा सके। यहाँ नर-नारी की. 'विभिन्नता' पर बहुत जोर है क्योंकि दोनों अपनी मूल संरचनाओं 'संस्कृति-संवेदना, लिंग, परंपरा, भाषा, विश्वास, फैशन-फैड्स के कारण भिन्न हैं। नारीवादी चिंतन इस 'भिन्नता' को आधार बना कर ही पुरुष वर्चस्ववाद को चुनौती देता है। 'भिन्नता' से 'युगल-विपरीतता' का

सिद्धांत भी जुड़ा है। 'युगल-विपरीतता' का अर्थ है कि दो विपरीत एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े होते हैं कि उन्हें बिल्कुल अलग कर देना संभव नहीं। लेकिन इस जुड़ाव में एक का दूसरे पर वर्चस्व स्थापित हो जाता है। 'युगल-विपरीतता' का सिद्धांत अपने व्यवहार में स्त्री-पुरुष। इसमें स्त्री पर पुरुष का वर्चस्व है। अतः इस असमानतावादी वर्चस्व का अंत किया जाना चाहिए। नारीवादी आंदोलन इसी असमानतावाद के खिलाफ खुली लड़ाई लड़ रहा है। 4"अजय अवस्थी का यह उपन्यास निश्चय ही स्त्री विमर्श के उस केंद्र को पकड़ता है जिसमें वर्तमान उत्तर आधुनिकता के दौर में स्त्री को आर्थिक रूप से सबल होकर सामाजिक संघर्ष का रास्ता अपनाना होगा और इसी रास्ते से चलकर स्त्री अपने जीवन को व्यापक रूप से स्वतंत्र और न्याय पूर्ण बन सकेगी । और यह समय समाज तथा सामाजिक जरूरत भी है ।

****

संदर्भ :-

1.) 'मृत्यु और हंसी'(उपन्यास) लेखक – प्रदीप अवस्थी, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1– बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण – 2023, पृष्ठ संख्या– 68,
2.) वही, पृष्ठ संख्या –124,
3.) वही, पृष्ठ संख्या – 204
4.) 'उतराधुनिकतावाद की ओर', लेखक : कृष्ण दत्त पालीवाल, प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मंडल IX/221, सरस्वती भंडार, गांधीनगर दिल्ली – 11003, संस्करण – 2013, पृष्ठ संख्या – 131

निराला के काव्य में सामाजिक दृष्टि

डॉ. रचना लारिया
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
प्रधानमंत्री कालेज ऑफ एक्सीलेंस
शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय छिंदवाड़ा

शोध सार :- बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से सम्पूर्ण साहित्य जगत परिचित हैं। वे कान्तिकारी कवि निराला और महाप्राण निराला आदि नामों से विख्यात हैं। ये अभिधान निराला की उस विद्रोह का संकेत करते हैं जो उनकी कला साधना और वास्तविक जीवन में आद्योपान्त विद्यमान रही है। आधुनिक युग की जितनी प्रवृत्तियाँ हैं उन सब का प्रतिनिधित्व जैसा उनके काव्य में हुआ उतना अन्यत्र कहीं नहीं है। इसलिए आचार्य नंददुलारे वाजपेई ने उन्हें शताब्दी का कवि कहा है । वे छायावाद के चार आधार स्तंभ सुमित्रानंदन पंत, जय शंकर प्रसाद महादेवी वर्मा,में से सूर्यकांत त्रिपाठी निराला सर्वाधिक प्रतिभा लब्ध एवं उच्च दरजे के साहित्यकार एवं साहित्य साधक हैं। एक महान कवि होने के साथ - साथ वे एक कुशल कथाकार भी हैं। सच्चे अर्थों में वे मानवीय संवेदनाओं के लेखक हैं।" निराला के काव्य संग्रह उपन्यास कहानियों आदि में उनकी मानवीय भावना निरंतर अनुप्रमाणित होती दिखती है ।"[1] मानवीय संवेदनाओं को जितनी गहराई और बेबाकी से निराला ने उद्गार रूप में प्रस्तुत किया है आज शायद दुर्लभ प्रतीत होता है । आधुनिकता के इस दौर में मानवीय संवेदनाएँ लगभग समाप्त होती जा रही है ऐसे में पुनः आवश्यक है कि निराला जैसे प्रतिभा लब्ध मानवीय सहानुभूति के व्यक्ति सत्य के आधार पर सामंती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हैं और साथ ही सामाजिक व्यंग्य के स्वर को भी उभारते हैं। इनकी व्यक्तिमूलक विद्रोहात्मक और द्वंद्वग्रस्त जीवन दृष्टि इनकी सौंदर्यपरक कविताओं करुणात्मक रचनाओं तथा रहस्यात्मक अनुभूतियाँ काव्य के मूल में हैं। जिस समाज में वो रहते थे उस समाज के वास्तविक जीवन का चित्रण अपनी विभिन्न कविताओं में उन्होंने बखूबी किया है। उनकी कविताओं में समाज का वास्तविक दर्पण झलकता है। समाज में हो रहे अत्याचार शोषक का शोषित के प्रति दृष्टिकोण एवं विसंगतियों से अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के लोगों को अवगत कराया है।

"निराला की अपनी साहित्य चिंता बिल्कुल दूसरे स्तर और धरातल की वस्तु थी। रूप को भेदकर सत्य को देखने की आदि उनकी दृष्टि इस बदसूरती के बावजूद उसके भीतर जीवित जन की आत्मा का सौंदर्य परखने से नहीं चूक सकती थी।"[2]

'विधवा,'भिक्षुक'दीन'वह तोड़ती पत्थर'कुकुरमुत्ता'सरोज स्मृति'राम की शक्तिपूजा'रोंनी और कानी एवं डिप्टी साहब आए इन सभी रचनाओं में सामाजिक संदर्भों में उभरे नए यथार्थ की समस्याओं को नई दृष्टि से चित्रण किया गया है जिसमें गतानुगत सामाजिक मान्यताओं के परिवर्तन की प्रक्रिया स्पष्ट हो उठती है।

निराला ने भारतीय समाज और संस्कृति के पतन का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात वर्ण व्यवस्था की विकृति को इसका मूल कारण माना तुलसीदास काव्य में विविध वर्णों के पतित जीवन का जो चित्रण किया गया है वह कवि तुलसी के समय में जैसा था वैसा ही निराला के युग में भी था । बस अंतर केवल मुगल और अंग्रेजी शासन का है शेष सब वही शोषण वही दमन वही अत्याचार सब समान है । निराला जी ने क्षत्रियों और द्विजों के पतन पूर्ण जीवन को एक मार्मिक व्यंग्य के रूप में व्यक्त किया है

" विधि की इच्छा सर्वत्र अटल
यह देश प्रथम ही था हत बल

वे टूट चुके थे ठाट सकत वर्णों के
तृष्णोद्धत स्पर्द्धागत सगर्व
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व
द्विज चाटुकार हत इतर वर्ग पर्णों के ।" [3]

'परिमल काव्य में विधवा भिक्षुक दीन जैसी कविताओं में सामाजिक यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।भारतीय हिन्दू समाज ने यहां की विधवाओं के साथ जो अत्याचार किया है वह किसी से छिपा नहीं है। भारतीय विधवाएँ ही हैं जो अपनी समस्त आकांक्षाओं को अपने में समेट सिसकी भरती हुई अपने शरीर को अतृप्ति की अग्नि में झोंक देती है -

'" वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शांतभाव में लीन
वह क्रूर काय तांडव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छूटी लता–सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है ।"[4]

यहां विरोध न केवल अनिष्ट यथार्थ और इष्ट देव के मंदिर की पूजा का है बल्कि एक जीवित स्त्री का अनुपस्थित इष्ट देवता के मंदिर में पूजा की तरह समर्पित होना पवित्र उज्ज्वल किन्तु निरर्थक होने की अभिव्यक्ति है। निराला ने अपने आसपास के जगत को खुली आँखों से देखा इनकी भिक्षुक कविता वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार व्यवस्था के प्रति एक गहरा सक्रिय आक्रोश व्यक्त करती है-

" दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलाकर
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठीभर दाने को भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को
दो टूक कलेजे...। " [5]

'दीन नाम की कविता निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। वह निम्न वर्ग का व्यक्ति मूक भाव से अनेक कष्टों को झेलते हुए सब कुछ सह जाता है-

" सह जाते हो
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न
हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न
अंतिम आशा के कानों में
स्पंदित हम सबसे प्राणों में
अपने उर की तप्त व्यथाएँ
क्षीण कंठ की करुण कथाएँ
कह जाते हो।" [6]

कवि ने अनामिका काव्य में वह तोड़ती पत्थर' कविता में सामाजिक विसंगतियों पर जमकर प्रहार किया। सामाजिक शोषण का पर्दाफाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। इसमें सामान्य श्रमशील जनता का प्रतीक महिला के माध्यम से समाज की यथार्थ स्थिति को सामने रखा है-

" कोई न छायादार,
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भरा बंधा यौवन,
नत नयन प्रिय कर्म रत मन,
गुरू हथौड़ा हाथ,
करती बार - बार प्रहार
सामने तरु मलिका अट्टालिका प्राकार...।"[7]

वह बार- बार प्रहार की चोट सिर्फ पत्थर पर ही नहीं करती,तरु-मलिका अट्टालिका पर भी करती है। पूरी कविता में मूक मजदूरनी का कंठ अंत में तोड़ती पत्थर सारी विषमताओं कटुताओं के बावजूद कर्म की निरंन्तरता जीवन के यथार्थता को उभारता है।

कुकुरमुत्ता उनकी ऐसी कविता है जिसमें व्यंग्य की धार दोहरी है उसमें एक तरफ वे पूंजीपति वर्ग पर व्यंग्य करते हैं दूसरी तरफ संकीर्णतावादी प्रगतिशील दृष्टि पर कुकुरमुत्ता कविता में उच्च वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग के साथ जो अमानवीय व्यवहार किया जाता है। इस कविता के माध्यम से साम्यवादी सिद्धांतों पर घातक प्रहार किया गया है। निम्न वर्ग की बस्ती का यथार्थवादी चित्र उपस्थित करते हुए गोली और बहार की कथा बताई गई है। गोली बाग़ की मालिन की लड़की थी और बहार नवाब की नवाबज़ादी। दोनों में साहचर्यजन्य प्रेम उत्पन्न हो गया था'

ऐसे भोले बन कर हैं बैठे, जैसे कोई बात नहीं
सब कुच नज़र आ रहा है, दिन है ये रात नहीं
क्या है, कुछ भी नहीं है अगर
होंठों पे है ख़ामोशी मगर
बातें कर रहीं है
बातें कर रहीं है नज़र चुपके-चुपके
दो दिल मिल रहे हैं मगर चुपके-चुपके। " [8]

साम्यवादी विचारधारा के अनुसार दो विरोधी वर्ग में पैदा होकर इनकी मैत्री की सम्भावना नहीं हो सकती किन्तु मानवता के अनुसार मनुष्य&मनुष्य का हृदय सामीप्य और एक दूसरे के प्रति बराबरी का व्यवहार करना चाहता है चाहे वह किसी भी वर्ग में पैदा क्यों न हो। कुकुरमुत्ता निराला के सामाजिक यथार्थ का वह केंद्र बिंदु है जिसमे तत्कालीन वर्गीय दृष्टियां अपने सही रूप का इज़हार करती हैं।

सरोज स्मृति निराला के मन की वेदना है उनका संतोष है। बेवशी है जहाँ अर्थ ही अनर्थ का मूल है।यह हिन्दी साहित्य जगत का श्रेष्ठतम शोक गीत है।

सरोज-स्मृति पुत्री सरोज के असामयिक अंतर्मन की समूची वेदना अभिव्यक्त हुई है। 'अर्थ ही अनर्थ का मूल था'।

'सरोज स्मृति इनकी महत्वपूर्ण कविता है। यह कविता दुखों के पहाड़ के विस्फोट में क्षत विक्षत निराला की आत्मकरुणा का चित्र है जिसके रंगों को गहराई देने का काम अनेकानेक विषम सामाजिक सन्दर्भों ने किया है।'निराला ने आत्मकरुण कथा को सार्वजानिक व्यथा-कथा बना दिया जो व्यक्तिगत संवेदन को सामाजिक संवेदन से जोड़ने की निराला की अद्भुत क्षमता का परिचय देती है।"[9] गीते तुम अनाम उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति में एक सरोज की ही नहीं अपितु हज़ारों लाखों सरोजों की कहानी कही है। जिनके अभाव अभाववश उनकी चिकित्सा का थोड़ा सा भी प्रबंध नहीं करा पाते वे अपने जीवन की असहाय एवं निरर्थकता पर गहरा शोक व्यक्त करते हैं।

'" धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका !
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर...।" [10]

'राम की शक्ति पूजा राम और रावण की कथा के बहाने जहां एक और आधुनिक जीवन और समाज में व्याप्त द्वंद्व एवं अंतर्विरोधों को गहराई और व्यापकता के साथ चित्रित करती है। 'असहाय थके हुए, निराश और संशय ग्रस्त राम के जो भी चित्र हम कविता में देखते हैं उनमें निराला की ही प्रतिछाया दिखाई देती है। अन्याय और विरोधों से जूझते हुए निराला न जाने कितनी ही बार आहत हुए।"[11] इसलिए कविता पढ़ते&पढ़ते कभी राम के रूप में स्वयं निराला हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं।

'" धिक् जीवन को जो पाता ही आया है विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।"[12]

'नए पत्ते, काव्य की पहली रचना ^रानी और कानी, कुरूपता

यथार्थ की विषमता के चित्रण की वजह से कविता के स्तर पर बहुत विश्वसनीय लगती है। यह कविता हमारी संवेदनाओं को झकझोरने वाली है।

" माँ उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम,
लेकिन उसका उल्टा रूप
चेचक के दाग, काली, नक - चिप्टी
गंजा सर, एक आंख कानी...।" [13]

अपनी एक आँख कानी, चेचक के दाग वाली कन्या को आदर से रानी कहना यथार्थ को देखकर भी अनदेखा करती माँ की ममता का सूचक है। पड़ोस की औरत के ताने से विचलित माँ अपनी 'रानी और कानी' के ब्याह न होने की बात सुन मन मसोस कर रह जाती है। कुरूप रानी की पीड़ा और शारीरिक कमी दोनों ही सजीव हो उठती है। इससे उसकी जो प्रतिक्रिया होती है वह यहाँ व्यक्त होती है।

" सुनकर कानी का दिल हिल गया,
कांपे कुल अंग
दाई आँख से
आंसू भी बह चले माँ के दःख से...।"[14]

उस समय समाज के जमींदारों के द्वारा निम्नवर्ग का शोषण किया जाता था। कवि ने उस सामाजिक यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत किया है और उन पर व्यंग्य भर्त्सना की है। जमींदारों के हथकंडे और भी निराले होते हैं। लगान लेकर किसी दूसरी वस्तु का प्रतिशोध लेने के लिए दावा कर देना, नजराना लेना साधारण बात थी। वे अनेक प्रकार के हथकंडे भी काम में लाते थे, इसलिए कवि ने यहां तक लिख दिया है।

" जमींदार की बनी,
महाजन धनी हुए हैं
जग के मूर्ति पिशाच
धूर्त गण गनी हुए हैं...।"[15]

'" डिप्टी साहब आए कविता में डिप्टी, जमींदार, दरोगा मिलकर शोषण करने वाले हैं। ये लोग गांव के किसानों से छल एवं झूठे गवाहों से किसानों के बाग-खेत जमींदार के पक्ष में ले लेते हैं।"[16] इस कविता में निराला ने वर्ग-चरित्र को उभारते हुए एवं वर्ग - संघर्ष का भी आभास देते हुए समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाया है।

निष्कर्ष :- -

कवि का प्रमुख ध्येय यही होता है कि अपनी रचनाओं के माध्यम से सभी को समाज की वास्तविक स्थिति से अवगत करवाएं। कवि ने समाज में हो रही जातिगत संकीर्णता, ऊंच-नीच का भेद-भाव, निम्नवर्ग की अक्षमता, जमींदारों के अत्याचारों, महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण आदि सभी गंभीर सामाजिक मुद्दों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। कवि ने अपनी आँखों से जो देखा, अनुभव किया, साथ ही स्वयं भी जिन परिस्थितियों से गुजरे उन्हें हमारे समक्ष प्रदर्शित किया है। विधवा, भिक्षक, दीन, वह तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता सरोज-स्मृति, रानी और कानी सभी में किसी न किसी समस्या से जूझ रहे उन निम्न-वर्ग के लोगों का चित्रण किया है। सभ्य समझा जाने वाला आज का ये समाज अपने ही निम्न-वर्ग के साथ अनुचित व्यवहार करता है तथा आज भी निम्न-वर्ग को उपेक्षित व्यवहार का सामना करना पड़ता है। आज भी कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में उच्च-वर्ग द्वारा निम्न-वर्ग को प्रताड़ित किया जाता रहा हैं। अतः आज हमें इन सभी से ऊपर उठकर सभी के साथ समान व्यवहार एवं सही दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ: -

1.प्रसाद निराला अज्ञेय प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद सालवां संस्करण 2014 पृष्ठ 63
2. अर्चना वर्मा: निराला के सृजन&सीमान्त विहग और मीन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ.236
3. नंदकिशोर नवल निराला रचनावली भाग1 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली इलाहाबाद पटना तुलसीदास छं 27
4. बच्चन:क्रांतिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पांचवां संस्करण 2003, पृ.34
5. वही, पृ.35
6. वही, पृ.36
7. बच्चन:क्रांतिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पांचवां संस्करण 2003, पृ.94
8. वही, पृ.66
9. विनोद कुमार जायसवाल: निराला की लम्बी कविताएँ एक अध्ययन, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली,1992, पृ.128
10. वही, पृ.128
11. वही, पृ.162
12. बच्चन:क्रांतिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पांचवां संस्करण 2003, पृ.152
13. रेखा खरे:निराला की कविताएँ और काव्यभाषा, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2015, पृ.289
14. वही, पृ.290
15. बच्चन:क्रांतिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पांचवां संस्करण 2003, पृ.168
16. रेखा खरे:निराला की कविताएँ और काव्यभाषा, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2015, पृ.55

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

21 वीं सदी के हिंदी यात्रा-वृतांत में अभिव्यक्त सांस्कृतिक परिवर्तन: वैश्वीकरण के युग की नई संवेदनाएँ

रवि कुमार झा
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

शोध सार-इक्कीसवीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांत पारंपरिक वर्णन से आगे बढ़कर व्यापक सांस्कृतिक, सामाजिक और वैचारिक अध्ययन का रूप ले चुके हैं। वैश्वीकरण और तीव्र तकनीकी विकास ने आधुनिक यात्री को बहुआयामी दृष्टि दी है, जिसके कारण यात्रा अब केवल स्थान-परिवर्तन का अनुभव नहीं, बल्कि विभिन्न सभ्यताओं, जीवन-शैलियों और मूल्यों के तुलनात्मक विश्लेषण का माध्यम बन गई है। इन यात्रा-वृत्तांतों में जापान, रूस, यूरोप और अन्य देशों की सामाजिक संरचनाओं, संस्कृति, श्रम-शैली, आधुनिकता के प्रभावों और जीवन-दृष्टि का सूक्ष्म अवलोकन मिलता है। साथ ही भारतीय लेखक जब विदेशी अनुभवों को देखते हैं, तो भारत की अपनी सांस्कृतिक जड़ों, परंपराओं, स्मृति और विविधता की तुलना स्वाभाविक रूप से उभरकर आती है।

डिजिटल युग में ब्लॉग, व्लॉग और सोशल मीडिया ने यात्रा-वृत्तांतों को तात्कालिकता और दृश्यात्मकता प्रदान की है, जिससे संस्कृति की समझ अब और अधिक सहज, जीवंत और साझा हो गई है। इन माध्यमों ने यात्राओं को 'लिविंग कल्चरल डॉक्यूमेंट' में बदल दिया है, जहाँ संस्कृतियाँ स्थिर न रहकर निरंतर संवाद और पुनर्संरचना की प्रक्रिया में दिखती हैं। आधुनिक हिंदी यात्रा-वृत्तांत वैश्विक अनुभवों और भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संगम से निर्मित एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा का निर्माण करते हैं, जो बदलते मूल्यों, सामाजिक परिवर्तनों और मनुष्य के नए अनुभव-जगत को गहराई से व्यक्त करती है।

बीज शब्द- वैश्वीकरण, सांस्कृतिक पुनर्संरचना,अंतर्सांस्कृतिक संवाद, आधुनिक जीवन-शैली, तुलनात्मक विश्लेषण, सांस्कृतिक विविधता, परंपरा-आधुनिकता, सांस्कृतिक स्मृति, वैश्विक अनुभव, सामाजिक परिवर्तन, डिजिटल माध्यम, दृश्यात्मकता, मूल्य-परिवर्तन, सांस्कृतिक चेतना

मूल आलेख-यात्रा-वृतांत के लेखक सिर्फ तीर्थयात्री या घुमक्कड़ नहीं है, वे ग्लोबल सिटीजन हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में यात्रा केवल स्थान परिवर्तन का अनुभव नहीं रह गई, बल्कि यह संस्कृति, सभ्यता, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और तकनीक आदि के व्यापक अंतर्संबंधों को समझने का सशक्त माध्यम बन चुकी है। वैश्वीकरण की तीव्र गति, डिजिटल संचार के अभूतपूर्व विस्तार और अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता ने आज के यात्री को विश्व-दृष्टि से सम्पन्न किया है। वह न केवल अपने परिवेश को साथ लेकर चलता है, बल्कि जहाँ भी पहुँचता है, वहाँ की जीवन-शैली, मूल्य-व्यवस्था, सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और सामाजिक व्यवहारों को आत्मसात करते हुए पाठकों तक पहुँचाता है।

इसी वैश्विक परिदृश्य में 21वीं सदी का हिंदी यात्रा-वृत्तांत एक नए साहित्यिक रूप में उभरता है,जहाँ परंपरा और आधुनिकता साथ-साथ चलती हैं, जहाँ स्थानीय अनुभव 'ग्लोकल' संदर्भों से जुड़ते हैं, और जहाँ संस्कृति स्थिर न रहकर निरंतर पुनर्संरचित होती दिखाई देती है। आधुनिक यात्राएँ केवल भूगोल का विस्तार नहीं करतीं, वे अंतःसंस्कृति संवाद, पारस्परिक समझ, नए मूल्यों के उदय और पुराने मूल्यों की पुनर्परिभाषा का अवसर भी प्रदान करती हैं। डिजिटल तकनीक ने इस प्रक्रिया को और अधिक जीवंत, तात्कालिक और बहुआयामी बना दिया है। ब्लॉग, व्लॉग, सोशल मीडिया और मोबाइल फोटोग्राफी ने यात्रा-वृत्तांतों को दृश्यात्मकता, अनुभवात्मकता और भावनात्मक विस्तार के नए आयाम दिए हैं। अब यात्रा-वर्णन केवल किसी स्थल का वर्णन नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक अध्ययन—एक 'लिविंग कल्चरल डॉक्यूमेंट'—के रूप में सामने आता है।

इसी संदर्भ में 21वीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांत वैश्विक अनुभवों और भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संगम से निर्मित एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा का निर्माण करते हैं, जो बदलते सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं, आधुनिक जीवन-शैलियों और वैश्वीकरण के प्रभावों को नई दृष्टि से देखने का अवसर प्रदान करती है। "यात्रा संसार के भ्रमणशील स्वभाव का प्रतिरूप है। प्रकारान्तर से स्वयं यह जीवन भी 'देश के असीम पथ पर 'काल' की अनन्त यात्रा का सहसम्बन्धात्मक पर्याय है। वस्तुतः यह समस्त प्राणियों की सहज अभिलाषा का अभिन्न अंग है। जिजीविषा, जिज्ञासा, अस्तित्व-रक्षण आदि के प्रयोजनों से प्रेरित होकर मनुष्य अकेले या समूह में दूर-दूर तक फैले हुए वन-पर्वत, सरिता-सागर, मरुभूमि आदि से गुजरनेवाले दुर्गम मार्गों पर सदियों से चलता रहा है। इतना ही नहीं वह आज अन्तरिक्ष स्थित अनेक ग्रह-नक्षत्रों की यात्राओं पर निकल पड़ा है।

यात्रा सम्पूर्ण सृष्टि के रूप, रस, गन्ध, स्वर आदि के अपार ऐश्वर्य के रसास्वादन की उद्दाम मानवीय लालसा का प्रतिफल है। इस यात्रा के माध्यम से मनुष्य आत्मविश्वास की प्रवृत्ति से अनुप्रेरित होता है। स्वभावतः वह अपनी यात्रा की स्मृतियों को मन-प्राणों में संजोने की अभिलाषा रखता है।"[1]

राहुल सांकृत्यायन घूमने को विश्वव्यापी धर्म मानते हैं, वो इसे सीधे संस्कृति के आदान – प्रदान से जोड़ते हैं।पुरुष के साथ महिलाओं को भी इस धर्म में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेते हुए देखना चाहते हैं।"घुमक्कड़-धर्म सार्वदैशिक विश्वव्यापी धर्म है। अंत में किसी के आने की मनाही नहीं है, इसलिए यदि देश की तरुणियाँ भी घुमक्कड़ बनने की इच्छा रखें, तो यह ख़ुशी की बात है। स्त्री होने से वह साहस-हीन है, उसमें अज्ञात दिशाओं और देशों में विचरने के संकल्प का अभाव है—ऐसी बात नहीं है। जहाँ स्त्रियों को अधिक दासता की बेड़ी में जकड़ा नहीं गया, वहाँ की स्त्रियाँ साहस-यात्राओं से बाज नहीं आतीं। अमेरिकन और यूरोपीय स्त्रियों का पुरुषों की तरह स्वतंत्र हो देश-विदेश घूमना अनहोनी-सी बात नहीं है। यूरोप की जातियाँ शिक्षा और संस्कृति में बहुत आगे हैं, यह कहकर बात को टाला नहीं जा सकता। अगर वे लोग आगे बढ़े हैं, हमें भी उनसे पीछे नहीं रहना है। लेकिन एशिया में भी साहसी यात्रिणियों का अभाव नहीं है।"[2] इक्कीसवीं सदी के यात्रा-वृत्तांत पूर्ववर्ती समय की तुलना में बिल्कुल नए स्वरूप में उभरते हैं। वैश्वीकरण और आर्थिक सुधारों के कारण विदेश-यात्राएँ बढ़ीं तथा हवाई यात्रा सस्ती, सुरक्षित और सुलभ होने से यात्राओं का विस्तार अभूतपूर्व रूप से हुआ। इस सदी में यात्रा-वर्णन केवल स्थान-चित्रण तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि यात्री जिस प्रदेश में पहुँचता है वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, भोजन, परंपराएँ और जीवन-शैली जैसे सांस्कृतिक तत्वों को गहराई से समझकर प्रस्तुत करता है। डिजिटल माध्यमों के आने से अब यात्रा-वर्णन में तथ्यों के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव, भावनाएँ और रोमांच भी महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। इस दौर की भाषा सरल, सहज और सामान्य पाठक के अनुकूल है, जिसके कारण कोई भी पाठक इन विवरणों को आसानी से पढ़ और समझ सकता है। 21वीं सदी के यात्रा-वृत्तांत सांस्कृतिक अनुशीलन, व्यक्तिगत दृष्टि और तकनीकी प्रभाव—तीनों के संगम के रूप में एक नए साहित्यिक रूप में विकसित हुए हैं। डिजिटल युग के यात्रा-वृत्तांतों में संस्कृति की पुनर्संरचना अत्यंत स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। पहले यात्रा-वर्णन मुख्यतः भू-दृश्यों, स्थलों और मार्गों तक सीमित रहते थे, परंतु डिजिटल माध्यमों—ब्लॉग, व्लॉग, सोशल मीडिया, ऑनलाइन जर्नल—के आगमन से यात्राओं का स्वरूप सांस्कृतिक अनुभवों के विस्तृत दस्तावेज़ में बदल गया है।

अब यात्री किसी नए स्थान पर पहुँचकर केवल दृश्य नहीं देखता, बल्कि वीडियो, फोटो, लाइव-स्टोरी और संवाद के जरिए वहाँ की भाषा, भोजन, वेश-भूषा, लोक-परंपरा, रीति-रिवाज, त्योहार और जीवन-दृष्टि को तत्काल साझा करता है। इस प्रक्रिया ने संस्कृति को स्थिर, पारंपरिक अवधारणा से निकालकर एक संवादशील, अनुभव-प्रधान और सहभागितापूर्ण रूप में पुनर्गठित किया है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने संस्कृति की सूक्ष्म परतों—जैसे लोक-कला, हस्तशिल्प, जनजातीय परंपराएँ, स्थानीय बोलियाँ और सामुदायिक व्यवहार को भी वैश्विक निष्पादन दिया है, जिससे संस्कृति की चर्चा पहले की तुलना में कहीं अधिक व्यापक और जीवंत हो गई है।

इसी क्रम में पुराने सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या और नए मूल्यों का उदय भी देखने को मिलता है। पहले संस्कृति को 'अन्य' के रूप में देखने की प्रवृत्ति प्रबल थी,यात्री बाहरी दृष्टि से निरीक्षण करता था, परंतु डिजिटल युग में यात्रा-वृत्तांतों ने सांस्कृतिक संवेदनशीलता, सहभागिता, विविधता-स्वीकार, सह-अस्तित्व और अनुभव-साझेदारी जैसे नए मूल्यों को केंद्र में ला दिया है। पुराने मूल्य (जैसे संस्कृति को एक स्थिर, एकरूप और परंपरागत इकाई समझना) बदल रहे हैं। उनकी जगह अब संस्कृति को बदलते समय, तकनीक, वैश्वीकरण और अंतर-सांस्कृतिक संवाद के साथ विकसित होते जीवंत स्वरूप में देखने की दृष्टि मजबूत हो रही है। परिणामस्वरूप आधुनिक यात्रा-वृत्तांत संस्कृति को एक बहुआयामी, गतिशील और वैश्विक-स्थानीय (ग्लोकल) अनुभव के रूप में स्थापित करते हैं, जहाँ स्थानीय परंपराएँ नए संदर्भों में नए अर्थ ग्रहण करती हैं और नए सांस्कृतिक मूल्य समाज में स्वीकार्य होते जा रहे हैं।

रूस की परिवार व्यवस्था से भारत की परिवार व्यवस्था की तुलना करते लेखक लिखते हैं"भारत में पर्दा अब भी है, रूस में पर्दा नहीं है। और लज्जा नामक भाव भी नहीं है। यहां यौन मुक्ति है। उद्दाम सेक्स। गोपन कुछ भी नहीं। प्रायः दस में से आठ लड़कियां सिगरेट पीती है। वे देर रात को भी अकेले या अपने प्रेमी के साथ स्वच्छंद घूमती है। पिता-माता की ओर से ज्यादा बंदिश इसलिए नहीं लगाई जाती कि आखिर उनका विवाह कैसे होगा? वह तो प्रेम से ही होगी और मुक्ति के बिना प्रेम संभव नहीं है। पिता-माता द्वारा आयोजित विवाह यहां नहीं होते। दहेज भी उस रूप में नहीं होता जैसा भारत में, क्योंकि परिवार की संपत्ति में लड़की
का भी हिस्सा होता है। यह हिस्सा भारत में भी है, पर केवल दिखाने के लिए। रूस में व्यवहार में है। लड़की के विवाह के बाद लड़का लड़की के घर चला जाता है। यदि लड़की के पिता के विरूद्ध विवाह हुआ है। तो लड़की का पिता अपनी लड़की और दामाद को अलग कर देता है। तलाक यहां आम बात है। यहां वह प्रेम, राग, समर्पण, भावनात्मक लगाव और अपनापन संभव नहीं है, जो भारतीय संयुक्त परिवारों की विशेषता है। पति-पत्नी दोनों को पता है कि कभी भी तलाक हो सकता है। दोनों अपनी सुविधानुसार अपना जीवनसाथी बदल लेते है।"[3]

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में चीन के व्यापार के प्रति तल्लीनता पर बात करते हुए मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं "साम्यवादी चीन में शुरू से लेकर अब तक जो शास्त्रार्थ होता आया है। उनका मुख्य मुद्दा परंपरागत आदर्शवादिता बनाम आधुनिक आर्थिक समृद्धि ही है। माओ बराबर दो खतरों के प्रति सचेत रहे। पहला यह कि गरीब देश में समृद्धि के सपने जगाकर ऐसा न हो कि देश में आधुनिक बने उससे पहले ही आधुनिक उपभोग का सिलसिला छिड़ जाए और भ्रष्टाचार फैले। दूसरा यह कि कहीं क्रांतिकारियों की पार्टी, क्रांति के बाद कुर्सी पर बैठे, मौजमस्ती मारते दफ्तरशाहों की पार्टी न बन जाए। उन्हें बराबर इस बात की भी चिंता थी कि कृषि प्रधान देश में औद्योगिकरण और शहरीकरण को कहीं इतना प्रश्रय न मिल जाए कि अर्थ-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था चरमरा उठे।"[4]

जापान अपने अनुशासित, समयनिष्ठ और सूक्ष्मता पर आधारित वर्क कल्चर के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। यहाँ काम को सिर्फ दायित्व नहीं, बल्कि उत्कृष्टता की निरंतर साधना माना जाता है।

कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं "सबसे दिलचस्प बात यह है कि जापान में यदि काम आज पूरा किया जा सकता है, तो जापानी कहेगा यह आज अवश्य ही पूरा हो जाना चाहिए। वह काम को टालना नहीं जानता। चाहे उसकी कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। जापानी 'वर्क कल्चर' ही ऐसी है। इस वर्क कल्चर के पीछे जापानी सोच का अर्थशास्त्र सक्रिय है। यहां तक कि राजनीति का चेहरा भी इस अर्थशास्त्र से अलग नहीं है। इसलिए 'आइडियल सोसायटी' की जापानी अवधारणा भारतीय आइडियल सोसायटी की अवधारणा से भिन्न है। केवल काम के बगैर तफरीह तो भारतीय ही कर सकता है, फक्कड़पन-अलमस्त।"[5]

यूरोपीय लोगों की जीने की कला के संदर्भ में कर्मेन्दु शिशिर लिखते हैं, "यह बात माननी होगी कि भौतिक जीवन को छककर जीने की कला यूरोपियनों को ही आती है। हर काम वे बड़े मनोयोग और गहरी संलग्नता से करते है। धर्म, जाति या स्त्री-पुरुष रिश्तों की गाँठें, जो अधिकांश भारतीयों को जकड़े रहती है।, उससे वे सहज मुक्त होते है।"[6].

कर्मेन्द शिशिर अपनी यूरोप यात्रा में जब पेरिस के एफिल टॉवर के पास पहुँचे, तो उन्होंने एक सूक्ष्म अनुभूति व्यक्त की—यहाँ के लोग हर काम को एक विशेष ढंग, एक तयशुदा पद्धति के साथ करते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति भीख माँगता है, तो वह भी पूरे संयोजन और व्यवस्था के साथ। लेखक का मानना है कि यूरोपीय संस्कृति में भीख माँगना किसी अपराध की तरह नहीं देखा जाता; यह वहाँ के सामाजिक व्यवहार का एक स्वीकार्य हिस्सा है।

यूरोपीय लोगों के इस व्यवस्थित ढंग का चित्रण करते हुए वे बताते हैं कि यहाँ भीख माँगना भी एक सलीके से किया जाने वाला काम प्रतीत होता है।"एक स्टॉपेज पर एक बहुत बड़े नगाड़े, एक बड़े से ढोल और पिस्टन लिये तीन मोटे-ताजे युवक चढ़ आए। एक मोटी सी युवती ने हाथ में पोर्टेबल माइक लिया और एक स्पॉनी लोकगीत छेड़ दी। उसने एक पैर पीछे कर रखा था, दूसरा आगे। गाते हुए वह आगे झुकी, फिर पीछे, ऐसा लग रहा था, वह मानो किसी स्टेज पर परफार्म कर रही हो। उस लातिनी गीत का कुछ भी हमारी समझ में नहीं आ रहा था, फिर भी उसके आलाप अच्छे लग रहे थे। आवाज के कम्पन में एक कशिश थी। नगाड़े, ढोल और पिस्टन की आवाज शायद गीत के लय में थी। कुछ पलों के लिए एक समां बंध गई। दूसरा स्टॉपेज आते ही उसने अगल-बगल गिलास बढ़ाया, कुछ ने सिक्के डाले और वे एक झटके में नीचे उतर आए।"[7]

कमलेश्वर ने अपनी पाकिस्तान यात्रा के दौरान लाहौर कॉन्फ्रेंस में 'स्मृति और संस्कृति की परंपरा' विषय पर एक महत्वपूर्ण बातें प्रस्तुत की है।"साहित्य न तो संस्कृति की परंपरा से कभी जुदा हुआ और न कभी जुदा हो पाता है। स्मृति की इस परंपरा का एक बहुत बड़ा अंग है, भूगोल ! व्यक्ति किसी भी धर्म, जाति, वर्ण, वंश और गोत्र का क्यों न हो, वह अपना जन्मस्थान यानी अपने नितान्त निजी भूगोल को कभी नहीं भूल पाता। संस्कृति-निर्माण में धर्म की अपेक्षा स्मृति की भूमिका का अंशदान ज्यादा होता है।

संस्कृति लिखी नहीं जाती और न लिखवाई जाती है। वह स्वतः निर्मित होती चलती है। वह मिट्टी, हवा, पानी और रक्त की तरह धमनियों में प्रवाहित रहती है, यही संस्कृति साहित्य का हिस्सा बन जाती है। संस्कृति मनुष्य की सामाजिक साहित्य का हिस्सा बन जाती है। संस्कृति मनुष्य की सामाजिक और सार्वजनिक चेतना का नाम है। मैं स्मृति की संस्कृति और स्मृति की परंपरा को सांस्कृतिक परंपरा की आधारभूमि मानता हूं, जिसे मैं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सांस्कृतिक विरासत की जड़ों के रूप में देखता हूं। संस्कृति और सभ्यता का अधिकांश इतिहास मानवीय स्मृतियों, चिन्ताओं और उसके स्वप्नों से निर्मित होता है। कोई भी संस्कृति हो, पाश्चात्य या पौर्वात्य, उसकी धमनियों में 'स्मृति का रक्त' प्रवाहमान दिखाई देता है।"[8] पश्चिम के लोगों में इस सीमित सांस्कृतिक समझ की तुलना में भारत की संस्कृति बिल्कुल विपरीत प्रवृत्ति रखती है।

भारत में विभिन्न सभ्यताओं, देशों और परंपराओं को जानने-समझने की जिज्ञासा प्राचीन काल से ही यात्राओं, ग्रंथों और संवादों के माध्यम से जीवित रही है। भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि विविधता को अपनाने, उसे आत्मसात करने और उससे सीखने की परंपरा को महत्व देती है, जो उसे अधिक व्यापक, समावेशी और विश्व-उन्मुख बनाती है।

नरेश मेहता लिखते हैं"पश्चिम के लोगों की सबसे बड़ी कमी यह है। कि वे लोग अपने अलावा किसी भी देश, समाज, सभ्यता, साहित्य और संस्कृति के बारे में विशेष नहीं जानते। जो भी जानते है। कि वह भी कुछ ऐसा ही होती है, जैसा सैलानियों के लिए जो पुस्तिकाएँ तैयार की जाती है, उनमें बहुत काम-चलाऊ सूचनाएँ और नाम दे दिये जाते है, बस बहुत कुछ ऐसा ही लगता है।"[9] यात्रा-वृत्तांत के लेखक स्वदेशी परिवेश की सुंदर व्याख्या करते हुए भारत की सांस्कृतिक विविधता को जीवंत रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे विभिन्न प्रदेशों की भाषा, भोजन, पहनावा, लोकजीवन और सामाजिक व्यवहार का ऐसा चित्र खींचते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट पहचान उभर आती है। उनकी दृष्टि केवल बाहरी दृश्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे लोगों की संवेदनाओं, रीतियों और जीवन-धारणाओं को भी गहराई से पकड़ते हैं। इस प्रकार उनका वर्णन भारतीय संस्कृति की बहुरंगी छटा को एक एकीकृत, संवेदनशील और सुंदर रूप में पाठकों के सामने रखता है।अनिल यादव पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक धरती में बॉस के महत्व को रेखांकित करते हुए बताते हैं कि यह केवल एक औज़ार या सामग्री नहीं, बल्कि वहाँ की जीवन-पद्धति का अभिन्न हिस्सा है। वे स्पष्ट करते हैं कि बॉस जहाँ एक ओर उपयोगिता, संरचना और रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करता है, वहीं दूसरी ओर उसकी अनियंत्रित उपलब्धता और अत्यधिक निर्भरता कभी-कभी विध्वंस का कारण भी बन सकती है। इस प्रकार लेखक बॉस के योगदान और उसके संभावित विपरीत प्रभाव—दोनों का संतुलित चित्र प्रस्तुत करते हैं।

"पूर्वोत्तर में जमीन पर जो कुछ भी है, उसमें सबसे अधिक बाँस और सुपारी दिखाई देते है। बाँस यहा की जिंदगी में, शरीर में, खून ले जाने वाली धममियों की तरह शामिल है। मेघालय में सिंचाई की नालियों की तरह, मिजोरम के सुदर गाँवों में बरसाती पानी को घर तक लाने वाली पाइप लाइन, नागालैंड में चाकू की तरह और कई इलाकों में तो थाली-कटोरी की भी तरह इस्तेमाल किया जाता है। उसके फूलों के विध्वंस की ताकत भयानक है। यह बजती हुई बाँसुरी के अचानक किसी स्वर पर गरदन वाली तलवार में बदल जाने जैसा अजूबा लगता है।ये फूल बिरले आते है, लेकिन अब आते है, तो प्रकृति नया असंतुलन प्है। दा करती है। चूहे इन फूलों को खाते है, जिससे उनकी प्रजनन शक्ति असामान्य ढंग से बढ़ जाती है। लाखों की संख्या में प्है। दा हुए चूहे खेतों की फसलें, घरों में रखा अनाज, फल, सब्जियाँ समेत जो सामने आता है।, सब चट कर जाते है। साल बीतने न बीतते अकाल पड़ जाता है।"[10]

विनोद बब्बर अपने यूरोप यात्रा-वृत्तांत में वहाँ की तेज़ी से बदलती सांस्कृतिक विरासत पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं। वे बताते हैं कि आधुनिकता और उपभोक्तावाद की तीव्र लहर ने पारंपरिक मूल्यों, स्थापत्य -स्मृतियों और सामाजिक संवेदनाओं को धीरे-धीरे क्षीण कर दिया है। उनके अनुसार, यूरोप की आत्मा मानी जाने वाली सांस्कृतिक परंपराएँ अब बाज़ार की भागदौड़ और नवीन जीवनशैलियों के दबाव में पीछे छूटती जा रही हैं, और यही क्षरण उन्हें सबसे अधिक व्यथित करता है।"यह वैश्विक अवधारणा है कि सौंदर्य का महत्त्व सदगुणों से अधिक नहीं हो सकता, इसलिए तो स्वयं यूरोप की एक कहावत के अनुसार, It is nice to be beautiful but it is most beautiful to be nice. (सुंदर होना अच्छा है, लेकिन अच्छा होना सबसे बड़ी सुंदरता है।)। आज उस समाज में जिस प्रकार की नई परम्पराएँ विकसित हो रही है, उससे उनके समाजशास्त्री बहुत चिंतित है। परिवारों का विखंडन, आत्मकेंद्रित होते दौर पर, नशे का बढ़ता प्रचलन,उन्मुक्तता, हथियारों का अन्धाधुंध इस्तेमाल और उससे भी अधिक खतरनाक उनकी युवा पीढ़ी का एशियायी युवकों के मुकाबले कम मेहनती होना जैसी अनेक समस्याएं इनकी शानदार विरासत को बरकरार रखने में बाधक बन रही है।"[11] यूरोपीय समाज में उभरती नई प्रवृत्तियाँ, परिवारों का विखंडन, आत्मकेंद्रित जीवन-शैली, उन्मुक्तता, नशे का प्रसार, और हथियारों के बढ़ते प्रयोग, केवल सामाजिक संकट नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक विघटन के संकेत भी हैं। जिस संस्कृति ने कभी सौंदर्य से अधिक सद्गुणों को मूल्य दिया, जहाँ भावना और संवेदना से ही सुंदरता मापी गई, वही संस्कृति आज गहरे संक्रमण से गुजर रही है। समाजशास्त्रियों की चिंता इसलिए बढ़ रही है क्योंकि यह परिवर्तन केवल बाहरी व्यवहार में नहीं, बल्कि मूल्यों, जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक आत्मा में हो रहा है। जब संस्कृति में सामूहिकता की जगह अतिशय व्यक्तिवाद ले लेता है, जब श्रम-संस्कृति कमजोर होने लगती है और युवा पीढ़ी उत्कृष्टता से दूर होती है, तब कोई भी सभ्यता अपनी स्थायी विरासत को संभाल नहीं पाती। अतः यह सामाजिक अवनति मूलतः सांस्कृतिक असंतुलन का दुष्परिणाम है, जो इस बात को रेखांकित करता है कि किसी भी समाज की निरंतरता उसके सद्गुणों, अनुशासन, श्रमशीलता और नैतिक मूल्यों पर ही टिकी होती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी यात्रा-वृत्तांतों में जिस सांस्कृतिक परिवर्तन, वैश्वीकरण और आधुनिक अनुभवों की चर्चा की गई है, उससे स्पष्ट होता है कि यह साहित्य अब केवल 'यात्रा का वर्णन' नहीं रह गया, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का रूप ले चुका है। वैश्विक गतिशीलता ने लेखक को बहु-स्तरीय दृष्टि दी है,वह विदेशों के बदलते मूल्य, परिवार-व्यवस्थाएँ, श्रम-संस्कृति, उपभोक्तावाद, उन्मुक्तता और सामाजिक संरचनाओं का निरीक्षण करता है, तो साथ ही भारत की अपनी सांस्कृतिक जड़ों, विविधता, स्मृति और परंपरा की तुलना भी करता चलता है। यही तुलना यात्रा-वृत्तांतों को अधिक जीवंत और अर्थपूर्ण बनाती है।

इन वर्णनों में एक ओर जहाँ जापान, चीन, रूस और यूरोप के समाजों की बदलती जीवन-शैलियों, पारिवारिक मूल्यों और आधुनिकता के प्रभाव का चित्रण मिलता है, वहीं दूसरी ओर भारतीय दृष्टि, जो स्मृति, संवेदनशीलता, विविधता-स्वीकार और सांस्कृतिक संवाद पर आधारित है—एक सशक्त वैचारिक आधार के रूप में उपस्थित रहती है। डिजिटल माध्यमों ने यात्री को 'तत्काल' अनुभव-साझा करने की सुविधा दी, जिससे संस्कृति अब स्थिर न रहकर एक प्रवहमान, साझी और निरंतर पुनर्परिभाषित होती इकाई बन गई है। इस प्रकार 21वीं सदी का हिंदी यात्रा -वृत्तांत संस्कृति के बदलते अर्थ, वैश्वीकरण के प्रभाव, मूल्य-सरणियों के रूपांतरण और मानव अनुभव के नए आयामों को समग्र रूप से समेटते हुए एक ऐसे साहित्यिक रूप में उभरता है, जो न केवल स्थानों की कथा कहता है, बल्कि मनुष्य और समाज के बदलते चेहरे को भी गहराई से समझने का अवसर प्रदान करता है। यह 21 वीं सदी का यात्रा साहित्य सिद्ध करता है कि आज का यात्री केवल दर्शक नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक दूत है, जो वैश्वीकरण के दौर में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को आधुनिक संदर्भों में पुनः परिभाषित कर रहा है।

*****

संदर्भ सूची –
1.यात्रा सोहित्य का महत्व,शशिशेखर तिवारी,हिंदी यात्रा साहित्य,लोक भारती प्रकाशन,पृष्ठ 11
2. घुमक्कड़ शास्त्र,राहुल सांकृत्यायन,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन 1949,पृष्ठ 84
3.एक सागर और,दिशा प्रकाशन, दामोदर खड़से,दिल्ली-2008,पृष्ठ 29
4.क्या हाल है चीन के , मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2006,पृष्ठ 103
5. जापान में कुछ दिन, कृष्णदत्त पालीवाल,किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली-2003, पृष्ठ 87
6.लो हम भी घूम आए, कर्मेंदु शिशिर,अनन्य प्रकाशन, दिल्ली-2013 पृष्ठ 94
7. लो हम भी घूम आए,कर्मेंदु शिशिर,अनन्य प्रकाशन, दिल्ली-2013,पृष्ठ 18
8.आंखों देखा पाकिस्तान, कमलेश्वर,राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2006,पृष्ठ 35, 37
9.कितना अकेला आकाश, नरेश मेहता,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली- 2003,पृष्ठ 46
10.वह भी कोई देस है महाराज, अनिल यादव,अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद-2012,पृष्ठ 47
11.इंद्रप्रस्थ से रोम,विनोद बब्बर,नवशिला प्रकाशन, नई दिल्ली-2013,पृष्ठ 76

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

'वापसी" कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श'

डॉ. श्रीमाया सी
सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
पय्यन्नूर कॉलेज पय्यन्नूर, केरला - 670327 Mob : 949495868174
Email : sreemaya2012@gmail.com

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसंबर 1930,कानपुर में हुआ। हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में उषा प्रियवंदा का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उषा प्रियंवदा प्रवासी हिंदी साहित्यकार हैं। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए तथा पी एच डी की पढ़ाई पूरी करने के बाद दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन किया । अंग्रेजी साहित्य के गहन अध्ययन के साथ हिंदी के प्रति सहज रुचि ने इनके चिंतन और अभिव्यक्ति को विशिष्ट धरातल प्रदान किया है ।

पचपन खंभे लाल दीवारें,रुकोगी नहीं राधिका और शेष यात्रा इनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ है । जब कि 'एक कोई दूसरा, कितना बड़ा झूठ,जिंदगी और गुलाब के फूल, मेरी प्रिय कहानियाँ, फिर बसंत आया औदि इनके कहानी- संग्रह हैं। इनकी कहानियाँ सभी अर्थ में जीवन्त है, बिल्कुल आज की है । आज के मन और आज के जीवन की है।

वृद्ध विमर्श को प्रतिपादित करनेवाली उषा प्रियंवदा की प्रमुख कहानी है 'वापसी'। प्रस्तुत कहानी में सेवानिवृत्त होने के बाद गजाधर बाबू बड़ी बेसब्री से घर लौटने, बीवी,बच्चों के साथ रहने की आकांक्षा करता है । पर घर वालों के व्यवहार से बुरी तरह आहत होता है । इस असहनीय व्यवहार का लेखिका ने मार्मिक चित्रण किया हैं ।

वृद्ध विमर्श एक महत्वपूर्ण सामाजिक और साहित्यिक अवधारणा है जो समाज में वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं, उनकी उपेक्षा, अकेलेपन, और अनुभवों के महत्व पर केंद्रित है । वृद्ध विमर्श साहित्य के माध्यम से वृद्धों की पीड़ा, आधुनिकता के टकराव और संयुक्त परिवार के विघटन के यथार्थ को सामने लाता है ताकि युवा पीढ़ी उनके जीवन के अनुभवों से सीख सके और समाज में उन्हें सम्मान और सह अस्तित्व मिल सके। यह वृद्धों के प्रति समाज के दृष्टिकोण उनके घटती सामाजिक भूमिका और उनसे जुड़े भावनात्मक और व्यावहारिक मुद्दों पर केंद्रित चर्चा है ।

'वापसी' उषा प्रियंवदा द्वारा लिखित एक मनोवैज्ञानिक सामाजिक और यथार्थवादी कहानी है । जो आधुनिकता के दौर में टूटते मध्यवर्गीय परिवार, पीढियों के टकराव और सेवानिवृत्ति के बाद एक व्यक्ति के अकेलेपन व उपेक्षा की त्रासदी को दर्शाती है, जहां गजाधर बाबू को अपने ही घर में परायापन महसूस होता है ।

'वापसी' कहानी के आरंभ में कहानी के मुख्य पात्र गजाधर बाबू और सहायक गनेशी दोनों मिलकर रेलवे क्वार्टर में वापसी की तैयारी करने का चित्रण उषा प्रियंवदाजी ने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश । पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे । इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर बिताया था । उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे । इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे । संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था । उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियां कर दी थी । दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे । गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे और उनके बच्चे और पत्नी शहर में , क्योंकि बच्चों की पढ़ाई में कोई बाधा न हो । शहर में रहने से उन्हें किसी प्रकार की कमी का बोध न होने पाए। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी थे ।

गजाधर बाबू एक रेलवे कर्मचारी थे, जो हमेशा अपने परिवार से दूर रहे । उन्होंने पूरे जीवन परिवार के लिए पैसे कमाए और सेवानिवृत्ति के बाद परिवार के साथ रहने और सम्मान पाने की उम्मीद की । उन्होंने सोचा कि अब जिंदगी के बचे दिन अपने परिजनों के साथ प्यार और आराम से बिताएंगे ।घर लौटने पर उन्हें पता चला है कि उनकी अनुपस्थिति में परिवार की व्यवस्था बदल गई है । उन्हें घर में एक अजनबी की तरह रखा जाता है । उनकी बातों में किसी को दिलचस्पी नहीं होती और वे अपने ही घर में अकेलापन महसूस करते हैं ।

'वापसी' कहानी के मुख्यपात्र है गजाधर बाबू, उनकी पत्नी, बसंती - गजाधर बाबू की बेटी है जो कॉलेज में पढ़ती है । अमर गजाधर बाबू का बेटा है । नरेंद्र गजाधर बाबू का छोटा बेटा है । गणेशी उनके पुराने सेवक का नाम है ।

गजाधर बाबू के प्रति अमर और उसकी बहू की शिकायत बहुत थीं । उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने - जाने वाला हो तो कहीं बैठाने की जगह नहीं । अमर को अब भी वह छोटा - सा समझते थे और मौके - बेमौके टोक देते थे । बहु को काम करना पड़ता था और सास जब तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थी । पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था, बहु को कोई रोक-टोक न थी, अमर के दोस्तों का प्राय: यहीं अड्डा जमा रहता था और अंदर से नाश्ता चाय तैयार होकर जाता रहता था । बसंती को भी वही अच्छा लगता था । बेटी और बहू घर का कोई काम नहीं करती और यदि उन्हें रसोई बनाने को कहा जाए तो वे जानबूझकर आवश्यकता से अधिक राशन खर्च कर देती है। इसलिए उनकी पत्नी ने रसोई की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है ।

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है । पत्नी की कोठरी में झांका तो अचार रजाइयों और कनस्टरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई । गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टांगने को दीवार पर नज़र दौड़ाई । फिर उसे मोडकर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर, एक किनारे टाँग दिया । कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई में लेट गए । कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढा ही था ।

गजाधर बाबू ने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे । यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है तो यहीं पड़े रहेंगे । अगर कहीं और डाल दी गई तो वहां चले जाएंगे । यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं तो अपने ही घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले । नरेंद्र मांगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपए दे दिए । बसंती काफी अंधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा-पर उन्हें सबसे बड़ा दुख यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया । वह मन - ही मन कितना भार ढो रहे हैं, इससे वह अनजान ही बनी रही । बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शान्ति ही थी । कभी-कभी कह भी

उठती, "ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए,बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढा रहे हैं, शादी कर देंगे। गजाधर बाबू ने अनुभव किया है कि वह पत्नी और बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त - मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी मांग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती है"। घर में अन्य काम करने केलिए एक नौकर को रखा था। गजाधर बाबू ने घर का खर्च कम कराने केलिए नौकर का हिसाब कर दिया। इस मामले में बच्चे माँ से शिकायत करते हैं - "घर में नौकर के अभाव में नरेंद्र को साइकिल पर गेहूं रखकर आटा पिसाने केलिए जाना पड़ेगा और बसंती को कॉलेज जाने के साथ लौटकर घर में झाड़ू भी लगाना पड़ेगा, ये सब उनके बस की बात नहीं है"। बडा बेटा अमर भुनभुनाया, "बूढ़े आदमी हैं, हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं"। पत्नी भी बच्चों के साथ चर्चा में भाग ली। ये सब बातें अंदर कमरे में बैठकर गजाधर बाबू सुन रहे थे। कुछ देर बाद पत्नी को बुलाकर गजाधर बाबू ने कहा " मुझे सेठ रामजीमल की चीनी - मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है"। गजाधर बाबू पत्नी से अपने साथ चलने की बात कहने पर उसने इंकार कर दिया।

परिवार के सब लोगों ने बड़ी तात्परता के साथ रिक्षा बुलाकर सामान बांधकर उनको विदा कर दिया। उनके जाते ही वे सब लोग अपने -अपने काम में तल्लीन हो गये। अन्त में पत्नी पुत्र से गजाधर बाबू की चारपाई कमरे से निकाल देने के लिए भी कहती है। कमरे में चलने तक की जगह नहीं हैं। इससे व्यक्त होता है कि बूढ़े पिताजी और उनके सामान के लिए भी अपने घर में कोई स्थान नहीं।

"वापसी" कहानी के शीर्षक की सार्थकता गहरी है क्योंकि यह सिर्फ गजाधर बाबू के घर लौटने (सेवानिवृत्ति के बाद) को नहीं बल्कि आधुनिकता के दौर में परिवार से कटे, उपेक्षित महसूस करने वाली व्यक्ति की भावनात्मक (वापसी नौकरी पर) और फिर जीवन की जड़ों, अपनत्व की तलाश को दर्शाती हैं जो परंपरा और आधुनिकता के टकराव, पारिवारिक रिश्तों की कटु सच्चाई और अकेलेपन की विडंबना को उजागर करती है।

संक्षेप में मेरा विचार यह है कि उषाप्रियंवदा जी की कहानी यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व करती है। वृद्धजीवन यथार्थ का खुला हुआ प्रस्तुतीकरण है, "वापसी" कहानी। गजाधर बाबू के द्वारा आदमी के अकेलेपन को, समय के साथ एक पीढ़ी की बदली हुई मानसिकता को सामाजिक परिवर्तनों के साथ आदमी के बदलते सम्बन्धों को सच्चाई से अभिव्यक्ति दी गयी है। गजाधर बाबू का अकेलापन आधुनिक जीवन के बीच उभरता हुआ विवशता का अकेलापन है।उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गयी। अन्त में वह परिवार छोड़कर चला जाता है।

अंततः गजाधर बाबू वापस उसी एकाकी जीवन में लौट जाते हैं, जिससे परंपरा और आधुनिकता के टकराव व पीढियों के बीच की दूरी का मार्मिक चित्रण होता है। कहानी आज की पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच के संघर्ष को दर्शाती है। परिवार से मिली इस उपेक्षा और अकेलेपन से दुःखी होकर,गजाधर बाबू यह महसूस करते हैं कि उन्हें अपने ही घर में कोई जगह नहीं मिली। वे फिर से भी नौकरी करने का फैसला करते हैं और उसी छोटे स्टेशन पर लौट जाते हैं, जहां से वे रिटायर हुए थे, क्योंकि घर में रहकर वे और अकेले हो जाते हैं। कहानी का शीर्षक "वापसी" सार्थक और बहुत प्रासंगिक भी है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. वापसी - मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा
2. यथार्थवाद - शिवकुमार मिश्र
3. समकालीन कहानी की पहचान - डॉ. नरेंद्र मोहन

गुलज़ार के गीत 'कल्लू-मामा' में मनोवैज्ञानिक चेतना

अंकुर नाविक
मानसेवी शिक्षक, हिंदी विभाग, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल(म.प्र.)

गुलज़ार बहुआयामी प्रतिभा के साथ अनेकों विधाओं- काव्य, गीत, पटकथा लेखन, फिल्म-निर्देशन आदि में सृजन करने वाले उल्लेखनीय रचनाकार हैं। साथ ही उर्द-हिंदी की बहुभाषिकता को साधने वाले गुलज़ार उर्फ़ सम्पूरन सिंह कालरा की चारित्रिक विविधता उन्हें बहुविषयी रचनाकार के रूप में सशक्त करती है। समूचे रचनात्मक वांग्मय की विविधता मानव मस्तिष्क के विविध पहलुओं व जटिल समस्याओं का ही प्रतिबिम्ब होती हैं। गुलज़ार की विविधता भी उनके जीवनानुभवों की प्रतिध्वनि-सी प्रतीत होती है। विशेषकर फिल्म गीत विधा, जिसमें सिनेमा के पात्र के मस्तिष्क में उतरकर, उससे एकाकार करते हुए गीत को धुन में पिरोया जाता है, गुलज़ार सशक्त व सहज रूप में उभरते हैं। उनके गीतों में जहाँ एक ओर उर्द के सलीके में बहती मद्धिम धारा है, तो दूसरी ओर भोजपुरी व मुंबईया भाषा के झरने परिस्थितियोंवश पटकथा व पात्रों की मनःस्थितियों के कारण स्वतः स्फूर्त होकर बह निकलते हैं।जैसे-'बीड़ी जलई ले' में उत्तर भारतीय ग्रामीण पात्रों की सिनेमाई परिस्थितियों व मानसिक उद्वेगों की अभिव्यक्ति हो, अथवा 'लकड़ी की काठी' में बाल-मन का भोलापन। प्रत्येक गीत में गुलज़ार निष्पक्ष व सहज होकर उपयुक्त शब्दों का सृजन करते हैं।

ऐसा ही 'सत्या' फिल्म का प्रसिद्ध गीत है- 'कल्लू मामा'। अपराध जगत में लिप्त पात्रों की मनःस्थिति, मस्ती एवं उच्छृंखलताओं के क्षणों को मुंबईया बोली में अभिव्यक्त करने वाला यह गीत तत्समय ही नहीं, अपितु हिंदी सिने जगत के समस्त गीतों के बीच भी अल्हदा ध्वनित होता है। यही कारण है कि यह गीत वर्तमान में 'कल्ट' की श्रेणी में रखा जाता है। किंतु इस गीत की अल्हदा ध्वनि व शब्दों का विश्लेषण करें, तो पाते हैं कि यह गीत बहुत सहज रूप में एवं अत्यंत प्रचलित शब्दों के साथ आधुनिक समय की मनोवैज्ञानिक पड़ताल करता है। इस गीत का हर शब्द स्वयं के मनोभावों, संवेदनाओं को दरकिनार कर, किए गये तमाम दुनियावी समझौतों से मुक्ति की बात करता है। अतः इस सामान्य से ध्वनित होने वाले गीत के विस्तृत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता उत्पन्न होती है। चूंकि गीत पहले से ही प्रसिद्ध है, 'कल्ट' श्रेणी में है अर्थात् वर्तमान जनमानस से जुड़ा हुआ है, इसलिये गीत की मनोवैज्ञानिक पड़ताल अप्रत्यक्ष रूप में वर्तमान जनमानस के स्वरुप को ही प्रतिबिम्बित करेगी, जो आगामी रचनाकारों व मानव-जीवन को और अधिक संवेदनशील व बहु-संवेदनाओं से युक्त बनाने में सहायक होगा।

'कल्लू-मामा' गीत में दो शब्द या कहें पात्रनुमा बिम्ब हैं, जो प्रतीक बनकर बार-बार श्रोता के कर्ण में गूँजते हैं- 'कल्लू मामा' और 'भेजा'। यहाँ 'कल्लू-मामा'- आधुनिक मानव का प्रतीक है और मस्तिष्क का देशज शब्द 'भेजा' कभी 'संवेदनशील बुद्धि' का प्रतीक बनकर उभरता है, तो कभी 'संवेदनहीन बुद्धि' का।

फिल्म 'सत्या' आपराधिक पृष्ठभूमि के वास्तविक जीवन में सक्रिय पात्रों की संवेदनाओं को निष्पक्ष होकर प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। यदि 'कल्लू मामा' गीत भी सुनें तो, इसमें गीतकार ने अपराध जगत में सक्रिय मानव की संवेदनाओं को केंद्र में रखकर उसकी वास्तविक मनःस्थिति की ही अभिव्यक्ति सटीक शब्दों में की है, जिसमें 'भेजा' अर्थात् मस्तिष्क 'संवेदनशील बुद्धि' या 'हृदय' तत्व के रूप में चित्रित किया गया है।

"गोली मार भेजे में,
भेजा शोर करता है।
भेजे की सुनेगा तो,
मरेगा कल्लू.....।"

यदि अपराधी अपने 'भेजे' रूपी संवेदनशील मस्तिष्क या मनोवेगों की निष्ठुरता से अनदेखी नहीं करेगा, तो अपराध कर अपने व अपने परिवार के जीवनयापन हेतु संसाधन जुटाने में पूर्णतः अक्षम हो जायेगा। इसलिये गीत में बार-बार स्वयं रूपी 'कल्लू मामा' से संवेदनाओं को गोली मारकर ख़त्म करने का आग्रह किया जा रहा है। विभिन्न अपराधों को अंजाम देने के लिए संवेदनाओं को सुप्तावस्था में रखने का सुझाव दिया जा रहा है-

"सोच-वोच छोड़,
भेजा काहे को खरोंचना।
अपना काम माल हाथ आए,
तो दबोचना.....।"

अपराध की मानसिकता किन परिस्थितियों में जन्म लेती है, इसका भी सटीक चित्रण गीत के शब्दों में मिलता है-

"दिन में खोली, रात तीन बत्ती पे गुज़ार दी,
थोड़ी चढ़ गई तो तीन पत्ती में उतार दी।"

हथियार हाथ में लेकर जब व्यक्ति का तुच्छ अहम् उसकी मानसिकता पर हावी हो जाता है, तब अपराध छोड़कर कोई भी सामान्य नौकरी करने के ख्याल पर अपराधी का मन उससे यही कहता होगा-

"छोकरों की नौकरी करेगा कल्लू...।"

आपराधिक मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति में जहाँ 'भेजा' शब्द 'संवेदनशील बुद्धि' का प्रतीक बनता है, वहीं आधुनिक व समकालीन मानव के मनोभावों की अभिव्यक्ति में वही 'भेजा' शब्द 'संवेदनहीन बुद्धि' का प्रतीक बन जाता है। समूचे गीत में 'कल्लू मामा' अर्थात् मानव को संवेदनहीन बुद्धि 'भेजे' को नकारते हुए, संवेदनशील बनकर जीवन को उन्मुक्त व स्वतंत्र सोच के साथ जीने का आग्रह परिलक्षित होता है। अतिबौद्धिकता, स्वार्थ-लिप्सा एवं विलासी जीवन का आकर्षण तत्समय परम अनिवार्य लग सकता है, किंतु कालांतर में मनुष्य को जीवन के वास्तविक आनंद का संज्ञान होने पर यही ज्ञात होता है कि निस्वार्थ सम्बन्धों की स्थापना व निर्वाह एवं उन्मुक्त तनाव रहित होने में ही जीवन की सार्थकता है।

"भेजे की सुनेगा तो मरेगा कल्लू।"
"खोपड़ी की झोपड़ी में फटका दे।"
एवं
"येड़े वो मरेगा जो डरेगा कल्लू...।"

जैसी पंक्तियाँ मानव मन के अत्यधिक तनाव, बौद्धिकता व उससे मुक्ति के भाव को ही पुनः पुनः अभिव्यक्त करने का प्रयास करतीं है, या कह सकते हैं एक सफल व सार्थक प्रयत्न करतीं हैं।

आधुनिकता का अनिवार्य भाग प्रतिस्पर्द्धा है, किंतु प्रतिस्पर्द्धा की जय और पराजय, दोनों ही जीवन के अनिवार्य अंग है। जीतने के उत्सव में अहंकार,अतिबौद्धिकता का नकार एवं हारने का तनाव भी अधिक न लेकर 'भेजे' अर्थात् 'बुद्धि' द्वारा उसका स्वीकार्य, इस गीत का दार्शनिक सार है। जिसकी इतनी सरल-सहज व अनूठी अभिव्यक्ति गुलज़ार के अतिरिक्त किसी भी अन्य रचनाकार हेतु असंभव प्रतीत होती है।

"अक्का-अक्का जो भी फटका झटका दे,
लटका-लटका डाल मटका और सटका दे।"
एवं
"आड़-फाड़-मार-छाड़ कटका दे कटका दे।"

जैसी पंक्तियों में आधुनिक मानव मन की उहापोह, मानसिक संघर्ष, तनाव, कुंठा के साथ मुक्ति का आग्रह मात्र ध्वन्यात्मक शब्दों में अभिव्यक्त करने का हुनर केवल गुलज़ार की अनूठी कलम में ही समावेशित दिखाई देता है।

आज का समाज जिस प्रकार आधुनिक होने का दिखावा करता हुआ विलासी जीवन के उपभोग हेतु लालायित दिखाई देता है, वहीं अपनी रूढ़ियों व अंधविश्वास से मुक्त होने का साहस करने में भी अक्षम सिद्ध होता है। अतः समाज का मानव सदैव अपने आप में मानसिक खींच-तान से जूझता रहता है। जिसके परिणामस्वरुप वह कुंठा ग्रसित है, मानसिक ग्रंथियों में जकड़ा हुआ है। 'कल्लू मामा' उसी बौद्धिक खींच-तान से बाहर आने हेतु प्रेरित करने वाला गीत है।

अपराध और अपराधी प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप में समाज की ही उपज है। अतः आपराधिक मानसिकता को समझने का प्रयास करना एक तरह से समाज के हाशिये की पड़ताल करने के समान है, जिसके बिना राष्ट्र व संसार नामक पुस्तक का हरएक पृष्ठ अधूरा है। यह गीत इसी दुरूह किंतु आवश्यक कार्य को अपराधी की भाषा में ही अनूठे अंदाज़ में अभिव्यक्त कर जाता है।

शोधात्मक दृष्टि से 'कल्लू मामा' और 'भेजा' की यह पड़ताल विश्लेषण द्वारा उपयुक्त निष्कर्षों व परिणामों को प्राप्त करती है। जो एक ओर तो इस गीत की प्रासंगिकता में वृद्धि करेगा, दूसरी ओर सिने गीतों की ओर गंभीर व आलोचनात्मक दृष्टिकोण को भी विकसित कर सकेगा। सिनेमा के गीतों की लोकप्रियता इस प्रकार के शोधों व आलोचनाओं के उपयोगी निष्कर्षों का पर्याप्त प्रसार भी करेगी एवं समाज के बौद्धिक वर्ग से उठकर गीतों की वास्तविक संवेदनाएँ आम मानव तक पहुँचकर बहुआयमी सिद्ध होंगी।

****

सन्दर्भ-

1. https://m.hindilyrics4u.com/song/goli_maar_bheje_men_maamaa.htm
2. सिंह रश्मि, सिंह राजेंद्र, शोध-आलेख: गुलज़ार : हिंदी सिने गीतों में स्त्री मन, ap-nimaati.com
3. गुलज़ार, गुलज़ार के गीत, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष- 2024, आईएसबीएन-978-9348157898
4. https://www.tring.co.in/popular-movies/satya
5. फ्रायड, मनोविश्लेषणवाद, यशपाल प्रकाशन, 2013 वां संस्करण, आईएसबीएन- 978-8170289968
6. तिवारी डॉ. राजेश कुमार, अपराध मनोविज्ञान : एक परिचय, कुमुद प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष- 2024, आईएसबीएन-978-819742444

(संपर्क-
मो.- 8602275446
ई-मेल- ankurnavik5@gmail.com)

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

हिन्दी की सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट : कारण, परिणाम और समाधान

भुवनेश बैरागी
हिन्दी विभाग, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल (म.प्र.)

सारांश-यह शोध-पत्र भारतीय समाज में हिंदी के प्रति व्याप्त तिरस्कार-भाव, उसके ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कारणों और समकालीन सामाजिक परिणामों की समीक्षात्मक पड़ताल प्रस्तुत करता है। हिंदी भारत की सांस्कृतिक चेतना, दार्शनिक विरासत और सामाजिक संरचना में एक केन्द्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है; तथापि आधुनिक समय में इसके प्रति तिरस्कार भाव, उपेक्षा और हीनता-बोध के रूप में विकसित मानसिकता एक गंभीर भाषिक-सांस्कृतिक संकट का निर्माण कर रही है। इस शोध में भाषा-नीति, शिक्षा-प्रणाली, औपनिवेशिक प्रभाव, शहरी अभिजात मानसिकता और वैश्विक पूँजीवादी संस्कृति को प्रमुख कारणों के रूप में स्थापित किया गया है। साथ ही तिरस्कार-भाव के सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक और भाषिक परिणामों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। अंततः शोध-पत्र समाधान की दिशा में भाषा-सम्मान, शिक्षा-सुधार, सांस्कृतिक पुनर्जीवन और समाज-आधारित भाषिक सशक्तिकरण की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह शोध भारतीय भाषिक विमर्श में हिंदी की अस्मिता एवं भाषिक-समानता के पुनर्स्थापन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण चिंतन प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द -हिंदी-अवमानना, भाषा-तिरस्कार, सांस्कृतिक पहचान, औपनिवेशिक प्रभाव, सामाजिक संरचना, मातृभाषा-सम्मान,पूँजीवाद

परिचय-भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि मनुष्य की स्मृति, संस्कृति, ज्ञानपरंपरा, सामूहिक चेतना और सभ्यता का आधार है। किसी भी राष्ट्र की भाषा उसके भीतर बसे समाज की आत्मा होती है। हिंदी, भारत की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा होने के बावजूद, अपने ही देश में तिरस्कार और अवमानना का सामना करती रही है। अंग्रेज़ी को आधुनिकता का प्रतीक और हिंदी को पिछड़ेपन का संकेत मान लेने की मानसिकता ने एक गहरे सांस्कृतिक विच्छेदन को जन्म दिया है। हिंदी के प्रति यह तिरस्कार वस्तुतः भाषा का नहीं, बल्कि मानसिक दासता का परिणाम है। यह समस्या केवल भाषिक नहीं, बल्कि दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर गहराई से जड़ें जमाए हुए है। यह शोध-पत्र इन्हीं कारणों, परिणामों और समाधानों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शोध की समस्या-हिंदी बोलने वालों में स्वभाषा के प्रति लज्जा, हीनता-बोध और तिरस्कार की भावना क्यों विकसित हो रही है, और इसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिणाम क्या हैं?

शोध उद्देश्य

1.हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों की पहचान करना।

2. इस तिरस्कार-भाव के सांस्कृतिक और शैक्षिक परिणामों का विश्लेषण करना।

3. हिंदी-सम्मान और भाषिक पुनर्निर्माण के प्रभावी उपाय प्रस्तावित करना।

4. भाषिक असमानता और सांस्कृतिक आत्महीनता की समस्या को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में समझना

शोध-पद्धति

यह शोध गुणात्मक,विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है।उपलब्ध शोध-लेखों, पुस्तकों, सरकारी भाषा-नीति दस्तावेज़ों, सामाजिक अध्ययन और भाषिक-सांस्कृतिक विमर्शों की समीक्षात्मक व्याख्या की गई है। ऐतिहासिक औपनिवेशिक प्रभावों और आधुनिक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। समाधान हेतु भाषा-नीति, समाजशास्त्र, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक अध्ययन के सिद्धांतों का अंतर-विषयक उपयोग किया गया है।

चर्चा एवं विश्लेषण

1. हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव के कारण

(1) औपनिवेशिक मानसिकता का रिसता हुआ प्रभाव

अंग्रेज़ी को 'शासक वर्ग की भाषा' और हिंदी को 'ग़ुलाम जनता की बोली' मानने का भ्रम अभी तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। शिक्षा, न्याय, प्रशासन और उच्च रोजगार अंग्रेज़ी-आधारित होने से अंग्रेज़ी को प्रतिष्ठा और हिंदी को उपेक्षा मिली।

(2) शहरी उच्चवर्गीय अभिजात संस्कृति

नगरों में अंग्रेज़ी बोलना आधुनिकता, बुद्धिमत्ता और उच्च सामाजिक स्थिति का प्रतीक बना दिया गया। हिंदी बोलने वाला व्यक्ति 'अकुशल' या 'कम-शिक्षित' मान लेने की प्रवृत्ति स्थाई होती गई।

(3) शिक्षा-प्रणाली का दोष

विद्यालयों में अंग्रेज़ी माध्यम को श्रेष्ठ मानकर हिंदी माध्यम को निम्न वर्ग से जोड़ दिया गया। भाषा के आधार पर समाज का विभाजन "अंग्रेज़ी जानने वाले सफल, हिंदी जानने वाले पिछड़े" एक खतरनाक सामाजिक संरचना बना गया।

(4) भाषा-आधारित नौकरी-संस्कृति

देश की उच्च नौकरियों, निजी कंपनियों और तकनीकी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी को अनिवार्य कर देने से हिंदी को कार्य-स्थल की भाषा बनने का अवसर नहीं मिला।

(5) समाज में फैली भाषिक हीनता

बहुत से परिवारों में हिंदी बोलने का मज़ाक बनाया जाता है।
"हिंदी में बोलकर क्या मिलेगा?"
"अंग्रेज़ी में बोलो वरना बेइज़्ज़ती हो जाएगी।"
यह मानसिक दासता हिंदी के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

(6) मीडिया और मनोरंजन उद्योग का प्रभाव

फ़िल्मों, विज्ञापनों और टीवी में अंग्रेज़ी मिश्रित हिंदी को 'कूल' और शुद्ध हिंदी को 'अजीब' बनाकर प्रस्तुत किया गया। इससे युवा पीढ़ी में हिंदी से दूरी बनने लगी।

2. हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव के परिणाम

(1) भाषिक आत्महीनता का प्रसार

हिंदी भाषियों में स्वयं की भाषा बोलने पर संकोच, शर्म और असुरक्षा गहराई है। यह आत्महीनता सांस्कृतिक व्यक्तित्व को कमजोर करती है।

(2) ज्ञान-विकास में बाधा

जब विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में सोचने की बजाय विदेशी भाषा में सोचने का दबाव महसूस करते हैं, तो उनका ज्ञान-स्तर सतही रह जाता है।

(3) सामाजिक विभाजन

भाषा के आधार पर नव-जातीयता उत्पन्न हुई
"अंग्रेज़ी वाले उच्च वर्ग"
"हिंदी वाले निम्न वर्ग"
यह विषमता सामाजिक एकता को तोड़ती है।

(4) सांस्कृतिक परंपरा से दूरी

हिंदी से दूरी का अर्थ

भारतीय ज्ञान परंपरा,साहित्य दर्शन,सांस्कृतिक चेतना से दूरी है। परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी अपनी जड़ों से कटती जा रही है।

(5) आर्थिक अवसरों में असमानता

हिंदी भाषी विद्यार्थी अंग्रेज़ी-कुशल विद्यार्थियों के सामने नौकरी की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते हैं। इससे भाषिक-आधारित आर्थिक असमानता बढ़ती है।

03.संविधान द्वारा हिंदी को दिए गए स्थान का प्रभावी क्रियान्वयन न होना

भारतीय संविधान निर्माण के समय हिंदी को राष्ट्र की राजभाषा के रूप में स्थापित करने के प्रश्न पर संविधान सभा में व्यापक बहस हुई। बहुमत ने हिंदी को राजभाषा तथा देवनागरी लिपि को आधिकारिक लिपि के रूप में स्वीकार किया। परिणामस्वरूप अनुच्छेद 343 से 351 तक हिंदी के संवर्धन और क्रमबद्ध विस्तार के लिए स्पष्ट व्यवस्था की गई। उद्देश्य यह था कि 15 वर्षों की अंतरिम अवधि के बाद हिंदी प्रशासन, न्यायपालिका, शिक्षा तथा शासन के सभी स्तरों पर प्रमुख भाषा के रूप में स्थापित हो जाए।

परंतु संविधान की यह मंशा व्यावहारिक धरातल पर साकार नहीं हो सकी। इसके पीछे कई ऐतिहासिक और सामाजिक कारण विद्यमान रहे।

1. अंग्रेज़ी शिक्षित अभिजात्य वर्ग का हित-संघर्ष

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय शासन और प्रशासन पर वही वर्ग प्रभावी था जो अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षित था। यह वर्ग अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से प्राप्त शक्ति, प्रतिष्ठा और नौकरशाही नियंत्रण को छोड़ना नहीं चाहता था।

इस वर्ग को आशंका थी कि हिंदी के पूर्ण रूप से लागू होने पर उनकी भाषाई प्रधानता समाप्त हो जाएगी।

अंग्रेज़ी संरचना को बनाए रखना उनके सामाजिक श्रेष्ठत्व और प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से लाभकारी था।

इसलिए संविधान में हिंदी के पक्ष में लिए गए निर्णयों के बावजूद अभिजात्य वर्ग ने कई नीतियों में ऐसी स्थितियाँ निर्मित कीं, जिससे अंग्रेज़ी का वर्चस्व बना रहे और हिंदी का विस्तार धीमा पड़ जाए।

2. 'सत्तात्मक भाषा-वर्ग' का निर्माण-स्वतंत्रता के बाद अंग्रेज़ी केवल एक भाषा नहीं रही, बल्कि एक "सत्तात्मक संरचना" बन गई

नौकरियों में चयन

उच्च प्रशासनिक पदों पर पहुँच

न्यायिक प्रणाली

उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा

इन सभी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी को संरचनात्मक रूप से स्थापित किया गया। इससे हिंदी भाषी जनसमूह एक प्रकार से अवरोधित वर्ग में बदल गया, जिसे अपनी ही मातृभाषा के बहुआयामी उपयोग हेतु अधिकार नहीं थे।

3. संविधान सभा की शर्तों का पालन न होना-संविधान में स्पष्ट था कि 1965 के बाद हिंदी प्रशासनिक भाषा बनेगी। किन्तु

1963 का लाया गया प्रस्ताव जिसमें अंग्रेज़ी को "जब तक आवश्यक हो" उपयोग में रखने की व्यवस्था कर दी गई।

यह वाक्यांश इतना व्यापक था कि अंग्रेज़ी को अनिश्चितकाल तक संरक्षित करने का मार्ग खुल गया।

इस प्रकार संवैधानिक उद्देश्य और वास्तविक नीति के बीच एक स्पष्ट अंतराल उत्पन्न हुआ।

4. हिंदी विरोध की राजनीतिक परिस्थितियाँ

कुछ प्रदेशों, विशेषकर दक्षिण भारत में, राजनीतिक दलों ने हिंदी विरोध को पहचान-राजनीति का रूप दिया। अभिजात्य वर्ग भी इस बहाने को उपयोग करता रहा ताकि अंग्रेज़ी को यथावत बनाए रखा जा सके।हिंदी को लेकर उत्पन्न विरोध वास्तव में अंग्रेज़ी के प्रति अनुराग नहीं था, बल्कि स्थानीय राजनीति और शक्ति-संतुलन का भाग था।इस विरोध ने केंद्र सरकारों को हिंदी को पूर्ण रूप से लागू करने में शिथिल कर दिया।

5. परिणाम: करोड़ों हिंदी भाषियों का संरचनात्मक वंचनसंविधान द्वारा लिए गए सकारात्मक निर्णयों के लागू न होने का सीधा परिणाम भाषा-आधारित असमानता के रूप में सामने आया।हिंदी भाषी युवाओं को नौकरियों में अंग्रेज़ी दक्षता के नाम पर बाधाओं का सामना करना पड़ा।प्रशासनिक प्रक्रियाएँ अंग्रेज़ी-केंद्रितहोने से सामान्य नागरिक सरकार से दूरी महसूस करता रहा।न्यायपालिका में अंग्रेज़ी की अनिवार्यता जनता को न्याय से दूर ले गई।सामाजिक स्तर पर हिंदी भाषी समुदाय में हीनता-बोध और भाषा-आश्रित निर्भरता उत्पन्न हुई।इस प्रकार, संविधान की स्पष्ट मंशा के बावजूद, हिंदी भाषा आज भी वही स्थान प्राप्त नहीं कर सकी जिसकी परिकल्पना संविधान निर्माताओं ने की थी। अभिजात्य वर्ग की भाषिक राजनीति, नीतिगत शिथिलता और अंग्रेज़ी सत्ता-ढांचे ने हिंदी की प्रगति को बाधित किया—और इसका सबसे बड़ा भार उन करोड़ों हिंदी भाषियों को उठाना पड़ा जिनके लिए हिंदी केवल भाषा नहीं, बल्कि पहचान, संस्कृति और जीवन की भाषा है।

4. समाधान

(1) शिक्षा-प्रणाली में मातृभाषा आधारित मॉडल-नई शिक्षा नीति (NEP-2020) के अनुसारप्राथमिक से उच्च शिक्षा तक हिंदी-केन्द्रित शिक्षा मॉडल विकसित होना चाहिए।मातृभाषा में पढ़ाई, शोध, तकनीकी और वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(2) हिंदी के प्रति सम्मान-भाव का सामाजिक निर्माण-परिवार, विद्यालय और समाज तीनों स्तरों पर यह संदेश प्रसारित करना होगा कि"अपनी भाषा बोलना कमज़ोरी नहीं, पहचान है।"

(3) प्रशासन और न्याय में हिंदी का विस्तार-सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थानों में हिंदी को कार्य-भाषा बनाना हिंदी-सम्मान की अनिवार्य शर्त है।

(4) वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का विकास-हिंदी में विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा और तकनीक की शब्दावली का व्यापक विकास आवश्यक है, ताकि ज्ञान-विज्ञान का पूरा संसार हिंदी में उपलब्ध हो सके।

(5) मीडिया व डिजिटल स्पेस में हिंदी की प्रतिष्ठा-हिंदी में उच्च-गुणवत्ता वाले साहित्यिक, बौद्धिक और वैज्ञानिक कंटेंट का निर्माणशुद्ध हिंदी को प्रतिष्ठा देने वाली मीडिया नीतियाँयुवा पीढ़ी को भाषा से जोड़ने में निर्णायक साबित होंगी।

(6) भाषिक-समानता की नैतिक चेतना-समाज में यह चेतना विकसित करनी होगी कि"भाषा किसी की श्रेष्ठता या निकृष्टता निर्धारित नहीं करती।किसी भाषा को नीचा दिखाना मानव गरिमा के विरुद्ध है।"

(7) हिंदी भाषा के असीम रोजगार अवसरों से युवा पीढ़ी को परिचित कराना-हिंदी आज केवल एक भाषा नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर उभरती हुई शक्ति है। भारत में शिक्षा, बैंकिंग, प्रशासन, साहित्य, फिल्म, लेखन, पत्रकारिता, प्रकाशन, रेडियो, टीवी, डिजिटल मीडिया, विज्ञापन, अनुवाद, पर्यटन, सांस्कृतिक संस्थान, सोशल मीडिया प्रबंधन जैसे अनगिनत क्षेत्रों में हिंदी विशेषज्ञों की मांग लगातार बढ़ रही है। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन के विशाल अवसर हैं, वहीं बैंक, न्यायालय, सरकारी विभाग, निजी कंपनियाँ और मल्टीनेशनल संस्थान भी हिंदी में फाइलिंग, नोटिंग-ड्राफ्टिंग, कंटेंट राइटिंग और कॉर्पोरेट कम्युनिकेशन के लिए बड़े पैमाने पर नौकरियाँ प्रदान कर रहे हैं। फिल्म उद्योग, OTT, रेडियो, पटकथा-लेखन, गीत-लेखन, उपन्यास, ब्लॉगिंग, यूट्यूब और पॉडकास्ट जैसे नए मीडिया प्लेटफ़ॉर्म भी युवाओं के लिए कमाई के आकर्षक अवसर खोल रहे हैं।

विदेशों में भी हिंदी के रोजगार क्षेत्र लगातार विस्तृत हो रहे हैं। अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, खाड़ी देशों और एशियाई देशों में हिंदी शिक्षक, अनुवादक, इंटरप्रेटर, अंतरराष्ट्रीय मीडिया संवाददाता, संस्कृति-प्रचार विशेषज्ञ, पर्यटन-मार्गदर्शक, आईटी व कंटेंट इंडस्ट्री के हिंदी लेखक तथा भारतीय दूतावासों में भाषा-विशेषज्ञ के रूप में उल्लेखनीय अवसर उपलब्ध हैं। वैश्विक कंपनियों में ग्राहक-सेवा, लोकलाइजेशन, गेमिंग, AI ट्रेनिंग, कंटेंट मॉडरेशन और डेटा एनोटेशन जैसे क्षेत्रों में हिंदी भाषा का रोजगार तेजी से बढ़ा है। डिजिटल क्रांति ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिंदी जानने वाला युवा न केवल भारत में, बल्कि पूरी दुनिया में अपने कौशल से नई ऊँचाइयों को छू सकता है

दार्शनिक विमर्श

भाषा मनुष्य की आंतरिक चेतना का विस्तार है।स्वामी विवेकानंद कहते हैं"जिस राष्ट्र को अपनी भाषा पर गर्व नहीं, वह राष्ट्र लंबे समय तक टिक नहीं सकता।"गांधीजी ने हिंदी को जन-चेतना की भाषा कहा था, तो रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसे राष्ट्र की आत्मा बताया। हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव वस्तुतः भाषा का नहीं, बल्कि स्व के विरुद्ध तिरस्कार का रूप है। यह मनुष्य को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से काटकर उसे मानसिक रूप से पराधीन बनाता है। भाषा-सम्मान केवल भाषिक प्रश्न नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान का दार्शनिक प्रश्न है।हिन्दी सम्मान का अर्थअपनी पहचान, अपने ज्ञान, अपने अस्तित्व और अपनी सभ्यता का सम्मान।

निष्कर्ष-हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव भारतीय समाज में गहरी ऐतिहासिक और मानसिक जड़ें रखता है।औपनिवेशिक प्रभाव, शिक्षा-प्रणाली, शहरी अभिजात मानसिकता, मीडिया और सामाजिक हीनता इसकी प्रमुख वजहें हैं।इसके परिणाम सामाजिक विभाजन, सांस्कृतिक विछेदन, ज्ञान-अवरोध और आर्थिक असमानता के रूप में सामने आए हैं। समाधान के रूप में हिंदी आधारित शिक्षा-प्रणाली, सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक पुनर्चेतना, प्रशासनिक विस्तार और वैज्ञानिक सामग्री का विकास अत्यंत आवश्यक है।भाषा-हीनता से बाहर निकलकर हिंदी को आत्मविश्वास, गौरव और समृद्धि की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है।

हिंदी का सम्मान एक भाषा का नहीं पूरे भारतीय समाज की सामूहिक आत्मा का सम्मान है।

****

संदर्भ : -

Chandrabarti, A. (2015). Colonialism and Indian languages. New Delhi: Sage Publications.
Dalmia, V. (2017). The Nationalization of Hindu Traditions. University of California Press.
Kumar, K. (2012). Education and Modernity in India. Oxford University Press.
Nehru, J. (2012). The Discovery of India. Penguin Books.
Nussbaum, M. (2011). Creating capabilities: The human development approach. Harvard University Press.
Pollock, S. (2006). The Language of the Gods in the World of Men. University of California Press.
Rai, A. (2000). Hindi Nationalism. Orient Blackswan.
Sharma, B. (2018). Language, identity and culture in Indian society. Journal of Indian Culture Studies, 14(2), 45–57.
Singh, R. (2015). Sociolinguistics of Hindi. Routledge.
Vivekananda, S. (2019). Complete works of Swami Vivekananda. Advaita Ashrama.
Das, K. (1968). The English-Language Elite in India.
Kachru, B. (2006). The English Language in South Asia.
King, R. D. (1997). Nehru and the Language Politics of India.
Nehru, J. (1949). Constituent Assembly Debates on Language Policy.
Rai, A. (2000). Hindi Nationalism.

दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य का अनुशीलन

डॉ. कृष्ण बिहारी राय
निर्देशक
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर (स्वशासी)
महाविद्यालय, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.)
ई-मेल kroy20321@gmail.comमो. 9301238696

संजीव कुमार वर्मा
शोधार्थी
एमफिल. नेट, JRF (हिन्दी)
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

सारांश (Abstract)-

भारतीय साहित्य में दलित साहित्य ने सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह साहित्य शोषित वर्ग के जीवन, संघर्ष और विद्रोह का दर्पण है। ओमप्रकाश वाल्मीकि (1950–2013) हिंदी दलित साहित्य के अग्रणी रचनाकार हैं। उनकी आत्मकथा जूठन न केवल व्यक्तिगत अनुभवों का विवरण है, बल्कि यह पूरे दलित समाज की पीड़ा, सामाजिक विषमता और विद्रोह का सजीव दस्तावेज़ है। वाल्मीकि की कविताएँ (सदियों का संताप, बस! बहुत हो चुका), कहानियाँ (सलाम), नाटक (दो चेहरे) और आलोचना -ग्रंथ (दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र) सामाजिक चेतना और न्याय की अवधारणा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। उनका साहित्य आंबेडकरवादी दृष्टिकोण का अनुसरण करता है, जिसमें शिक्षा, संगठन और संघर्ष को दलित मुक्ति का आधार माना गया है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वाल्मीकि के साहित्यिक योगदान का गहन अनुशीलन करना है, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि उन्होंने हिंदी दलित साहित्य में सामाजिक चेतना, विद्रोह और सांस्कृतिक पुनरुत्थान में क्या भूमिका निभाई। शोध में उनकी आत्मकथा, कविता, कहानी, नाटक और आलोचना के माध्यम से दलित चेतना, सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता और न्याय की आवश्यकता का विश्लेषण किया गया है। विशेष रूप से डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों का उनके साहित्य पर प्रभाव देखा गया है। वाल्मीकि का साहित्य समाज में समानता, सामाजिक न्याय और दलित चेतना को मजबूत करने का महत्वपूर्ण साधन है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वाल्मीकि केवल साहित्यकार नहीं, बल्कि दलित समाज के संगठक और प्रेरक भी हैं।

प्रमुख शब्द (Keywords): ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, ऐतिहासिकता, अस्पृश्यता, सामाजिक न्याय, आंबेडकरवाद, आत्मकथा, हिंदी साहित्य, जातिगत असमानता, विद्रोह और चेतना, साहित्यिक आलोचना |

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय समाज में जातिगत असमानता और अस्पृश्यता का इतिहास सदियों पुराना है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भेदभाव ने दलित समाज को लंबे समय तक दमन और उपेक्षा का सामना करने के लिए मजबूर किया। ऐसे समाज में दलित साहित्य केवल भावनाओं या व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, विद्रोह और न्याय की पुकार का माध्यम बनता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख व्यक्तित्वों में से एक हैं। उनके

साहित्य में व्यक्त व्यक्तिगत पीड़ा और सामूहिक संघर्ष का गहन समन्वय देखा जा सकता है। बाल्यकाल में विद्यालय, सामाजिक आयोजन और भोजन में भेदभाव ने उनके जीवन को चुनौतीपूर्ण बनाया। यह जीवन अनुभव उनके साहित्य की सामाजिक चेतना और विद्रोह की प्रेरणा बन गया।

वाल्मीकि की प्रमुख रचनाओं में उनकी आत्मकथा जूठन, कविता संग्रह सदियों का संताप, बस! बहुत हो चुका, कहानी संग्रह सलाम, नाटक दो चेहरे और आलोचना दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र शामिल हैं। इन रचनाओं में दलित चेतना, सामाजिक न्याय, अस्पृश्यता और जातिगत असमानता के खिलाफ संघर्ष की विशेषता है।दलित साहित्य इसी असमानता और अन्याय के खिलाफ प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। यह साहित्य शोषित वर्ग के जीवन, उनकी पीड़ा, संघर्ष और विद्रोह का सजीव दस्तावेज़ है। 1960-70 के दशक में मराठी, तमिल और अन्य भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य की शुरुआत हुई। हिंदी में यह प्रमुख रूप से 1980 के दशक में उभरा। शरणकुमार लिंबाले (2007, पृ. 14) के अनुसार: "दलित साहित्य अन्याय और शोषण की अभिव्यक्ति है। यह सौंदर्य से अधिक सत्य और न्याय को महत्व देता है।"ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य के अग्रणी रचनाकार हैं। उनकी आत्मकथा जूठन (1997) हिंदी दलित साहित्य में एक मील का पत्थर मानी जाती है। यह पुस्तक न केवल व्यक्तिगत जीवन का वर्णन है, बल्कि पूरे दलित समाज की पीड़ा, उत्पीड़न और विद्रोह का दस्तावेज़ भी है। दलित साहित्य का उद्देश्य केवल अनुभव और भावनाओं को व्यक्त करना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना और न्याय की पुकार का माध्यम है (लिंबाले, 2007, पृ. 14)। जूठन इस दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की संक्षिप्त परिचय -ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को उत्तर प्रदेश के मुज़फ्फरनगर जिले में हुआ। वाल्मीकि जाति से होने के कारण उन्हें बचपन से ही सामाजिक अपमान और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। स्कूल में झाड़ लगाना, सामाजिक आयोजनों में 'जूठन' पर भोजन करना उनके जीवन का हिस्सा था। "हमारी भूख और गरिमा दोनों एक ही थाली में बंधी हुई थी, जिसे समाज ने हमेशा तिरस्कृत किया।" (जूठन, पृ. 19)।इस अनुभव ने उनके भीतर विद्रोह और सामाजिक चेतना की ज्वाला को जन्म दिया।

वाल्मीकि की प्रमुख रचनाएँ- आत्मकथा: जूठन (1997), कविता-संग्रह: सदियों का संताप (2001), बस! बहुत हो चुका (2005), कहानी-संग्रह: सलाम (2003), नाटक: दो चेहरे (2006), आलोचना-ग्रंथ: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (2001)। इन रचनाओं में सामाजिक चेतना, विद्रोह, दलित अस्मिता और न्याय की मांग का स्पष्ट चित्रण है।दलित साहित्य केवल व्यक्तिगत पीड़ा का बयान नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की मांग है। गोपाल गुरु (1999, पृ. 45) लिखते हैं: "दलित विमर्श का मूल लक्ष्य समाज में सत्ता-संबंधों और सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती देना है।" वाल्मीकि के साहित्य में यह दृष्टि गहराई से दिखाई देती है। उनके लिए शिक्षा, संगठन और सामूहिक प्रयास ही दलित मुक्ति का आधार हैं।

आत्मकथा जूठन में वाल्मीकि का जीवन और अनुभव

वाल्मीकि का जन्म उत्तर प्रदेश के मुज़फ्फरनगर जिले में हुआ। जातिगत उत्पीड़न उनका प्रारंभिक जीवन प्रभावित करता रहा। उन्हें स्कूल में अलग रखा जाता, भोजन में 'जूठन' पर मजबूर किया जाता और सामाजिक आयोजनों में बहिष्कार झेलना पड़ता। "हमारी भूख और गरिमा दोनों एक ही थाली में बंधी हुई थी, जिसे समाज ने हमेशा तिरस्कृत किया।" (जूठन, पृ. 19)।ये अनुभव केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि पूरे दलित समाज की सामूहिक पीड़ा का प्रतिनिधित्व करते हैं (अंसल, 2011, पृ. 32)। वाल्मीकि का बचपन गरीबी, सामाजिक भेदभाव और परिवार के संघर्ष में बीता। उनका जीवन स्पष्ट करता है कि जातिवाद केवल आर्थिक या सामाजिक स्तर पर नहीं, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी पीड़ा उत्पन्न करता है।

1. जातिगत उत्पीड़न और असमानता का चित्रण-जूठन में वाल्मीकि ने दलित उत्पीड़न के यथार्थ को मार्मिक तरीके से प्रस्तुत किया है। स्कूल में बच्चों को भेदभाव से गुजरना पड़ता था, उन्हें अलग बैठाया जाता और भोजन में जूठन पर बाध्य किया जाता। "हमारी थाली में जो खाना आता, वही हमें मुख्य भोजन समझा जाता, और इसे खाने का हक हमें तब तक नहीं मिलता जब तक उच्च जातियों के लोग भोजन कर लें।" (जूठन, पृ. 25)। यह अनुभव दलित वर्ग की सामाजिक असमानता और अस्पृश्यता का सजीव प्रमाण है। गुरु (1999, पृ. 45) के अनुसार: "दलित विमर्श का उद्देश्य समाज में सत्ता -संबंधों और सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती देना है।" वाल्मीकि के अनुभव इस सामाजिक संरचना का सटीक दर्पण हैं।

2. शिक्षा, संघर्ष और विद्रोह-वाल्मीकि ने शिक्षा को उत्पीड़न के खिलाफ हथियार बनाया। विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। "मैंने पढ़ाई को हथियार बनाया और हर अपमान को चुनौती में बदल दिया।" (जूठन, पृ. 45)। यह दृष्टि आंबेडकरवादी विचारधारा के अनुरूप है, जिसमें शिक्षा और संगठन को दलित मुक्ति का आधार माना गया। वाल्मीकि का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं था; यह दलित समाज के समग्र अधिकारों की लड़ाई भी थी। उन्होंने अपने अनुभवों के माध्यम से समाज में जागरूकता और विद्रोह की भावना उत्पन्न की।

जूठन का बहुआयामी विश्लेषण-ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन (1997) हिंदी दलित साहित्य का मील का पत्थर मानी जाती है। यह केवल व्यक्तिगत जीवन की कथा नहीं, बल्कि एक सामूहिक अनुभव का दस्तावेज़ है। इसमें वाल्मीकि ने अपने जीवन के माध्यम से दलित समाज की पीड़ा, शोषण और विद्रोह की कथा कही है। जूठन में दलित जीवन की यथार्थपरक झलकियाँ मिलती हैं, जो साहित्यिक, समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से अध्ययन योग्य हैं।

1. साहित्यिक दृष्टि से-वाल्मीकि की जूठन को हिंदी आत्मकथात्मक साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

1. भाषा और शैली:-सरल, सहज और मार्मिक भाषा। बोलचाल के शब्द और मुहावरे सीधे दलित समाज की संस्कृति से लिए गए हैं। भाषा में तत्कालिकता और प्रभाव है, जिससे पाठक प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उदाहरण: विद्यालय में झाड़ लगवाने का प्रसंग— "कक्षा में बैठने की जगह नहीं दी जाती थी। मास्टर जी ने कहा–'अरे चूहड़े के, बाहर जाकर झाड़ लगाओ।'" (जूठन, पृ. 22) | यह उद्धरण दिखाता है कि जूठन की भाषा में केवल घटनाओं का बयान नहीं, बल्कि जीवंत अनुभव है।

2. शैलीगत विशेषताएँ:-आत्मकथात्मक शैली में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक दोनों रूप। वाल्मीकि केवल घटनाएँ नहीं बताते, बल्कि उनका सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ भी जोड़ते हैं। उदाहरण: विवाह और भोज के अवसर पर जूठन इकट्ठा करने की मजबूरी को लेखक ने सामाजिक विडंबना और दलित जीवन की विवशता से जोड़ा।

3. विषय-वस्तु:-दलित जीवन का यथार्थ। शिक्षा की संघर्षपूर्ण यात्रा। सामाजिक बहिष्कार और जातिगत अपमान। आत्मसम्मान और विद्रोह की चेतना। इस तरह साहित्यिक दृष्टि से जूठन को वास्तविक जीवन का सच्चा प्रतिबिंब कहा जा सकता है।

2. समाजशास्त्रीय दृष्टि से-जूठन केवल व्यक्तिगत आत्मकथा नहीं, बल्कि दलित समाजशास्त्र का दस्तावेज़ है।

1. जातिगत असमानता:

विद्यालय में दलित छात्रों को अलग बैठाना। भोजन में 'जूठन' ही उपलब्ध होना। मंदिर और धार्मिक आयोजनों से बहिष्कार। यह घटनाएँ भारतीय समाज में जाति-आधारित विषमता को स्पष्ट करती हैं। स्रोत: गोपाल गुरु, दलित और समाजशास्त्र, 1999, पृ. 47

2. सामाजिक बहिष्कार:-गाँव में दलित बस्तियों का अलग होना। ऊँची जातियों के संपर्क में आने पर अपमानित किया जाना। उदाहरण: विवाह-भोज में दलितों को भोजन के बाद बचा हुआ खाना ही दिया जाता था।

3. आर्थिक शोषण: दलित परिवारों से बेगार कराना। मजदूरी में असमानता। मेहनत के बाद भी अपमानजनक व्यवहार। यह स्पष्ट करता

है कि दलित समाज केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से भी शोषित था।

4. सांस्कृतिक हीनता:दलितों को सांस्कृतिक आयोजनों, त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों से वंचित रखा गया। उन्हें समाज के 'नीचे' स्तर पर स्थिर बनाए रखने की कोशिश। इस दृष्टि से जूठन एक समाजशास्त्रीय अध्ययन की सामग्री है।

3. ऐतिहासिक दृष्टि से-जूठन में स्वतंत्र भारत के बाद भी दलित समाज की दर्दशा और असमानता का चित्रण मिलता है।

1. स्वतंत्रता के बाद भी शोषण:-संविधान में समानता का अधिकार मिलने के बावजूद व्यवहार में जातिगत भेदभाव जारी रहा। वाल्मीकि के अनुभव 1950–70 के दशक के हैं, जब सामाजिक परिवर्तन की चर्चा थी, लेकिन जमीनी स्तर पर बदलाव नहीं था। अंबेडकर, बी. आर. जाति का विनाश, 1936 (हिंदी अनुवाद, 1990), पृ. 89

2. दलित आंदोलन का प्रभाव:-अंबेडकर आंदोलन और 1970 के दशक में दलित पैंथर्स जैसी संस्थाओं का प्रभाव हिंदी पट्टी में भी दिखाई देता है| वाल्मीकि का लेखन इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

3. दलित साहित्य का उदय:-1960–70 के दशक में मराठी दलित साहित्य ने हिंदी साहित्य को भी प्रभावित किया। जूठन इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिणाम है। इस प्रकार जूठन इतिहास की उस कड़ी को प्रस्तुत करती है जिसमें दलित समाज ने अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई।

4. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से-जूठन को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पढ़ने पर लेखक की आत्मपीड़ा, आक्रोश और आत्मसंघर्ष की गहराई स्पष्ट होती है।

1. अपमान और पीड़ा: बचपन में विद्यालय में झाड़ू लगवाना। भोजन में 'जूठन' तक सीमित होना। सामाजिक बहिष्कार झेलना। इन अनुभवों ने लेखक के मन में गहरी चोट पहुँचाई।

2. आक्रोश और विद्रोह: वाल्मीकि ने अपमान को दबाने के बजाय उसे साहित्य में रूपांतरित किया। उनके भीतर प्रतिरोध की चेतना जागी।

3. आत्मसम्मान की खोज: लेखक ने शिक्षा और लेखन के माध्यम से आत्मसम्मान पाया। उन्होंने स्वयं के अनुभव को सामूहिक चेतना में बदल दिया। वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन, 1997, पृ. 45

4. सकारात्मक मनोविज्ञान: पीड़ा को आत्मबल में बदलना। व्यक्तिगत अनुभव को सामाजिक आंदोलन में रूपांतरित करना। यह मनोवैज्ञानिक पहलू जूठन को महज आत्मकथा नहीं, बल्कि संघर्ष और प्रेरणा की गाथा बना देता है।

वाल्मीकि की कविताएँ और कहानियाँ : दलित चेतना का स्वर

ओमप्रकाश वाल्मीकि केवल आत्मकथाकार ही नहीं, बल्कि सशक्त कवि और कहानीकार भी थे। उनकी कविताओं और कहानियों में दलित जीवन की पीड़ा, आक्रोश, संघर्ष और चेतना का व्यापक चित्रण मिलता है। कविता और कहानी उनके साहित्य का वह पक्ष है जहाँ उनकी आत्मकथा जूठन में उठाए गए प्रश्न और अधिक व्यापक व सामूहिक रूप लेते हैं।

1. कविता : विद्रोह और चेतना की अभिव्यक्ति

वाल्मीकि के प्रमुख कविता संग्रह—

1. सदियों का संताप (2001)
2. बस! बहुत हो चुका (2005)

इनमें दलित समाज के संघर्ष, अपमान और विद्रोह का स्वर गूंजता है।

(क)सदियों का संताप: यह संग्रह दलित जीवन की लंबे समय से चली आ रही पीड़ा को स्वर देता है। ऐतिहासिक पीड़ा का दस्तावेज़: कविताओं में दलितों के सदियों पुराने शोषण और अपमान की गूँज है। विद्रोह का स्वर: कवि केवल दःख नहीं व्यक्त करता, बल्कि प्रतिरोध की चेतना जगाता है। सामाजिक अन्याय की आलोचना: जातिगत व्यवस्था और सामाजिक असमानता के खिलाफ कविताएँ तीव्र स्वर में खड़ी होती हैं।उदाहरण: "हजारों साल की भूख और प्यास ने , मेरे भीतर ज्वालामुखी जगा दिए हैं।" (सदियों का संताप, पृ. 18)| यह पंक्ति दलित चेतना की आग और आक्रोश का प्रतीक है।

(ख) बस! बहुत हो चुका :यह संग्रह सीधे-सीधे दलित समाज के आक्रोश और प्रतिरोध को व्यक्त करता है। असमानता का विरोध: कविताओं में अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ सीधी चुनौती है। क्रांतिकारी स्वर: कवि मानो दलित समाज को जगाने वाला सेनानी है। नवीन आशा: पीड़ा के साथ-साथ नई सुबह और मुक्ति की आकांक्षा भी प्रकट होती है। उदाहरण: "अब और नहीं झेलेंगे हम
सदियों के अन्याय का बोझ।" (बस! बहुत हो चुका, पृ. 42)
यह स्वर केवल शिकायत नहीं, बल्कि विद्रोह और क्रांति का उद्घोष है।

(ग) वाल्मीकि की कविताओं की विशेषताएँ

1. यथार्थपरकता – दलित जीवन के अनुभव सीधे रूप में अभिव्यक्त।
2. विद्रोह और आक्रोश – अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध खुला स्वर।
3. सामूहिक चेतना – व्यक्तिगत पीड़ा को समाज की सामूहिक आवाज़ में बदलना।
4. भाषा की तीक्ष्णता – शब्दों में तल्खी, लेकिन संवेदना भी।

स्रोत: लिंबाले, शरणकुमार. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 65

2. कहानी : यथार्थ और प्रतिरोध-ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी संग्रह सलाम (2003) हिंदी दलित कहानी परंपरा का महत्वपूर्ण अंग है। इसमें दलित जीवन के यथार्थ, संघर्ष और अस्मिता का गहन चित्रण मिलता है।

(क) प्रतिनिधि कहानियाँ

1. "सलाम" इस कहानी में दलित पात्रों की अस्मिता और सम्मान का प्रश्न उठता है। नायक समाज में बराबरी और सम्मान की मांग करता है।
2. "घटना" जातिगत भेदभाव से उपजी मार्मिक घटना का चित्रण। यह कहानी दिखाती है कि कैसे दलितों को रोज़मर्रा के जीवन में भी अपमानित होना पड़ता है।
3. "दर्घटना" मजदूर जीवन और शोषण की कथा। पूंजीवादी और जातिवादी शोषण की संयुक्त प्रभाव।

(ख) कहानियों की विषयवस्तु

अस्मिता की खोज: कहानियाँ दलित समाज की पहचान और सम्मान की तलाश को सामने लाती हैं।
जातिगत विषमता: उच्च जातियों का अहंकार और दलितों की पीड़ा।
संघर्ष और विद्रोह: पात्र शोषण को चुनौती देते हैं।
यथार्थवादी दृष्टि: घटनाएँ काल्पनिक नहीं, बल्कि समाज की वास्तविकता से ली गई हैं।

(ग) शैली और भाषा

सरल और बोलचाल की भाषा। पात्रों की बोली और जीवन-स्थितियाँ बिल्कुल यथार्थ लगती हैं। संवादों में प्रत्यक्षता और तीव्रता। उदाहरण: सलाम कहानी में नायक का संवाद— "अब हम सलाम नहीं करेंगे। हम बराबर हैं, इंसान हैं।" (सलाम, पृ. 32)| यह संवाद दलित अस्मिता का उद्घोष है।

(घ) कहानियों का महत्व-हिंदी साहित्य में दलित जीवन का सशक्त यथार्थ प्रस्तुत करना। दलित पात्रों की जीवंत छवि सामने लाना। समाज को आत्ममंथन करने पर विवश करना। स्रोत: जोशी, रामशरण. हिंदी का दलित साहित्य, 2004, पृ. 149

3. कविता और कहानी : तुलनात्मक दृष्टि-कविता में भावनात्मक आक्रोश और सामूहिक चेतना है। कहानियों में दैनिक जीवन का यथार्थ और पात्रों का संघर्ष है| दोनों विधाओं में समानता यह है कि इनमें दलित जीवन का यथार्थ, आक्रोश और अस्मिता की चेतना केंद्रीय है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि : नाटक और आलोचना में योगदान-ओमप्रकाश वाल्मीकि केवल आत्मकथाकार, कवि और कहानीकार ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने नाटक और आलोचना के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके नाटकों और आलोचनात्मक लेखन में भी वही स्वर मिलता है जो उनकी आत्मकथा और कविताओं में है— दलित जीवन की अस्मिता, संघर्ष और सामाजिक न्याय की आकांक्षा।

1. नाटक : मंच पर दलित जीवन की प्रस्तुति-वाल्मीकि का नाटक दो चेहरों वाले लोग (2006) हिंदी रंगमंच में दलित जीवन को केंद्र में लाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

(क) दो चेहरों वाले लोग-यह नाटक समाज की दोहरी मानसिकता और पाखंड को उजागर करता है। पात्रों के माध्यम से दिखाया गया है कि किस तरह समाज ऊपर से समानता और न्याय की बातें करता है, पर भीतर से जातिवादी सोच से ग्रस्त है। दलित पात्र यहाँ केवल पीड़ित नहीं, बल्कि सवाल पूछने वाले और चुनौती देने वाले हैं। उदाहरण: एक पात्र का संवाद— "तुम्हारे चेहरे पर समानता का मुखौटा है, पर आँखों में घृणा और भेदभाव झलकता है।" (दो चेहरों वाले लोग, पृ. 27)

(ख) नाटक का महत्व-हिंदी रंगमंच को नई सामाजिक दृष्टि दी। पहली बार दलित जीवन के प्रश्नों को मुख्यधारा रंगमंच में स्थापित किया। दर्शकों को सामाजिक यथार्थ से सीधा सामना कराया। स्रोत: सिंह, राजेंद्र. हिंदी दलित नाटक की परंपरा, 2012, पृ. 88

2. आलोचना : दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-वाल्मीकि ने आलोचना के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान किया। उनका आलोचनात्मक ग्रंथ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (2001) हिंदी आलोचना की दृष्टि से मील का पत्थर है।

(क) ग्रंथ की प्रमुख बातें

1. दलित साहित्य की परिभाषा

वाल्मीकि ने स्पष्ट किया कि दलित साहित्य केवल जाति विशेष की पीड़ा का साहित्य नहीं, बल्कि यह मानव-मुक्ति का साहित्य है। "दलित साहित्य शोषित-पीड़ित वर्ग की चेतना और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है।" (दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 12)

2. सौंदर्यबोध का नया आधार

परंपरागत साहित्यिक आलोचना रस, छंद और अलंकार पर आधारित थी। वाल्मीकि ने सौंदर्य का आधार अन्याय-विरोध, समता और मानवीय करुणा को बनाया।

3. सामाजिक यथार्थ का आग्रह

उनका कहना था कि दलित साहित्य को केवल साहित्यिक कसौटियों पर नहीं, बल्कि सामाजिक सरोकारों के आधार पर पढ़ा जाना चाहिए।

अंबेडकरवादी दृष्टिकोण

आलोचना में डॉ. अंबेडकर की विचारधारा को केंद्र में रखा। अंबेडकर के विचार—शिक्षा, संगठन और संघर्ष—को दलित साहित्य की आधारशिला माना। ओमप्रकाश वाल्मीकि और अंबेडकरवाद: ओमप्रकाश वाल्मीकि का पूरा साहित्य डॉ. भीमराव अंबेडकर की विचारधारा से गहरे रूप में प्रभावित है।

(क) अंबेडकर से प्रेरणा: अंबेडकर ने दलित समाज को तीन मूल मंत्र दिए — शिक्षा, संगठन और संघर्ष। वाल्मीकि ने इन्हीं सिद्धांतों को अपने साहित्य में आत्मसात किया। वे बार-बार यह स्पष्ट करते हैं कि दलित मुक्ति का रास्ता केवल शिक्षा और चेतना से होकर गुजरता है।

(ख) जूठन में अंबेडकरवादी स्वर: आत्मकथा में शिक्षा को लेकर उनका संघर्ष अंबेडकर की शिक्षा-चेतना का प्रत्यक्ष उदाहरण है। उन्होंने लिखा: "पढ़ना अपराध था हमारे लिए। किताब हाथ में पकड़ना, जैसे विद्रोह करना।" (जूठन, पृ. 36)। यह अंबेडकर के उस विचार की प्रतिध्वनि है जिसमें उन्होंने कहा था— "शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो।" (डॉ. भीमराव अंबेडकर, रचनावली, खंड-3, पृ. 112)

(ख) कविता में अंबेडकरवादी चेतना: उनकी कविताएँ जैसे बस! बहुत हो चुका में अंबेडकर की तरह जातिवादी ढाँचे को चुनौती दी गई है। कवि कहता है— "अब हम चुप नहीं रहेंगे,
यह चुप्पी हमारी मौत है।" (बस! बहुत हो चुका, पृ. 14)
यह सीधे-सीधे अंबेडकरवादी प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है।

अस्पृश्यता : वाल्मीकि का अनुभव और साहित्य

(क) व्यक्तिगत अनुभव: वाल्मीकि स्वयं बचपन से ही अस्पृश्यता का शिकार रहे। विद्यालय में झाड़ लगाने के लिए मजबूर किया जाना, शादी-ब्याह और सामाजिक अवसरों पर अपमान झेलना—ये सब उनके साहित्य का हिस्सा बने। जूठन इसी जीवन-यथार्थ की कथा है।

(ख) साहित्य में अस्पृश्यता का चित्रण: उनकी आत्मकथा, कविता और कहानियों में अस्पृश्यता एक केंद्रीय मुद्दा है। जूठन का हर पृष्ठ समाज की उस घृणा और भेदभाव को सामने लाता है जो सदियों से दलित जीवन को पीड़ित करता रहा। कहानी सलाम में भी दिखाया गया है कि कैसे दलित पात्र सम्मान पाने के लिए संघर्ष करते हैं, लेकिन समाज उन्हें बार-बार नीचा दिखाने की कोशिश करता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

(क) दलित आंदोलन पर प्रभाव: वाल्मीकि का साहित्य दलित आंदोलन की वैचारिक धारा से जुड़ता है। उन्होंने साहित्य को आंदोलन का उपकरण बनाया। हंस पत्रिका और दलित पैंथर्स आंदोलन की लेखनी उनके विचारों के निकट है।

(ख) साहित्य और समाज का संबंध: उनके लेखन ने मुख्यधारा समाज को भी झकझोरा। जूठन पढ़कर मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय पाठक पहली बार दलित जीवन की कठोर सच्चाइयों से रूबरू हुए। इससे हिंदी साहित्य में नई बहसें शुरू हुईं—"क्या साहित्य केवल सौंदर्य है या सामाजिक परिवर्तन का साधन भी?"

(ग) संस्कृति और परंपरा का पुनर्पाठ: वाल्मीकि ने भारतीय संस्कृति के ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती दी। उन्होंने लोक-संस्कृति और दलित परंपराओं को साहित्य में महत्त्व दिया। वे मानते थे कि संस्कृति तभी जीवंत है जब उसमें सबकी भागीदारी हो।

निष्कर्ष-ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिन्होंने अपनी लेखनी से साहित्य, समाज और संस्कृति तीनों को गहराई से प्रभावित किया।उनकी आत्मकथा जूठन दलित जीवन की यथार्थवादी गाथा है, जिसने मुख्यधारा साहित्य में झकझोर देने वाली सच्चाई दर्ज की। उनकी कविताओं (सदियों का संताप, बस! बहुत हो चुका) ने दलित पीड़ा, प्रतिरोध और विद्रोह की आवाज़ बुलंद की।उनकी कहानियाँ (सलाम) और नाटक (दो चेहरों वाले लोग) ने मंच और कथा-साहित्य में दलित अस्मिता को केंद्र में रखा। उनकी आलोचना (दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र) ने हिंदी आलोचना को नई दिशा दी और दलित साहित्य को सैद्धांतिक वैधता प्रदान की। वाल्मीकि के साहित्य में डॉ. आंबेडकर के विचारों की गहरी छाप है — शिक्षा, संगठन और संघर्ष का सूत्र उनकी हर रचना में झलकता है। अस्पृश्यता का अनुभव और उसका प्रतिरोध उनके साहित्य का केन्द्रीय विषय है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वाल्मीकि का साहित्य भारतीय ही नहीं, बल्कि वैश्विक दलित-शोषित विमर्श का हिस्सा है।सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्य केवल मनोरंजन या सौंदर्य नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का औजार है।इस प्रकार, ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य दलित चेतना का जीवंत दस्तावेज़ है। उन्होंने साहित्य को हाशिये से उठाकर केंद्र में लाने का कार्य किया। उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि प्रतिरोध और परिवर्तन की चेतना है।

****

संदर्भ सूची (References)

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997.
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. सदियों का संताप. राजकमल प्रकाशन, 1989
3. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. बस! बहुत हो चुका. वाणी प्रकाशन, 1998.
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. सलाम (कहानी संग्रह). राजकमल प्रकाशन,दिल्ली
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. दो चेहरों वाले लोग (नाटक). 2006.
6. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. राजकमल प्रकाशन, 2001.
7. अंबेडकर, भीमराव. डॉ. भीमराव आंबेडकर रचनावली (खंड 3). महाराष्ट्र सरकार, 1991.
8. लिंबाले, शरणकुमार. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (मराठी, हिंदी अनुवाद). वाणी प्रकाशन, 2007.
9. गुरु, गोपाल. दलित विमर्श और हिंदी साहित्य. वाणी प्रकाशन, 2003.
10. श्यामलाल. दलित साहित्य और समाज. राजकमल प्रकाशन, 2005.
11. सिंह, राजेंद्र. हिंदी दलित नाटक की परंपरा. साहित्य अकादमी, 2012.
12. बागुल, बाबूराव. दलित कहानियाँ. 1963.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

पुरुषार्थ चतुष्टय का पारस्परिक समन्वय शांतिपर्व के विशेष संदर्भ में

कैलाशचंद
शोधार्थी
भाषा विभाग (संस्कृत)
मानविकी एवं उदार शिक्षा संकाय
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक हरियाणा

डॉ. हरिओम
शोधनिर्देशक
सहायक आचार्य भाषा विभाग (संस्कृत)
मानविकी एवं उदार शिक्षा संकाय रोहतक हरियाणा

सारांश भारतीय मनीषियों के दार्शनिक विचारों का मूल आधार था, मनुष्य जीवन को भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत करना। इन चिंतकों ने जीवन के सुख को दो भागों में विभक्त किया। पहला क्षणिक, अस्थिर एवं असत्य है। यह भौतिक सुख, शारीरिक आवश्यकताओं एवं कामना परक वृत्तियों की पूर्ति के लिए इहलौकिक सुख है किन्तु इस प्रकार का सुख संकीर्णता स्वार्थता और 'लिप्सा तथा वासना से जीवन को आबद्ध करनेवाला है जो हमारा आदर्श जीवन नहीं हो सकता। मनुष्य का संयमित और नियमित आचार तथा आध्यात्मिक विचार ही यथोचित निर्णय प्रदान कर सकने में समर्थ होता है। अतएव भारतीय जीवन दर्शन इन दोनों प्रवृत्तियों का संतुलित, सम्मिलित एवं समन्वित स्वरूप है, जिसे 'पुरुषार्थ' कहते हैं। मानव जीवन के चरम लक्ष्य प्राप्ति का नाम ही पुरुषार्थ है। यह उस सार्थक जीवन शक्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को सांसारिक सुख भोग के बीच अपने धर्मपालन के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष की राह दिखाता है। यह इहलोक से परलोक को मिलाने वाला, सीमित मानव जीवन को असीम तथा पूर्ण परमात्मा से परिचित कराने वाला तथा मनुष्य के भौतिक, बौद्धिक, शारीरिक एवं नैतिक प्रगति का पथ प्रदर्शक है। इस अर्थ में पुरुषार्थ उन मानवीय गुणों का समन्वय है जो भौतिक सुख और आध्यात्मिक उन्नति के बीच, संतुलन की सृष्टि करता है। भौतिक एवं लौकिक सुख के अन्तर्गत अर्थ एवं काम हैं तथा आध्यात्मिक एवं पारलौकिक सुख के अन्तर्गत धर्म एवं मोक्ष हैं। पुरुषार्थ में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्व निहित हैं। इसके अन्तर्गत मनुष्य लौकिक उपभोग के साथ धर्म का अनुसरण करते हुए ईश्वरोन्मुख होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। अन्तर्द्रष्टा ऋषिगण, धर्मशास्त्रकारों तथा दार्शनिकों के द्वारा मनुष्यों की प्रवृत्ति एवं स्वभाव को ध्यान रखते हुए पुरुषार्थ की संकल्पना की गयी है, जिसका प्रधान लक्ष्य है-परमार्थ की प्राप्ति एवं मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में संतुलन बनाना।

बीज शब्द पुरुष राजधर्म, निःश्रेयस, ऋत, इहलोक, रति,निर्गुण

भूमिका पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति है पूः पुरं, शरीरं च। पुरि शेते इति पुरुषः। अर्थात् जो इस पुर में (शरीर में) सोया हो, प्रवेश किया हो, शरीर में स्थापित हो, उस चैतन्याश को 'पुरुष' कहते हैं। 'अर्थ्यते प्रार्थ्यते सर्वैः इति अर्थः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अभिलषित अर्थ (विषयों) को अर्थ कहते है। इस प्रकार 'पुरुषाणाम् अर्थः पुरुषार्थः' अथवा 'पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थः' के अनुसार संसार के सारे अभीष्ट इसमें समाहित हो जाएंगे। भारतीय मनीषियों ने मनुष्य जीवन के मुख्यतः चार लक्ष्य निर्धारित किये हैं धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। प्रथम तीन अभ्युदय के साधन हैं तथा अन्तिम मोक्ष अर्थात् निःश्रेयस् का साधन है। सब ओर से उन्नति होना अभ्युदय का स्वरूप है। इसी प्रकार जिससे बढकर कोई भी श्रेष्ठतम फल न हो, उसकी प्राप्ति को निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष कहते हैं। केवल पुरुष ही इनका सम्पादन कर सकते हैं अतएव इन्हें 'पुरुषार्थ' कहा जाता है।

विषयवस्तु पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति का मौलिक सिद्धांत है। मानव जीवन का सर्वांगीण विकास उसके पुरुषार्थ पर ही निर्भर रहता है। यह मनुष्य का वह आधार है, जिसके माध्यम से वह अपना आदर्श जीवन जीता है तथा विभिन्न कर्तव्यों का मनोनिवेशपूर्वक पालन करता है। पुरुषार्थ द्वारा ही मनुष्य, बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक, भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करता है।इस प्रकार मनुष्य लौकिक जीवन के प्रति जागरूक होते हुए पारलौकिक जीवन के प्रति भी उत्कंठित रहता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत मोक्ष मानव जीवन के चरम उद्देश्य एवं मानव की आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक है। अर्थ मनुष्य में वस्तुओं को प्राप्त करने व संग्रह करने की सहज प्रवृत्ति को इंगित करता है। काम मानव के सहज स्वभाव व भावुक जीवन को व्यक्त करता है तथा उसकी कामवासना और सौंदर्यप्रियता की प्रवृत्ति की तुष्टि करता है। अर्थ और काम के जाल में फंसकर मनुष्य कहीं भटक न जाए, इस उद्देश्य से उसे जीवन के उच्चतर आदर्शों तथा नैतिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता भी प्रतीत होती है। इन्हीं उच्चतर आदर्शों, नैतिक कर्तव्यों के समन्वित रूप को ही भारतीय चिंतकों ने धर्म कहा है। अतः धर्म वह कड़ी है जो मानव जीवन के सांसारिक पक्ष को आध्यात्मिक पक्ष के साथ संयुक्त करती है जिससे एक स्तर पर मनुष्य सभी कर्मों से तृप्ति तथा इच्छाओं का नाश करके जीवन मुक्ति की अवस्था में पहुंच जाता है और महाशक्ति से उसका महामिलन हो जाता है यही स्थिति मोक्ष है। यही पुरुषार्थ की अवधारणा का आधार है। भारतीय जीवनयापन नियमावली के मूल में निहित पुरुषार्थ-चतुष्टय में से कोई भी पुरुषार्थ हेय अथवा दूसरे से कमतर नहीं है। अपने-अपने स्थान पर चारों ही महत्त्वपूर्ण हैं और चारों ही मिलकर एक सुगठित समाज और कल्याणकारी व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

महाभारत के शान्तिपर्व के राजधर्म प्रकरण में पुरुषार्थ पर बल देते हुए भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं बृहस्पति ने पुरुषार्थ को ही राजधर्म का मूल कहा था देवताओं ने उद्योगसे अमृत लाभ करके असुरोंको मारा था और देवराज इन्द्र अपने पुरुषार्थ से ही देवलोक और इहलोकके बीच विख्यात होके स्वर्गलोकके राजा हुए हैं। जगत् में जो कर्म में दक्ष तथा उत्साही है, उनके सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। हे पुत्र युधिष्ठिर तुम सदा पुरुषार्थ के निमित्त यत्न करना। पुरुषार्थ के विना केवल दैवके आसरे राजाओंके कार्य सिद्ध नहीं हो सकते भाग्य और पुरुषार्थमें दोनों कार्यकी सिद्धिके लिये साधारण कारण माने जानेपर भी मैं पुरुषार्थको श्रेष्ठ समझता हूं।[1]

धर्म पुरुषार्थ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - इन चारों की गणना की गई है। इनमें सर्वप्रथम स्थान धर्म का है। धर्म का वास्तविक अर्थ केवल कोई मन्तव्य अथवा संस्थागत व्यवस्था एवं अनुशासन ही नहीं, अपितु जीवन-प्रणाली एवं आचार भी धर्म है, जो समाज के एक सदस्य के नाते या एक व्यक्ति के रूप में उसके कार्यों तथा गतिविधियों का नियमन करता है। संस्कृत के धृ धारणे धातु से मन् प्रत्यय लगाने पर धर्म शब्द की पुल्लिङ्ग अर्थ में निष्पत्ति होती है। धर्म का अर्थ होता है - धारण करना। अतः जिसे धारण किया जाये वह धर्म है। ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा।[2] अतः धर्म ऐसा तत्त्व है, जो व्यक्ति को देशकालानुसार आचरण की प्रेरणा देकर समाज में रहने के योग्य बनाता

है। स्पष्ट है कि धर्म यहाँ साम्प्रदायिक अर्थ में नहीं है, अपितु धर्म का अर्थ उन गुणों को धारण करना है जिनसे मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करता है। 3 पुनः ध्यातव्य है कि अभ्युदय का तात्पर्य है, अभितः उदयः अर्थात् सब तरह से आगे बढना उन्नति को प्राप्त करना। निःश्रेयस् का तात्पर्य है कि निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम् अर्थात् निश्चित फल, जो कभी क्षीण नहीं होता, ऐसे परम आनन्द की प्राप्ति। धर्म द्वारा इन दोनों प्रकार की उन्नतियों से मानवता का विकास होता है। अतः धर्म सभी पुरुषार्थों की कुञ्जी है। यह व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार की एक संहिता है जो उसके कर्मों को किसी भी देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार नियंत्रित करता है तथा मानव को उज्ज्वल जीवन जीने के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है। भारतीय साहित्य में आचार अथवा सदाचार को धर्म का लक्षण माना गया है। मनु ने स्पष्ट वर्णन किया है आचार परम (मुख्य) धर्म है।[4] महर्षि याज्ञवल्क्य सम्यक् संकल्प से उत्पन्न काम को भी धर्म मानते हैं।[5] श्रीकृष्ण महाभारत के कर्ण पर्व में धर्म के स्वरुप के विषय में कहते हैं जिससे सम्पूर्ण सृष्टि बंधी है एवं जिससे सब प्रजा का धारण होता है, वहीं धर्म है। यदि धर्म छूट जाये, तो समाज के सारे बन्धन भी छूट जाते हैं।[6] ऋग्वेद में इसे ऋत कहते हैं ऋत के रूप में यह सम्पूर्ण जगत् पर शासन करता है और शासक के बिना शासन में अराजकता आ जाती है। अतः धर्म सृष्टि के संतुलन के लिये अनिवार्य तत्व है।[7]

तैत्तिरीयारण्यकम् में वर्णन मिलता है कि धर्म ही जगत का आधार है। प्रत्येक व्यक्ति के निःश्रेयस और अभ्युदय दोनों तरह की उन्नति धर्म से ही संभव है। धर्म ही इस विश्व का आधार हैं।[8] भारतीय मनीषा के लिए धर्म एक अत्यंत जीवंत और रहस्यमय शब्द है। धर्म का समस्त रहस्य उसकी प्रवर्तन शक्ति में छिपा है जो कृत्य, चिंतन, आचार-विचार और प्रवर्तन में सहायक है, वही धर्म है।[9] महाभारत के शान्तिपर्व में भी धर्म के लक्षण पर विचार किया गया है। शान्तिपर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को धर्म के विषय में कहते हैं कि धर्म सबको धारण करता है-अधोगति में जाने से बचाता और जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है, अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता हो, वह धर्म है।[10] शान्तिपर्व के ही मोक्षधर्मप्रकरण में युधिष्ठिर द्वारा धर्म के विषय में जिज्ञासा करने पर भीष्म पितामह ने कहा- "वेद, स्मृति, सदाचार-तीन प्रकार के धर्म के लक्षण हैं। पण्डित लोग प्रयोजन को भी धर्म का चतुर्थ लक्षण कहते हैं। सच्चा धर्म जानने वाले पुरुष अपापविद् होते हैं। आचार ही धर्म की निष्ठा है अतः आचार का अवलम्बन करने से धर्म का स्वरूप जाना जा सकता है।[11]शांति पर्व के धर्म अधर्म स्वरूप के निर्णय विषय में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि जो मनुष्य दूसरों द्वारा किए हुए जिस व्यवहार को अपने लिए चाहता है दूसरों के प्रति भी वह वैसा बर्ताव करे उसे यह समझना चाहिए कि जो बर्ताव उसके अपने लिए अप्रिय है वह दूसरों के लिए भी प्रिय नहीं हो सकता।[12]धर्म केवल भाव मात्र नहीं है, वह यथार्थ जीवन में प्रकट होने वाला विश्वास भी है। धर्म की वृद्धि होने पर ही समस्त प्राणियों का अभ्युदय होता है और धर्म का ह्रास होने पर सब का ह्रास हो जाता है।[13] शान्तिपर्व के मोक्षधर्म पर्व में तुलाधार-जाजलि सम्वाद के प्रसङ्ग में जाजलि मुनि की जिज्ञासा का शमन करते हुए तुलाधार ने धर्म का विवेचन इस प्रकार से किया है-जीवों से द्रोह न करके अथवा आपत्काल में अल्पद्रोह पूर्ण आचरण करके जो जीविका अर्जित की जाती है वही धर्म है। जो व्यक्ति सदा सबका मित्र है और जो मन, वचन और कर्म से परोपकार में संलग्न रहता है वही असली धर्म जानता है।[14]

अर्थ मनुष्य को सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए अर्थ महत्वपूर्ण है। परन्तु अर्थ मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होने मात्र से ही पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ होने के लिए उसे धर्म नियंत्रित होना पड़ता है। धर्मशास्त्रों ने जहाँ एक ओर अर्थ के अर्जन, रक्षण, परिवर्धन की स्वतंत्रता दी है वहीं दूसरी तरफ उनकी वृत्तियों पर नियंत्रण, धार्मिक एवं लोकहित कार्यों की करणीयता के द्वारा इस धन के निस्सीम संचय, स्वेच्छाचारी भोग तथा अपव्यय पर भी अंकुश लगाया है। योगप्रधान अथवा भोग-प्रधान सभी क्रियाएँ अर्थ से ही सम्पन्न होती हैं। सुखद मानव जीवन की जितनी भी व्यवस्थाएँ हैं, वे सभी इस अर्थ से ही व्यवस्थित होती हैं। एक गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी व संन्यासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की योग्यता, इस अर्थ से ही प्राप्त करता है। अर्थ, संसार की सर्वाधिक अभीष्ट वस्तु है क्योंकि धर्म और काम की सिद्धि भी इसी के हाथों से होती है। अर्थ को पुरुषार्थ का एक प्रमुख अंग माना है और उसका स्थान 'धर्म' के उपरान्त निर्धारित किया है। भारतीय संस्कृति में अर्थ का बहुत महत्व है। वेद में अर्थ को 'वसु' कहकर संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में ऋषि ने अनुपक्षितं वसु की कामना की है अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना की है।[15] अर्थ का मूल है- वृत्ति अर्थात् आजीविका। अर्थ पर ही धर्म और काम निर्भर हैं।[16] अर्थ पुरुषार्थ से तात्पर्य मात्र धन या पैसे अथवा सम्पत्ति से नहीं है। यहाँ अर्थ का मतलब है- चाही गई वस्तु अथवा अभिलषित पदार्थ। क्योंकि अर्थ सभी का प्रिय पदार्थ है इसलिए सभी अर्थ को प्राप्त करना चाहते हैं। प्राणियों के सुख व समृद्धि का मूल है अर्थ, इस पुरुषार्थ से मनुष्य के इस लोक और परलोक के समस्त प्रयोजनों की प्राप्ति होती हैं।[17]

महाभारत के शांतिपर्व में अर्थ के महत्व की चर्चा करते हुए अर्जुन युधिष्ठिर से कहते है कि "बिना अर्थ सिद्धि के धर्म और काम अपूर्ण होंगे यह पृथ्वी कर्मभूमि है, इसलिए इसमें प्रवृत्तिपरक कर्म ही प्रमुख हैं। धन प्राप्ति के विषय में उल्लेख है "कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और विविध शिल्पकर्मों के द्वारा अर्थ की उपलब्धि होती है। अर्थ ही समस्त कर्मोंकी मर्यादाके पालनमें सहायक है। अर्थके बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते- ऐसा श्रुतिका कथन है। धनवान् मनुष्य धनके द्वारा उत्तम धर्मका पालन और अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये दुर्लभ कामनाओंकी प्राप्ति कर सकता है, श्रुतिका कथन है कि धर्म और काम अर्थके ही दो अवयव हैं। अर्थकी सिद्धिसे उन दोनोंकी भी सिद्धि हो जायेगी।[18] शांतिपर्व में अर्जुन युधिष्ठिर से कहते हैं कि जैसे सम्पूर्ण नदियाँ पहाड़ों से निकलकर धीरे-धीरे विस्तार पाती हैं, उसी प्रकार धन एवं आर्थिक साधनों से ही सम्पूर्ण कार्य पूर्ण किए जा सकते हैं। धन के बिना मनुष्यों का धर्म, काम एवं प्राण-यात्रा का निर्वाह भी नहीं हो सकता। धनवान् के ही मित्र और बान्धव हैं धनसे धर्मका पालन, कामनाकी पूर्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, हर्षकी वृद्धि, क्रोधकी सफलता, शास्त्रोंका श्रवण और अध्ययन तथा शत्रुओंका दमन - ये सभी कार्य सिद्ध होते हैं। धनसे कुलकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और धनसे ही धर्मकी वृद्धि होती है। पुरुषप्रवर ! निर्धनके लिये तो न यह लोक सुखदायक होता है, न परलोक निर्धन मनुष्य धार्मिक कृत्योंका अच्छी तरह अनुष्ठान नहीं कर सकता।[19] जिसके पास धनकी कमी है, गौएँ और सेवक भी कम हैं तथा जिसके यहाँ अतिथियोंका आना-जाना भी बहुत कम हो गया है, वास्तवमें वही कृश (दुर्बल) कहलाने योग्य है। जो केवल शरीरसे कृश है, उसे कृश नहीं कहा जा सकता।[20]

काम-काम्यते इति कामः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार, विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली इच्छा ही काम है। दूसरे शब्दों में, सुख-भोग रूपी आनन्द का अनुभव करना काम है। संसार के विषयों को भोगने की इच्छापूर्ति का दूसरा नाम काम है। काम के बिना प्राणियों की उत्पत्ति जीवन निर्वाह एवं सुख की प्राप्ति ही असंभव है। काम मनुष्य जीवन की सहज प्रवृत्ति है जो उसके इन्द्रिय सुख से संबंधित है। शास्त्र में काम के दो भाव बताए गये हैं "कामस्य द्वे भावे रतिश्च प्रीतिश्च।" संकुचित अर्थ में काम शब्द स्त्री-पुरुष के बीच सम्भोग जनित सुख (रतिः) है। वहीं इसका अन्य भाव पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के विषयों के उपभोग से उत्पन्न सुख (प्रीतिः) काम कहलाता है। भारतीय

परम्परा में गार्हस्थ्य जीवन व्यक्ति और समाज दोनों ही दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। साथ ही व्यक्तिगत दृष्टि से भोगों को भोगने के बाद ही उसकी निःसारता का मान होता है। एवं उससे उत्पन्न होनेवाला वैराग्य मोक्ष साधना के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार 'काम' में कामना एवं वासना दोनों का निवेशन है। दोनों ही मनुष्य की प्रवृत्तियों में प्रमुख हैं, जो उसके मन को उद्वेलित करती हैं, जिनमें क्रमशः स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, अनुराग, सौन्दर्य-प्रियता एवं आकर्षण हैं। संतान प्राप्ति, परिवार वंश की निरंतरता और पितृ ऋण से मुक्ति काम के ही कारण हैं ,किन्तु काम के वशीभूत होकर धर्म का कभी भी त्याग नही करना चाहिए। कौटिल्य ने काम को अन्तिम श्रेणी में रखा है तथा बिना धर्म एवं अर्थ को बाधा पहुँचाए इसका पालन करने के लिए कहा है।[21] वात्स्यायन ने कामसूत्र में कहा है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपने मन के संकल्प के अनुसार अपने अपने विषयों के प्रति सुखानुभूति के कारण जो प्रवृत्ति होती है, उसे काम कहते हैं। काम मन का या चित्त का बीज है वह ईश्वर के निष्काम हृदय में पहले सदा से ही वर्तमान है। तत्वदर्शी मनीषियों ने अपने हृदय में सबके बन्धु इस काम का दर्शन किया है। यह काम धर्मद्रुम का पुष्प है। काम को मन का एक संकल्प माना जाता है।[22]काम में चित्त का आकर्षण स्वयमेव होता है। यद्यपि अर्थ धर्म का साधन है परन्तु अर्थ की ओर मनुष्य समाज की प्रवृत्ति काम का ही प्रधान साधन समझ-कर होती है, न कि धर्म का मुख्य साधन मानकर। सुख से मनुष्य अतृप्त रहता है, इस कारण सुख की कामना सबको रहती है। पूर्णता का अभाव एवं अपूर्णता की अनुभूति को ही कामना कहकर पुकारते हैं। कामना मन की वासना की जननी है। सुख पाने की लालसा में मन काम अर्थात् वाह्य विषयों के पीछे दौड़ता रहता है। शांतिपर्व के आपद्धर्म पर्व में काम के प्रसङ्ग में इच्छाओं और कामनाओं की महत्ता पर बल देते हुए पाण्डु-पुत्र भीम युधिष्ठिर को कहते है कि "निष्काम पुरुष अर्थ या धन की इच्छा नहीं करता। कामहीन मनुष्य धर्म के अभिलाषी नहीं होते, इसलिए कामना ही उत्तम है। कृषक, पशुपालक, शिल्पी सभी व्यक्ति अपनी कामनाओं के अनुसार ही कार्यों में संलग्न रहते हैं। सभी प्राणी कामना रखते हैं। उससे भिन्न कामना-रहित प्राणी न कहीं है, न कभी था और न भविष्यमें होगा ही, अतः यह काम ही त्रिवर्गका सार है। महाराज ! धर्म और अर्थ भी इसीमें स्थित है जैसे दही से मक्खन, तिल से तेल मट्ठे से घृत, काष्ठ से फूल और फल तथा पुष्प से मधु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार धर्म और अर्थ से काम उत्तम है। इच्छा न होने पर लोग ब्राह्मणों को दान भी नहीं देते। फलतः धर्म-अर्थ-काम के इस त्रिवर्ग में काम ही प्रधान है। जो मनुष्य इन तीनों में से एक का सेवन करता है, वह जघन्य है, धर्म और अर्थ का सेवन करने वाला मनुष्य मध्यम है और तीनों विषयों का सेवन करने वाला पुरुष उत्तम है।[23]

मोक्ष - मानव जीवन की सार्थकता जिस गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर चिर शान्ति को प्राप्त होती है वही मोक्ष है। मोक्ष भारतीय दर्शन का आधारभूत एवं सर्वमान्य प्रत्यय है। मोक्ष का चिन्तन भारतीय संस्कृति के समस्त शास्त्रों के मूल में रहा है। पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा में मोक्ष को साध्य अथवा परमपुरुषार्थ मानकर अन्य तीन पुरुषार्थों को इस साध्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि धर्म, अर्थ और काम के लिए त्रिवर्ग या त्रिसाधन शब्द का प्रयोग किया जाता है, किंतु इससे यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि मोक्ष नामक पुरुषार्थ अन्यों की अपेक्षा अधिक अभीष्ट या श्रेष्ठ है। चारों ही पुरुषार्थ वागर्थाविव सम्प्रक्तौ की भाँति एक-दूसरे से संशिलिष्ट है तथा आपस में एक दूसरे के सहयोगी हैं ,साधारणतः मोक्ष का अर्थ जीवन से मुक्ति प्राप्त करने से लिया जाता है। मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति 'मुक्त' धातु से हुई है जिसका अभिप्राय है मुक्त करना अथवा स्वतंत्र करना। अतः मोक्ष का अर्थ है आत्मा की मुक्ति। जन्म एवं पुनर्जन्म से छुटकारा तथा इस संसार के आवामन से मुक्ति ही मोक्ष है। मोक्ष आध्यात्मिक जीवन का उच्चतम एवं अन्तिम आदर्श है। मनुष्य का धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन मोक्ष के मार्ग पर तभी अग्रसर होकर प्रकाशमान होता है जब उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। भारतीयों ने मोक्ष को अन्तिम पुरुषार्थ माना है। भोगायतन का भोगों के बन्धन से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगने के कारण शरीर भोगायतन कहलाता है। भारतीय मनीषियों ने मोक्ष का इतना तार्किक एवं गम्भीर विवेचन उपस्थित किया है कि इसे सम्पूर्ण आध्यात्म शास्त्र का उत्तम फल मानना श्रेयस्कर है।

महाभारत के शांतिपर्व के मोक्ष धर्म प्रकरण में गुरु-शिष्य-सम्वाद द्वारा मोक्ष का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए उल्लेख किया गया है कि जीवात्मा का परमात्मा से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करना ही मोक्ष है। इसी उपपर्व में पञ्चशिख का कथन है कि आत्मा को छोड़ कर शेष सब नाशवान् है और मोक्ष का अर्थ है उस अमरत्व की प्राप्ति। इस विषय में एक बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि यद्यपि प्रलयकाल में सभी प्राणी अपने-अपने कारण में समा जाते हैं तथा एकमात्र परब्रह्म ही शेष रहता है ,तथापि ज्ञानाग्नि द्वारा जिनके स्थूल एवं सूक्ष्मशरीरादि दग्ध हो गए हैं, ऐसे ज्ञानीजन हमेशा के लिए परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करते हैं और उनका मोक्ष हो जाता है। जबकि जो जीव देवभाव को प्राप्त थे, वे यदि अपने कर्मफलों का भोग समाप्त करने से पहले ही लय को प्राप्त हो जाते हैं, तो कल्पान्तर में पुनः प्रजा की सृष्टि होने पर शेष फलभोग हेतु उन्हीं स्थानों को प्राप्त करते हैं, जहाँ पूर्व कल्प में स्थित थे।[24] किंतु संतानोंके प्रति आसक्तिके कारण और भिन्न-भिन्न देवताओंकी प्रसन्नताके लिये अज्ञानियों द्वारा जो सकाम कर्म किये जाते हैं, ये सब मनुष्यके लिये नाना प्रकारके सुदृढ़ बन्धन हैं। जब वह इन बन्धनोंसे छूटकर सुख-दुःखकी चिन्ता छोड़ देता है, उस समय सूक्ष्म शरीरके अभिमानका त्याग करके सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त कर लेता है यहाँ सूक्ष्मशरीर के प्रति अभिमान का त्याग, मोक्ष प्रदान करने वाला बताया गया है। उस स्थिति में व्यक्ति सांसारिक बन्धनों से छूटकर मुक्त हो जाता है। जब पुण्य और पापका क्षय तथा उनसे मिलनेवाले सुख-दुःख आदि फलोंका नाश हो जाता है, उस समय सम्पूर्ण पदार्थोंमें सर्वथा आसक्तिसे रहित पुरुष आकाशके समान निर्लेप और निर्गुण परमात्मामें स्थित हुए उसका साक्षात्कार कर लेते हैं। जैसे मकड़ी जाला तानकर उसपर चक्कर लगाती रहती है; किंतु उन जालोंका नाश हो जानेपर एक स्थानपर स्थित हो जाती है, उसी प्रकार अविद्याके वशीभूत हो नीचे गिरनेवाला जीव कर्मजालमें पड़कर भटकता रहता है और उससे छूटनेपर दुःखसे रहित हो जाता है। जैसे पर्वतपर फेंका हुआ मिट्टीका ढेला उससे टकराकर चूर-चूर हो जाता है, उसी प्रकार उसके सम्पूर्ण दुःखोंका विध्वंस हो जाता है। जैसे रुरुनामक मृग अपने पुराने सींगको और साँप अपनी केंचुलको त्यागकर उसकी ओर देखे बिना ही चल देता है, उसी प्रकार ममता और अभिमानसे रहित हुआ पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो अपने सम्पूर्ण दुःखोंको दूर कर देता है।[25] जैसे नद और नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम और व्यक्तित्व (रूप) को त्याग देती हैं तथा जैसे बड़े-बड़े नद छोटी-छोटी नदियोंको अपनेमें विलीन कर लेते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मामें विलीन हो जाता है यही मोक्ष है।[26]

निष्कर्ष – इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्टय के चारों वर्गों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन चारों के मध्य में घनिष्ठ अन्तःसम्बन्ध है। धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्गों में तीनों का संतुलित अनुष्ठान ही लाभकारी होता है। इनमें से किसी भी एक का संतुलित अनुपात से अधिक मात्रा में अनुसरण नहीं करना चाहिये जिसके कारण अन्य वर्गों की प्राप्ति में बाधा पहुँचने लगे। समभाव से सेवित धर्म, अर्थ और काम-ये तीनों ही पुरुषार्थ वस्तुतः निर्मल और निर्दोष होते हैं, अतः इनके संतुलित एवं सम्यक् अनुष्ठान से चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष अनायास ही सिद्ध हो जाता है। अतः त्रिवर्ग मोक्षरूप साध्य का साधन है। मानव जीवन

सभी विषय इन्हीं पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत हैं । मानव समाज का सम्पूर्ण हित इसी में समाहित है । भारतीय संस्कृति का यह जीवन-दर्शन विश्व का अकेला और अनुपम दर्शन है, जिसमें जीवन के प्रति यदि मोह है तो योग भी है, बन्धन है तो मुक्ति भी है, आसक्ति हैं तो त्याग भी है । इस प्रकार भारतीय जीवन दर्शन में भौतिकता एवं सांसारिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का भी संगम है । नियम एवं संयम पूर्वक पुरुषार्थ की नियोजना व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित एवं संतुलित आधार प्रदान करने के लिए की गयी थी । यदि पृथक-पृथक रूप से पुरुषार्थ-चतुष्टय पर दृष्टि डाली जाये तो इनमें से धर्म वह पुरुषार्थ है जिसके मूल में ही अन्य तीनों पुरुषार्थों की प्रवृत्ति समाहित है । क्योंकि धर्म से रहित अर्थ, काम और मोक्ष की पुरुषार्थता असम्भव है । धर्म प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक के भेद से दो प्रकार का होता है । धर्म जब प्रवृत्तिपरक होता है तो इस से आगे के दो पुरुषार्थ अर्थात- अर्थ और काम अपनी पुरुषार्थता को प्राप्त करते हैं तथा जब यह निवृत्तिपरक होता है तो मोक्ष नामक परमपुरुषार्थ का प्राकट्य होता है, प्रादुर्भाव होता है ।

****

संदर्भ :-

1. उत्थाने च सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर । न ह्यत्थानमृते देवं राज्ञामर्थप्रसिद्धये ॥
साधारणं द्वयं ह्येतदैवमुत्थानमेव च । पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चित्यमुच्यते ॥ महा. शान्ति अ. 56. 14-15
2. वामन शिवराम आप्टे के द्वारा रचित संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ.सं. 489
3. यतो अभ्युदयनि:श्रेयससिद्धिः स धर्मः । वैशेषिक सूत्र. 1/1/1
4.आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च । तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ मनुस्मृति . 108
5. श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति 1/7
6.धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। यस्माद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥ महा. कर्ण अ. 69/59
7.ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त, यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् । दिवो धर्मन्धरूणे सेदुषो नृञ्जातैरजातां अभि ये ननक्षुः॥ ऋग्वेद 5/16/ 2
8.धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति । धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्माद धर्मं परमं वदन्ति तैत्तिरीयारण्यकम् 10/63
9.तस्माद् धर्मप्रधानेन भवितव्यं यतात्मना । तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि ॥ महा. शान्ति अ. 167/9
10. धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः। यः स्याद् युक्तः स धर्म इति निश्चयः॥ महा. शान्ति अ. 109/11
11. सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम । चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥
अपि ह्युक्तानि धर्याणि व्यवस्यन्त्युत्तरावरे । लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः ॥ महा. शान्ति अ. 259/ 3-4
12 . यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः । न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥ महा. शान्ति अ 259/20
13. धर्मेवर्धतिवर्धन्तिसर्वभूतानिसर्वदा । तस्मिन् ह्रसति ह्रीयन्ते तस्माद् धर्मं न लोपयेत् ॥ महा. शान्ति अ . 90/17 14. अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः। या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले ॥
सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः। कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ॥ महा. शान्ति अ . 262/6 ,9
15. न नो रास्व सह स्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु । द्युमत् अग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठं अनुपक्षितम्॥ ऋग्वेद 3/13/7
16. वृत्तिमूलम् अर्थः अर्थमूलो धर्म कामौ । चाणक्य सूत्र. 1/89-90
17 . "यतः सर्वप्रयोजन सिद्धिः सोऽर्थः । नीतिवाक्यामृत . 2/1
18 . महा. शान्ति अ . 167 /11 – 14
19 . महा. शान्ति अ . 8 /16-20
20 . कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः । स वै राजन् कृशो नाम न शरीरकृशः कृशः ॥ महा. शान्ति अ. 8/24
21 . "धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत्" अर्थशास्त्र . 17
22 . कामस्तदग्रे समवर्ततताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् । सतो बन्धुमसति निरभिन्दन् हृदा प्रतीच्या कवयो मनीषा ॥10.129/4
23 . महा. शान्ति अ . 37 /167
24 . संहारकाले परिदग्धकाया ब्रह्माणमायान्ति सदा प्रजा हि।
चेष्टात्मनो देवगणाश्च सर्वे ये ब्रह्मलोकादपराः स्म तेऽपि ॥
प्रजाविसर्गं तु सशेषकाले स्थानानि स्वान्येव सरन्ति जीवाः।
निःशेषस्तत्पदं यान्ति चान्ते सर्वे देवा ये सदृशा मनुष्याः ॥ महा. शान्ति अ. 280 /51-52
25. यथोर्णनाभिःपरिवर्तमान-स्तन्तूक्षये तिष्ठति पात्यमानः ।
तथा विमुक्तः प्रजहाति दुःखं विध्वंसते लोष्ट इवाद्रिमूर्च्छन् ॥
यथा रुरुः शुङ्गमथो पुराणं हित्वा त्वचं वाप्युरगो यथा चा
विहाय गच्छत्यनवेक्षमाण-स्तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम् ॥ महा. शान्ति अ. 219/47-48
26. यथार्णवगता नद्यो व्यक्तीर्जहति नाम च । नदाश्च ता नियच्छन्ति तादृशः सत्त्वसंक्षयः ॥ महा. शान्ति अ. 219/42
1 . महाभारत महर्षि वेद व्यास शांतिपर्व डॉ पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय-मण्डल,भारत मुद्रणालय किल्ला पारडी जिला बलसाड गुजरात 1971
2 . महाभारत महर्षि वेद व्यास गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण सम्वत् 2078
3 . ऋग्वेद सहिंता भाग - 4 पं श्रीराम शर्मा आचार्य युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा संस्करण 2013
4. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली
5. मनुस्मृति मनु अनुवादक शिवराज आचार्य कौण्डिन्नयायनः चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2016
6. याज्ञवल्क्यस्मृतिः महर्षि याज्ञवल्क्य हिंदीव्याख्याकार डा गङ्गासागरराय चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली संस्करण 2011
7. अर्थशास्त्र कौटिल्य व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 1996

डिजिटल युग : हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर प्रभाव

डॉ.राकेश कुशवाहा
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
सेंट अलॉयसियस इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी,गौर,जबलपुर,म.प्र
rakeshkushwaha0761@gmail.com

शोध सारांश -डिजिटल युग ने हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के स्वरूप, प्रसार तथा अभिव्यक्ति में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, ब्लॉग, ई-पत्रिकाएँ, ई-पुस्तकें और डिजिटल मंचों के माध्यम से हिन्दी का वैश्विक विस्तार हुआ है। आज हिन्दी केवल मुद्रित माध्यम तक सीमित न रहकर डिजिटल संवाद की सशक्त भाषा बन गई है। इससे नए लेखकों को मंच मिला है तथा पाठक और लेखक के बीच सीधा संवाद संभव हुआ है।

डिजिटल माध्यमों ने साहित्यिक विधाओं को भी नया रूप दिया है। लघुकथा, ब्लॉग लेखन, वेब-कविता और डिजिटल कहानी जैसी नई प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। साथ ही, ऑडियो-बुक, पॉडकास्ट और वीडियो सामग्री ने साहित्य को बहु-आयामी बनाया है। हालांकि, रोमन लिपि का बढ़ता प्रयोग, भाषा की शुद्धता में कमी और अंग्रेज़ी शब्दों का अत्यधिक मिश्रण जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।संस्कृति के क्षेत्र में डिजिटल युग ने लोकसंस्कृति, परंपराओं और सांस्कृतिक आयोजनों को वैश्विक मंच प्रदान किया है। डिजिटल अभिलेखन से सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण संभव हुआ है। इस प्रकार, डिजिटल युग हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए अवसर और चुनौतियाँ—दोनों लेकर आया है, जिनका संतुलित उपयोग आवश्यक है।

मुख्यशब्द : डिजिटल युग, हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य, संस्कृति, सोशल मीडिया, डिजिटल माध्यम

भूमिका-इक्कीसवीं सदी को डिजिटल युग के रूप में पहचाना जाता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को गहराई से प्रभावित किया है। इंटरनेट, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा डिजिटल प्लेटफॉर्म ने न केवल हमारे सोचने, समझने और संवाद करने के तरीकों को बदला है, बल्कि भाषा, साहित्य और संस्कृति की संरचना को भी नए आयाम प्रदान किए हैं।

हिन्दी भाषा, जो लंबे समय तक पुस्तकों, पत्रिकाओं और मौखिक परंपराओं के माध्यम से विकसित होती रही, आज डिजिटल माध्यमों में सक्रिय उपस्थिति दर्ज करा रही है। डिजिटल युग ने हिन्दी साहित्य को नए पाठक दिए हैं और हिन्दी संस्कृति को वैश्विक मंच प्रदान किया है। साथ ही, यह युग कुछ चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है, जैसे भाषा की शुद्धता, साहित्यिक गुणवत्ता और सांस्कृतिक मौलिकता का संकट।

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य डिजिटल युग में हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना तथा इसकी संभावनाओं और चुनौतियों को रेखांकित करना है।

डिजिटल युग की संकल्पना और विशेषताएँ-डिजिटल युग आधुनिक मानव सभ्यता का वह चरण है जिसमें सूचना, संचार और ज्ञान का आदान-प्रदान डिजिटल तकनीकों के माध्यम से तीव्र, सरल और व्यापक रूप में होने लगा है। यह युग मुख्यतः कंप्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल फोन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा सूचना प्रौद्योगिकी के विकास का परिणाम है। डिजिटल युग ने मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों—शिक्षा, व्यापार, शासन, स्वास्थ्य, मनोरंजन और सामाजिक संबंधों—को गहराई से प्रभावित किया है।डिजिटल युग की संकल्पना सूचना को डिजिटल रूप में संग्रहित, प्रसारित और विश्लेषित करने की क्षमता पर

आधारित है। इसमें समय और स्थान की सीमाएँ लगभग समाप्त हो गई हैं। आज विश्व एक 'वैश्विक गाँव' के रूप में परिवर्तित हो चुका है, जहाँ सूचनाएँ क्षणभर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाती हैं।

डिजिटल युग की प्रमुख विशेषताओं में तीव्र संचार प्रणाली सबसे महत्वपूर्ण है। ई-मेल, सोशल मीडिया, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और मैसेजिंग ऐप्स ने संवाद को सरल और त्वरित बनाया है। दूसरी विशेषता सूचना की सुलभता है, जहाँ इंटरनेट के माध्यम से विशाल ज्ञान कुछ ही क्षणों में उपलब्ध हो जाता है। ई-गवर्नेंस और डिजिटल भुगतान ने प्रशासन और अर्थव्यवस्था को पारदर्शी और कुशल बनाया है। ऑनलाइन शिक्षा और ई-लर्निंग ने सीखने की प्रक्रिया को लचीला और व्यापक बनाया है।

इस प्रकार डिजिटल युग ने मानव जीवन को सुविधाजनक, तेज़ और प्रभावी बनाया है। यद्यपि इसके साथ कुछ चुनौतियाँ भी हैं, फिर भी यह युग प्रगति, नवाचार और वैश्विक संपर्क का प्रतीक है।

हिन्दी भाषा पर डिजिटल युग का प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव

डिजिटल युग ने हिन्दी भाषा को वैश्विक पहचान प्रदान की है। आज सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, वेबसाइटें, ब्लॉग, न्यूज़ पोर्टल और मोबाइल एप्लिकेशन हिन्दी में उपलब्ध हैं। यूनिकोड तकनीक के आने से हिन्दी टाइपिंग और प्रकाशन सरल हुआ है। गूगल ट्रांसलेशन, वॉयस टाइपिंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित उपकरणों ने हिन्दी के प्रयोग को और अधिक सुलभ बनाया है।

डिजिटल माध्यमों ने युवाओं को हिन्दी में अभिव्यक्ति के नए अवसर दिए हैं। फेसबुक, इंस्टाग्राम, एक्स (ट्विटर) और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म पर हिन्दी में विचार, कविताएँ, कहानियाँ और लेख व्यापक रूप से साझा किए जा रहे हैं। इससे हिन्दी भाषा की जीवंतता बनी हुई है।

नकारात्मक प्रभाव

जहाँ एक ओर डिजिटल युग ने हिन्दी का विस्तार किया है, वहीं दूसरी ओर भाषा की शुद्धता पर प्रश्नचिह्न भी लगाया है। हिंग्लिश और रोमन लिपि का बढ़ता प्रयोग हिन्दी की देवनागरी लिपि को चुनौती देता है। संक्षिप्त भाषा, अशुद्ध वर्तनी और व्याकरणिक त्रुटियाँ आम होती जा रही हैं।इस प्रकार, डिजिटल युग हिन्दी भाषा के लिए अवसर और संकट— दोनों लेकर आया है।

डिजिटल युग में हिन्दी साहित्य का स्वरूप

डिजिटल युग ने हिन्दी साहित्य के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। परंपरागत पुस्तक और पत्रिका के साथ-साथ अब ई-पुस्तकें, ई-पत्रिकाएँ और वेब साहित्य सामने आए हैं। ब्लॉग लेखन ने साहित्य को व्यक्तिगत और आत्मीय स्वर दिया है।

नई साहित्यिक विधाएँ जैसे माइक्रो कविता, डिजिटल कहानी, वेब-नाटक और सोशल मीडिया साहित्य उभरकर सामने आए हैं। इंस्टाग्राम कविता और फेसबुक कहानी जैसे प्रयोग साहित्य को नई पीढ़ी से जोड़ रहे हैं।

डिजिटल माध्यमों ने साहित्य का लोकतंत्रीकरण किया है। अब प्रकाशकों की बाध्यता कम हो गई है और नवोदित लेखक सीधे पाठकों तक पहुँच सकते हैं। लेखक और पाठक के बीच संवाद संभव हुआ है, जिससे साहित्य अधिक जीवंत और समसामयिक बन गया है।

हालाँकि, डिजिटल साहित्य में गुणवत्ता, संपादन और स्थायित्व जैसे प्रश्न भी उठते हैं, जिन पर गंभीर विमर्श आवश्यक है।

डिजिटल माध्यम और हिन्दी संस्कृति

डिजिटल युग ने हिन्दी संस्कृति के संरक्षण और प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोकगीत, लोकनृत्य, पारंपरिक कथाएँ और सांस्कृतिक अनुष्ठान डिजिटल रूप में संरक्षित किए जा रहे हैं। यूट्यूब और ओटीटी प्लेटफॉर्म पर हिन्दी फिल्में, वेब-सीरीज़ और संगीत वैश्विक दर्शकों तक पहुँच रहे हैं।डिजिटल माध्यमों ने प्रवासी भारतीयों को अपनी भाषा और संस्कृति से जोड़े रखा है। साथ ही, विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं का आपसी संवाद भी बढ़ा है।इस प्रकार, डिजिटल युग हिन्दी संस्कृति को सीमाओं से मुक्त कर वैश्विक पहचान प्रदान करता है।

चुनौतियाँ एवं समस्याएँ

डिजिटल युग में हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं। डिजिटल विभाजन के कारण सभी वर्गों तक तकनीक की समान पहुँच नहीं है। व्यावसायिकता के बढ़ते प्रभाव से भाषा और साहित्य का बाजारीकरण हो रहा है।

कॉपी-पेस्ट संस्कृति और त्वरित लोकप्रियता की प्रवृत्ति से मौलिकता और गहराई प्रभावित होती है। साहित्यिक गुणवत्ता बनाए रखना एक बड़ी चुनौती बन गई है।

संभावनाएँ एवं भविष्य की दिशा

डिजिटल युग में हिन्दी के लिए अपार संभावनाएँ हैं। यदि तकनीक और भाषा के बीच संतुलन बनाया जाए, तो हिन्दी वैश्विक स्तर पर और अधिक सशक्त हो सकती है। शिक्षा, शोध और रचनात्मकता के क्षेत्र में डिजिटल माध्यम हिन्दी के विकास का सशक्त साधन बन सकते हैं।

आवश्यक है कि हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति को तकनीक के साथ सजगता और जिम्मेदारी के साथ जोड़ा जाए।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डिजिटल युग ने हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को नए आयाम दिए हैं। यह युग अवसरों और चुनौतियों का संगम है। यदि भाषा की शुद्धता, साहित्य की गुणवत्ता और सांस्कृतिक मौलिकता को बनाए रखते हुए डिजिटल माध्यमों का उपयोग किया जाए, तो हिन्दी न केवल जीवित रहेगी, बल्कि वैश्विक मंच पर और अधिक समृद्ध होगी।

****

संदर्भ सूची

1. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. नामवर सिंह – साहित्य और समाज
3. डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी भाषा का विकास
4. विभिन्न हिन्दी ई-पत्रिकाएँ एवं शोध लेख
5. विश्वसनीय डिजिटल एवं शैक्षिक वेबसाइटें

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

हिन्दी सिनेमा में दलित पात्रों की छवि

कमला रॉय
(शोधार्थी)
डॉ. सुषमा कुमारी
(एसोसिएट प्रोफेसर)
मिज़ोरम विश्वविद्यालय,आइजोल-796004 फोन न.-8285487667

शोध सार:-सिनेमा हो या साहित्य, दोनों ही समय-समय पर समाज के दर्पण के रूप में भी उभरते रहे हैं। यानी समाज में जो कुछ भी घटित होता है वो साहित्य और सिनेमा में भी दिखाई देता है।हिंदी सिनेमा में दलितों की छवि किस प्रकार की प्रस्तुत की गई है, इसकी पड़ताल इस आलेख के माध्यम से की जाएगी। दलितों की सामाजिक स्थिति और उनके सिनेमाई रूपांकन का अवलोकन करते समय यह देखा जा सकता है कि कई बार उनके व्यक्तित्व और रूप-रंग को केवल मेकअप और बाहरी दिखावे से गढ़ा जाता है। यदि हम दलित समाज की समस्याओं पर दृष्टिपात करें, तो पाएँगे कि वे शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक – लगभग सभी स्तरों पर लंबे समय तक हाशिए पर रखे गए हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि हम सिनेमा के माध्यम से यह जानने का प्रयास करें कि सिनेमा की लोकप्रिय संस्कृति में उन्हें किस प्रकार चित्रित किया गया है।

बीज शब्द :दलित, सिनेमाई रूपांकन, दलित अस्तित्व, सौंदर्य-विधान, विरोधाभास प्रसंगों, आकर्षक, वास्तविक संघर्ष, संस्कृति, सामाजिक स्थिति, व्यंग्य, लैंगिक पक्ष, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक।

मूल आलेख - कुछ दशक से हिन्दी सिनेमा में दलित समुदाय पर, पूर्व की फिल्मों की तुलना में अधिक ध्यान देने का प्रयास किया गया है। 'चार दिल चार राहें' 1959, 'चिरूथा' 1981, सौतन 1983, पिता 2002, जैसी फिल्में पूर्ण रूप से दलित प्रश्न को केंद्र में नहीं लातीं, किन्तु इनके विभिन्न प्रसंगों में उसका आभास अवश्य मिलता है। 'रूदाली', 'मसान', 'आर्टिकल15', 'गुठली लड्डू' और 'धड़क 2'जैसे फिल्मों को देखा जा सकता है, जिसमें दलित को केन्द्र में रखा गया है,जहाँ दलित या वंचित वर्ग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चित्रित हुए हैं ।लेकिन शुरूआती दौर से ही, हिन्दी सिनेमा में दलितों की प्रस्तुति ज्यादातर कमजोर, गंदे-मैले, फटे हाल में किया गया है। सही ढंग से इन पात्रों की प्रस्तुति बहुत कम हुई है और यह सोचने वाली बात है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या केवल दलितों को हिन्दी सिनेमा मैले-कुचैले रूप में ही दिखाता रहेगा? क्या ये समाज इसी तरह दिखाई दे सकते हैं? क्या वे हर समय हाशिये पर पड़े, दीन-हीन और अस्वच्छ ही प्रतीत होंगे? समाज किस आधार पर यह मान सकता है कि दलित स्वच्छ वस्त्र धारण नहीं कर सकते?या सम्मानजनक रूप में उपस्थित नहीं हो सकते? वस्तुतः वस्त्रों का अभाव तो उस व्यक्ति में भी हो सकता है जो आर्थिक रूप से कमजोर है, सीधे-सीधे जातिगत पहचान से जुड़ा हुआ होना आवश्यक नहीं हैं। यदि दलित केवल दीन-हीन, मैला और लाचार समझे जाते तो आज वे अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत और संगठित नहीं हो पाते। वास्तविकता यह है कि दलित समुदाय अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है और उनके लोग सशक्त होकर अब वंचितों की आवाज उठाने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। इसीलिए यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि हर दलित व्यक्ति को मैला,लाचार और निर्बल के रूप में सीमित करके दिखाना न केवल एकपक्षीयदृष्टि है बल्कि उनके वास्तविक संघर्ष और उपलब्धियों का भी हनन है ।यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य है कि दलित पात्रों की छवि किस रूप में प्रस्तुत की जाती है। उदाहरण स्वरूप, 'चार दिल चार राहें' 1959, में 'मीना कुमारी' (चावली) को एक दलित स्त्री के रूप में प्रस्तुत करने के लिए उनको पूरी तरह सांवले रंग का दिखाया है, जबकि असल जिंदगी में वे बहुत ही खूबसूरत महिला थीं। 'सौतन' फ़िल्म (1983) में गोपाल बाबू जो किएक हरिजन हैं उनको भी सांवले रंग में प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह कई फिल्मों में भी दलित पात्रों को साफ-सुथरा न दिखाकर रूप रंग से सांवलाया गंदे रूप में दिखाया गया है। 'गुठली लड्डू' (2023) में दो दलित (भंगी) बच्चे जिनको एकदम निर्बल और कमजोर दिखाया है, जिसके शरीर पर कपड़े के नाम पर गंदा फटा मैला वस्त्र रहता है। उन दोनों के मन में शिक्षा की ललक रहती है, लेकिन बाधा है उनकी जाति। यह एक विरोधाभास एवं व्यंग्य की तरह प्रतीत होता है कि वास्तव में समाज दलितों के अस्तित्व को कैसे देखना चाहता है।

हालांकि कुछ फिल्में हैं जिसमें दलितों को साफ-सुथरे वस्त्र और सही रूप रंग में दिखायागया है। जैसे प्रकाश झाकी 'आरक्षण' (2015) औरसार्थक दासगुप्ता '200हल्ला हो' (2021)।'आरक्षण' केदीपक कुमार (सैफ अली खान) '200 हल्ला हो' की 'आशा' (रिंकू राजगुरू) जिसमें पढ़े-लिखे दलित नायक - नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जो अपने अधिकार की भी बात करतेहैं। धड़क 2 में सिद्धांत चतुर्वेदी, जो कि एक दलित पात्र है उसे साधारण कपड़े व साँवले रंग में दिखाया गया है। दिक्कत यह है कि जब एक दलित पात्र किसी गीत-संगीत के प्रसंग में आता है तोभव्य और सजे-संवरे रूप में पर्दे पर दिखाया जाता है। यह विरोधाभास अपने-आप में संकेत करता है कि हमारे सामाजिक दृष्टिकोण में दलितों की छवि किस प्रकार गढ़ी गई है या बनी हुई है। यह प्रश्न उठता है कि क्या दलित केवल 'मैले' ही दिख सकते हैं? क्या वे सदैव हीन या हाशिए पर पड़े हुए ही प्रतीत होंगे? क्या समाज यह मान चुका है कि वे स्वच्छ वस्त्र धारण नहीं कर सकते या बेहतर जीवन-शैली नहीं जी सकते? वास्तविकता यह है कि आर्थिक तंगी किसी भी वर्ग को प्रभावित कर सकती हैऔर उसका जाति-विशेष से सीधा संबंध नहीं होता। यदि प्रत्येक दलित केवल अभावग्रस्त अथवा अस्वच्छ जीवन का प्रतीक होता, तो आज दलित समाज अपने अधिकारों के लिए सशक्त प्रतिरोध खड़ा न कर पाता। वस्तुतः कई दलित समुदाय न केवल संघर्षरत हैं बल्कि अपनी आवाज़ को मुखर और व्यवस्थित ढंग से समाज के समक्ष रखने में भी सफल हो रहे हैं। 'लापता लेडीज़' का उदाहरण लें तो वहाँ दलित प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से केंद्र में नहीं है, किन्तु आर्थिक रूप से निर्बल वर्गों का चित्रण अवश्य किया गया है। यहाँ भी देखा गया है कि जिन्हें 'निचले वर्ग' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उन्हें प्रायः कम आकर्षक, दबे-कुचले और उपेक्षित रूप में ही परदे पर दिखाया गया है। विशेष रूप से वेशभूषा और साज-सज्जा (मेकअप) के स्तर पर पात्रों को अक्सर अत्यंत अप्रिय ढंग से दर्शाया जाता है। यदि 'मसान' (2015) फ़िल्मपर दृष्टि डालें तो वहाँ विक्की कौशल, जो कि एक दलित जाति (डोम)का पात्र है, का चरित्र एक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। फिल्म में उनका कार्य श्मशान घाट पर दाह-संस्कार करना है। स्वाभाविक

रूप से, ऐसा कार्य करते समय उनका शारीरिक रूप-रंग आग की लपटों, धुआँ और वातावरण की कठोरता से प्रभावित दिखाई देना स्वाभाविक लगता है।

लेकिन यह भी नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता कि उन्हें विशेष रूप से 'बेचारा' और 'बेबस' दर्शाने के लिए मेकअप और वेशभूषा का चयन उसी प्रकार किया गया, जिससे उनकी सामाजिक- आर्थिक स्थिति और अधिक दयनीय प्रतीत होती है। यह केवल मसान तक सीमित नहीं है। समग्र रूप से देखा जाए तो हिंदी सिनेमा में दलित पात्रों को सशक्त और आत्मनिर्भर रूप में प्रस्तुत करने के उदाहरण अत्यंत दुर्बल ही मिलते हैं। अधिकतर कहानी में ऐसे पात्रों को या तो शोषण, असहायता के प्रतीक के रूप में स्थिर कर देती है, या उन्हें विद्रोह की स्थिति तक लाकर भी अंततः बेबस दिखाने में ही समाप्त हो जाती है। विशेषकर दलित युवकों को कभी-कभार विद्रोही रूप में उद्घाटित किया गया है, लेकिन दलित स्त्रियों का चित्रण और भी अधिक निराशाजनक है। प्रायः उन्हें घरेलू-श्रम या किसी पर निर्भर कार्यों में दिखाया गया है, जैसे ऊँची जातियों के घरों में काम करना, उनके जूठन बटोरना अथवा नौकरानी के रूप में रहना। जैसे-फ़िल्म 'अंकुर' (1973) में सबाना आजमी (दलित स्त्री की भूमिका में)ज़मींदार के घर नौकरानी का काम करती है तथा जिसका जमींदार के बेटे के द्वारा शारीरिक शोषण भी किया जाता है। 'गंगा की सौगंध' (1978) फ़िल्म में रेखा एक दलित स्त्री की भूमिका में है, जो जमींदार के घर में काम करती है और उसके साथ जमींदार दुष्कर्म करने का प्रयास करता है।'गौरैया' (2022) फिल्म में भी गौरैया नाम की दलित स्त्री को पहले बंधुआ मजदूर बनाया जाता है, फिर उसके साथ शारीरिक शोषण किया जाता है।इन दृश्यों से यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि, श्रम का मूल्यांकन जातिगत संरचना के आधार पर किया जाता है और स्त्री-श्रम को दोहरी अस्मिता (जाति और लिंग) के बोझ तले दबा दिया जाता है। इस सन्दर्भ में कुलदीप सिंह का कथन उल्लेखनीय है - 'समाज में रहते हुए नारी भी हाशिए के समाज का हिस्सा है। उनके प्रति भी समाज दोयम दर्जे की मानसिकता रखता है। इस दोयम दर्जे में दलित महिलाएं सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा शोषण का शिकार अधिक होती हैं...।' [1]इतना ही नहीं, अक्सर हिंदी सिनेमा में दलित स्त्रियों को उत्पीड़न का शिकार दिखाया जाता है। 'एक तो नारी ऊपर से दलित। हिन्दी सिनेमा भी दलित महिलाओं के उत्थान के प्रति निष्क्रिय रही है। अब तक के सिनेमाई इतिहास में दलित महिलाओं का चित्रण मात्र वस्तु, बेचारगी, लाचारी आदि के रूप में किया है। जिसको जब चाहा उपयोग किया और फेंक दिया।' [2] यह समाज का और उससे प्रभावित हिन्दी सिनेमा का बहुत बड़ा विडंबना ही है जो उनके संघर्ष या उसके समाधान का रास्ता उन्हें स्वयं निर्मित करने के बजाय, हिन्दी फिल्म की कहानी में अंततः किसी 'मुक्तिदाता' के सहारे को दिखाती है। यह मुक्तिदाता दरअसल सवर्ण पुरुष पात्र ही होते हैं, जो या तो मसीहा की तरह उन्हें बचाता है या उनके जीवन को अर्थ प्रदान करता है। इस प्रकार एक तरफ़ा प्रस्तुतीकरण में दलित स्त्रियों की (सत्ता) को लगभग नकार दिया जाता है।

निष्कर्ष :-हिन्दी सिनेमा में दलित की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया। इस आलेख के माध्यम से हमने यह समझने का प्रयास किया की किस तरह हिन्दी सिनेमा दलित पिछडा वर्ग को सिनेमा के पर्दे पर प्रस्तुत करता है और उनकी असली पहचान को छिपाकर कैसे उनके रूप-रंग को एक रूढ़िबद्ध तरीके से पेश करता है। इनकी दिन -हीन अवस्था की चर्चा बहुत हो चुकी। अब इन्हें भी सम्मान जनक प्रस्तुति की आवश्यकता है। समय के साथ-साथ अब दलित समुदाय के लोगो में जागृति आ रही और चेतना जाग रही है।लोग जागरूक हो रहे हैं। हिन्दी सिनेमा दलितों के संघर्षों को न दिखाकर उन्हें दुर्बल और कमजोर दिखाते हैं। अब हिन्दी सिनेमा में दलितों के असली संघर्ष को उजागर करने की आवश्यकता है, जो दलित समाज की मांग है। हिन्दी फिल्मों में शिक्षा और समानता की बात बहुत ही कम की गई है, जिसकी सबसे ज्यादा जरूरत है। अतः यह स्पष्ट है कि हिंदी सिनेमा में दलित और वंचित वर्गों की छवि अब भी पूरी तरह संतुलित या यथार्थपरक नहीं है। यह शोध का महत्त्वपूर्ण विषय है कि किस प्रकार दृश्य-प्रस्तुतीकरण के जरिए सामाजिक कल्पनाएँ गढ़ी जाती हैंऔर कैसे वे हमारे सामूहिक चेतन में स्थायी भूमिका ग्रहण करती हैं।

****

सन्दर्भ :-

1. पूर्वोत्तर प्रभा, संपादक - डॉ. चूकी भूटिया, 'आलेख-हिन्दी सिनेमा में दलित जीवन की अभिव्यक्ति,
2. कुलदीपसिंह', हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम, जनवरी-जून 2021, पृष्ठ संख्या-45
3. वही, पृष्ठ संख्या- 45
4. आर्टिकल 15, निर्देशक, अनुभव सिन्हा, (2015)
5. https://youtu.be/clhoTCTpJmY?feature=shared
6. आरक्षण, निर्देशक, प्रकाश झा, (2015)
7. https://www.youtube.com/watch?v=nEm8yMXwIis
8. अंकुर, निर्देशक, श्याम बेनेगल (1973)
9. https://youtu.be/zlURxHM0cm4?feature=shared
10. गुठली लड्डू, निर्देशक, इशर आर खान, (2023)
11. https://youtu.be/3cBbOWNfJ0w?feature=shared
12. गौरैया, निर्देशक, राजेश हंस, सुमित चावला, (2022)
13. https://youtu.be/QfKou_mdYW0?feature=shared
14. गंगा की सौगंध, निर्देशक, सुल्तान अहमद, (1978)
15. https://youtu.be/-4QhLG8xOsE?feature=shared
16. चार दिल चार राहें, निर्देशक, ख्वाजा अहमद, (1959)
17. https://youtu.be/o8VpZgsFMNA?feature=shared
18. चिरूथा, निर्देशक, तनवीर अहमद, (1972)
19. https://youtu.be/7bRKslyX2mw?feature=shared
20. पिता, निर्देशक, महेश मांजरेकर, (2002)
21. https://youtu.be/gbQgn91uesM?feature=shared
22. मसान, निर्देशक, नीरज घेवान (2015) https://youtu.be/ozi0F9xf1x4?feature=shared
23. सौतन, निर्देशक, सावन कुमार, (1983)
24. https://youtu.be/G6nlwz4sAxE?feature=shared

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था का विश्लेषण

दिनेश कुमार
MA IGNOU
(bdinesh326@gmail.com)

सारांश-
दक्षिण भारत के मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं रहे, बल्कि वे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकसित हुए। चोल, पल्लव, पांड्य, चालुक्य और विजयनगर जैसे राजवंशों ने मंदिरों को संरक्षण देकर उन्हें कृषि, शिल्प, व्यापार, श्रम-प्रबंधन और सांस्कृतिक उत्पादन का महत्वपूर्ण आधार बनाया। यह शोध पत्र दक्षिण भारत की मंदिर-आधारित अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक तत्वों, आय-व्यय, प्रशासनिक ढांचे, सामाजिक प्रभाव, शिल्प-विकास, व्यापारिक तंत्र तथा उनके दीर्घकालिक ऐतिहासिक योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही यह मंदिर अर्थव्यवस्था की सीमाओं और इसके पतन के कारणों पर भी चर्चा करता है।

मुख्य शब्द(key words) – मंदिर अर्थव्यवस्था, देवदासी परंपरा, शिल्पी विकास ,सामाजिक प्रभाव, प्रशासनिक ढांचा, व्यापारिक तंत्र, वास्तु कला

भूमिका-दक्षिण भारत में मंदिर परंपरा अत्यंत प्राचीन और गहन है। 6वीं –7वीं शताब्दी से मंदिर केवल पूजा स्थल न रहकर जटिल सामाजिक-आर्थिक संस्थानों में परिवर्तित हो गए। मंदिरों को मिलने वाले भूमि अनुदान, दान, कर और व्यापारिक सहयोग ने दक्षिण भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशिष्ट मंदिर केन्द्रित आर्थिक संरचना (**Temple-Centric Economic Structure**) तैयार किया। यह संरचना न केवल कृषि उत्पादन और सिंचाई व्यवस्था को नियंत्रित करती थी, बल्कि शिल्प-उद्योग, व्यापार-गिल्ड, सांस्कृतिक कला, और स्थानीय शासन, इन सभी क्षेत्रों पर गहरा प्रभाव डालती थी। दक्षिण भारत में मंदिर केवल धार्मिक पूजा के केंद्र नहीं रहे हैं, बल्कि सदियों से ये इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विकास के महत्वपूर्ण केन्द्रबिंदु रहे हैं। चोल, विजयनगर और अन्य राजवंशों के तहत, मंदिरों ने प्रमुख भूस्वामी, बैंकों, और रोजगार सृजन करने वाली संस्थाओं के रूप में कार्य किया। दक्षिण भारत के मंदिरों की अर्थव्यवस्था विश्व की उन विशिष्ट ऐतिहासिक प्रणालियों में से एक है जहाँ धार्मिक संस्थाएँ आर्थिक इंजन की तरह कार्य करती थीं। विशेष तौर पर चोल और विजयनगर काल में मंदिरों ने राज्य के आर्थिक ढाँचे को स्थिर किया और क्षेत्रीय विकास को गति दी। यह शोध–पत्र इसी बहुआयामी मंदिर अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं प्रभावों का समग्र विश्लेषण करता है।

मंदिर अर्थव्यवस्था का विकास निम्नलिखित राजवंशों के संरक्षण से हुआ -

पल्लव (6वीं–9वीं शताब्दी): मंदिर निर्माण की प्रारंभिक संरचना
चोल (9वीं–13वीं): मंदिरों को प्रशासनिक और आर्थिक केंद्र में बदलना
पांड्य और चालुक्य: भूमि दान और शिल्प-संस्कृति का विस्तार
विजयनगर (14वीं–17वीं): मंदिर-केन्द्रित शहरीकरण और व्यापार विस्तार

इन कालों में मंदिरों को राज्य का प्रत्यक्ष समर्थन, व्यापक भूमि-दान और व्यापारिक गिल्डों का सहयोग प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप मंदिर एक संगठित आर्थिक–राजस्व प्रणाली के रूप में विकसित हुए।

दक्षिण भारतीय मंदिरों की आय अत्यंत विविध और सुगठित थी।

मध्यकालीन भारत (लगभग 8वीं से 16वीं शताब्दी ईस्वी) के संदर्भ में दक्षिण भारतीय मंदिरों की आय के स्रोत कहीं अधिक संगठित और व्यापक थे। ये मंदिर केवल धार्मिक केंद्र नहीं, बल्कि प्रमुख आर्थिक नियामक और भू-धारक थे। मंदिरों को भूमि अनुदान भी मिलता राजाओं, सामंतों, ब्राह्मणों और ग्रामवासियों द्वारा मंदिरों को लगातार भूमि अनुदान दिए जाते थे। ये दान स्थायी (अक्षय) संपत्ति बनाते थे, जिसका कभी बँटवारा नहीं होता था, बल्कि वह समय के साथ बढ़ती ही जाती थी मंदिरों के पास बेशुमार जमीनें होती थीं। वे इन जमीनों को किसानों को खेती के लिए देते थे और उपज का एक निश्चित भाग भू-राजस्व या कर के रूप में प्राप्त करते थे। यह आय का सबसे नियमित और महत्वपूर्ण भाग था। चोल और विजयनगर साम्राज्यों में, मंदिर अक्सर कृषि विकास और सिंचाई योजनाओं (जैसे तालाब और नहरों का निर्माण) में अपनी आय का बहुतांश निवेश करते थे, जिससे स्थानीय कृषि उपज बढ़ती थी और उनकी आय भी सुनिश्चित होती थी। मध्यकाल में बड़े मंदिर बैंकों की तरह कार्य करते थे। व्यापारी निगम (ट्रेडिंग गिल्ड्स) और आम जनता अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ, सोने के सिक्के और जवाहरात मंदिरों में जमा करते थे, क्योंकि इन्हें सबसे सुरक्षित माना जाता था। मंदिर जमा धन को निवेश करते थे या ऋण देते थे, जिससे उन्हें ब्याज के रूप में आय प्राप्त होती थी। व्यापारिक निगम और शिल्पकार मंदिरों के रखरखाव के लिए नियमित अंतराल पर दान (नियमित कर) देते थे।मंदिरों की इस विपुल आय का उपयोग केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नहीं, बल्कि शिक्षा (पाठशालाएँ), अन्नदान (भोजन वितरण), स्वास्थ्य सेवाएँ और सैकड़ों लोगों को रोजगार देने में भी किया जाता था।

प्राचीन और मध्यकाल में, दक्षिण भारतीय मंदिरों ने एक स्वायत्त और शक्तिशाली आर्थिक इकाई के रूप में कार्य किया ।दक्षिण भारत में मंदिर अर्थव्यवस्था का उदय मुख्य रूप से चोल और विजयनगर जैसे साम्राज्यों के दौरान हुआ, हालाँकि इसकी नींव उससे भी पहले पड़ चुकी थी मंदिर अर्थव्यवस्था का विकास विभिन्न तरीकों से व्यापक कमाने पर हुआ। इसकी भूमिका अपने आप में एक विशाल पैमाने पर पहुंच गई। मंदिर अर्थव्यवस्था के विभिन्न आधार थे। अपने विभिन्न आयाम पर इन्होंने बेहतर कार्य किया। प्राचीन और मध्यकाल में बड़े मंदिर बैंकों की तरह कार्य करते थे। लोग अपनी बहुमूल्य वस्तुएं और धन मंदिरों में जमा करते थे, जिन्हें वे सबसे सुरक्षित मानते थे। मंदिर ऋण (लोन) सुविधाएँ भी उपलब्ध कराते थे। कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में 'देवताध्यक्ष' का विधान किया था और आपातकाल में राजा को मंदिरों की संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार दिया था। मंदिर केवल पूजा-पाठ का स्थान नहीं थे, बल्कि वे सामुदायिक जीवन के केंद्र थे। कई शहरों और गाँवों का निर्माण मंदिरों के चारों ओर ही होता था, जहाँ मंदिर केंद्र में स्थापित होते थे और उसके बाद रिहायशी और व्यावसायिक क्षेत्र बसाए जाते थे। मंदिर व्यापार और वाणिज्य के लिए मिलन स्थल (Rendezvous) के रूप में कार्य करते थे। व्यापारी, कारीगर और विद्वान यहाँ वस्तुओं, शिल्पकला तकनीकों और विचारों का आदान-प्रदान करते थे। मंदिरों से जुड़े बाज़ार आर्थिक विनिमय के केंद्र बन गए थे। मंदिर शिक्षा (संस्कृत पाठशालाएँ), स्वास्थ्य सेवाएँ, भोजन (अन्नदान), और विश्राम (छात्रावास, विश्राम स्थल) जैसी लोक -कल्याण की गतिविधियाँ भी संचालित करते थे।मंदिरों ने कला, वास्तुकला, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान को संरक्षण दिया। द्रविड़ शैली की वास्तुकला (पल्लवों द्वारा स्थापित और चोलों, पांड्यों, विजयनगर साम्राज्यों द्वारा विकसित) दक्षिण भारत की पहचान बन गई। अपनी भव्यता, आकर्षक शिल्पकला और अलौकिक विग्रहों के कारण ये स्थल आध्यात्मिक होने के साथ-साथ पर्यटन के भी प्रमुख केंद्र थे,जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को लाभ होता था। इस प्रकार, दक्षिण

भारत के मंदिर धार्मिक अनुष्ठानों के साथ-साथ आर्थिक इंजन औरसामाजिक नियामक के रूप में कार्य करते थे, जो स्थानीय क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।दक्षिण भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ढाँचा प्राचीन काल से ही मंदिर-केन्द्रित रहा है। चोल, पाण्ड्य, चालुक्य, होयसळ, विजयनगर तथा नायकों के काल में मंदिर केवल धार्मिक आस्था के स्थल नहीं थे, बल्कि वे शिक्षा, कला, नगरीय जीवन, कृषि और व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरकर आए। इस तरह दक्षिण भारतीय मंदिरों ने एक ऐसी जटिल और समृद्ध मंदिर अर्थव्यवस्था को जन्म दिया, जिसका प्रभाव आज भी कई रूपों में देखा जा सकता है। मंदिर अर्थव्यवस्था से आशय उस आर्थिक संरचना से है जिसमें मंदिर भूमि के स्वामित्व,कृषि उत्पादन,व्यापारिक लेन-देन,शिल्प और कारीगरी,दान–प्रथा,तीर्थ–पर्यटन आदि के माध्यम से एक सशक्त आर्थिक केंद्र के रूप में काम करते हैं। दक्षिण भारत में मंदिरों के चारों ओर पूरे नगर बसते थे, और वहाँ रोज़गार, सामाजिक सेवाएँ तथा सांस्कृतिक क्रियाएँ आपस में जुड़ी हुई थीं। दक्षिण भारत में चोल और विजयनगर काल तक मंदिरों के पास विशाल कृषि भूमि होती थी। इसे देवदासीन, देवभोग, या ब्राह्मणों को दान के रूप में प्राप्त किया जाता था। इससे अनेक प्रभाव पैदा हुए। मंदिरों के पास धन और संसाधन होते थे, जिनका उपयोग वे तालाबों, कुओं, नहरों और बाँधों के निर्माण में करते थे। कावेरी डेल्टा क्षेत्र में मंदिरों के संरक्षण से कृषि भूमि का व्यापक विस्तार हुआ। मंदिर भूमि पर किसान, मज़दूर, चरवाहे, तेली, बढ़ई, लोहार आदि कार्यरत रहते थे, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था सक्रिय रहती थी। मंदिर कृषि उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा संग्रहित करते थे, जो धार्मिक आयोजनों, त्योहारों और भोजों में उपयोग होता था। इससे उत्पादन और ग्रामीण व्यापार दोनों को बढ़ावा मिला। दक्षिण भारत के प्रमुख मंदिर जैसे- मदुरै का मीनाक्षी मंदिर, तंजावुर का बृहदेश्वर मंदिर, श्रीरंगम का रंगनाथस्वामी मंदिर विस्तृत बाज़ारों के केंद्र थे। ऐतिहासिक अभिलेख बताते हैं कि मंदिरों के आसपास ऐनाकुट्टम, नगरम, मणिग्रमम् जैसे व्यापारी-गिल्ड सक्रिय थे। वे मंदिरों को अनाज, मसाले, धातु, रेशम, घी, फूल और वस्त्र की आपूर्ति करते थे। तीर्थयात्रियों की आवक से भोजनालय, सराय, दुकानें, हस्तकला बाज़ार और परिवहन सेवाओं का विकास हुआ। चोल काल में दक्षिण भारतीय व्यापारियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया तक व्यापार किया, जहाँ मंदिरों को धूप, कपड़े, मूर्तियाँ और धातु उपकरण भेजे जाते थे। इस व्यापार से मंदिरों की आमदनी बढ़ती थी।

मंदिर अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा प्रभाव दक्षिण भारत की विशिष्ट कला और वास्तुकला पर दिखाई देता है। मूर्तिकार, रंगकर्मी, नर्तक, संगीतकार, चित्रकार तथा वास्तुकार मंदिर से जुड़ी गतिविधियों में स्थायी रोजगार पाते थे। बृहदेश्वर मंदिर, विरुपाक्ष मंदिर, होयसलेश्वर मंदिर तथा मीनाक्षी मंदिर जैसे भव्य निर्माण मंदिर अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता का प्रमाण हैं। इन मंदिरों के निर्माण ने लाखों लोगों को रोजगार दिया । रत्नजड़ित मूर्तियाँ, कांस्य नटराज, पत्थर की नक्काशी, भित्ति-चित्र ये सब मंदिरों के संरक्षण में विकसित हुए।

मंदिर दक्षिण भारत के सामाजिक जीवन का केंद्र थे।त्योहार, जुलूस, रथोत्सव और संगीत–नृत्य कार्यक्रम समाज को जोड़ते थे। मंदिर सार्वजनिक जीवन का साझा मंच थे, जहाँ विभिन्न जातियाँ सह-अस्तित्व में थीं। मंदिर भोजन (अन्नदान), शिक्षा, चिकित्सा और सराय जैसी सेवाएँप्रदान करते थे। मठ और पाठशालाएँ धार्मिक व लौकिक शिक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम थीं। कुछ मंदिर गतिविधियों में उच्च जातियों का प्रभुत्व था, परंतु दक्षिण भारत में कई सेवाएँ—जैसे नंदीवाद्य, नृत्य, कारीगरी—निचली जातियों द्वारा संचालित होती थीं ।इस प्रकार मंदिर ने सामाजिक भूमिकाओं को स्थिर भी किया और कुछ हद तक गतिशील भी बनाया।मंदिर राज्य की वैधता और शक्ति के केंद्र थे। राजा स्वयं को "भगवान का प्रतिनिधि" कहलवाते थे। कभी कभी राजनीतिक वैभव को बढ़ाने के लिए राजा की मूर्ति देवालय में रख कर पूजा की जाती थी ताकि राजा की दैवीय शक्ति सिद्ध हो। मंदिरों में राजाओं का आर्थिक दान उनकी प्रतिष्ठा और राजनीतिक आधार बढ़ाता था ।मंदिर किराए, करों और उपहारों का प्रबंधन करते थे। कई मंदिर बड़े प्रशासनिक संस्थान की तरह काम करते थे—उनके पास खुद के लेखाकार, सैनिक और अधिकारी होते थे। कभी-कभी मंदिरों की संपत्ति पर नियंत्रण के लिए वंशों के बीच संघर्ष भी हुए, जैसे चोल–पाण्ड्य संघर्ष में।इससे समझ आता है कि मंदिर आर्थिक रूप से कितने शक्तिशाली थे। देवदासी परंपरा का प्रारंभ आर्थिक रूप से मंदिरों से ही जुड़ा था। यद्यपि बाद में इस व्यवस्था में शोषण बढ़ा, परंतु प्रारंभिक काल में देवदासियाँ संगीत, नृत्य और अनुष्ठानों की विशेषज्ञ मानी जाती थीं। महिलाएँ फूल आपूर्ति, व्रत–भोजन तैयारी, माला निर्माण, प्रसाद निर्माण जैसे कार्यों से आर्थिक रूप से मंदिर अर्थव्यवस्था का हिस्सा थीं। औपनिवेशिक काल के बाद भी दक्षिण भारत में मंदिर अर्थव्यवस्था मजबूत बनी रही। आज तिरुपति, मदुरै, रामेश्वरम्, तंजावुर, कांचीपुरम जैसे तीर्थस्थल करोड़ों की अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं। होटल, परिवहन, गाइड, प्रसाद उद्योग, वस्त्र और हस्तशिल्प सहित लाखों लोग इससे रोजगार पाते है । कई मंदिर आज भी अन्नदान, छात्रवृत्ति, अस्पताल और स्कूल चलाते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) - दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था एक शक्तिशाली ऐतिहासिक विरासत है जो आज भी एक गतिशील आर्थिक इंजन के रूप में कार्य कर रही है। प्राचीन काल में ये कृषि, वित्त और सामुदायिक जीवन के नियामक थे, और आधुनिक काल में ये धार्मिक पर्यटन, जीडीपी में महत्वपूर्ण योगदान और रोजगार सृजन के माध्यम से अर्थव्यवस्था को गति देते हैं। हालाँकि, राज्य नियंत्रण, पारदर्शिता और धन के अधिकतम सामाजिक उपयोग जैसी चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है, ताकि ये संस्थान न केवल आस्था के केंद्र बने रहें, बल्कि समावेशी सामाजिक-आर्थिक विकास के भी आदर्श मॉडल बन सकें। दक्षिण भारत की मंदिर अर्थव्यवस्था केवल धार्मिक आयाम तक सीमित नहीं थी; यह पूरे समाज, राजनीति, कला और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाला व्यापक तंत्र थी। मंदिर—कृषि उत्पादन बढ़ाने वाले आर्थिक केंद्र,व्यापार और शिल्प को प्रोत्साहन देने वाले बाज़ार,कला-संस्कृति के रक्षक,सामाजिक सेवाओं के प्रदाता,राजनीतिक वैधता के प्रतीक के रूप में उभरे। इस प्रकार मंदिर अर्थव्यवस्था ने दक्षिण भारतीय समाज को एकीकृत, समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से उन्नत बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई। आज भी इसका प्रभाव पर्यटन, सांस्कृतिक धरोहर और स्थानीय अर्थव्यवस्था में देखा जा सकता है

****

संदर्भ ग्रंथ सूची (Biblioraphy)-

Sastri, K.A. Nilakanta (Ed.). *A Concordance of the Names in the Chola Inscriptions*. Madras University, 1973.
Karashima, Noboru (Ed.). *A Concordance of the Names in the Pandya Inscriptions*. Tokyo University Press, 1984.
Hultzsch, E. *South Indian Inscriptions: Chola and Pallava Records*. ASI.
4.Stein, Burton. *Peasant State and Society in Medieval South India*. Oxford University Press, 1980.
5.Stein, Burton. *Vijayanagara*. Cambridge University Press, 1989.
Appadurai, Arjun. *Worship and Conflict Under Colonial Rule: A South Indian Case*. Cambridge University Press, 1981.
Swaminathan, S. *Temple Economy in South India*. Madras Historical Society, 1995.
Heitzman, James. *Gifts of Power: Lordship in an Early Indian State*. Oxford University Press, 1997.
Nilakanta Sastri, K.A. *The Cholas*. University of Madras, 1955.
Nilakanta Sastri, K.A. *History of South India*. Oxford University Press, 1958.
Champakalakshmi, R. *Trade, Ideology and Urbanization: South India 300 BC–AD 1300*. Oxford University Press, 1996.
Karashima, Noboru. *South Indian History and Society: Studies from Inscriptions A.D. 850–1800*. Oxford University Press, 1984.
Subbarayalu, Y. *South India under the Cholas*. Oxford University Press, 2012.
Shulman, David. "The Temple Economy of South India." *Journal of the Economic and Social History of the Orient*, vol. 23, no. 3, 1980.

मन्नू भंडारी की कहानियों में स्त्री संसार

सिन्धु ए.
Associate professor
Dept of Hindi Payyanur College Payyanur
Edat (PO)Kannur, Kerala ,670741**Ph 9497801289**

"मिथक के उद्भव के बारे में वैसा प्रमाण तो नहीं है। फिर भी आंशिक तौर पर परंपरा के साथ रहनेवाला, साथी खुदरती प्रतिभासों, विश्वासों की व्याख्या करनेवाला लेकिन यथार्थ घटनाओं से प्रकट संबंध व्यक्त करने वाला है"।यह एंथ्रोपोलॉजी, मनोविज्ञान आदि कई क्षेत्रों से संबंध रखने वाली संज्ञा है। लोक कथाएं और मिथक को अलग करते हुए और नेरत्रोपतेंफ्रै का कहना है कि "मिथक यथार्थ में खटित ही हैं"(The new encyclopaedia of Britannica, 420)जिंदगी की अवस्थाओं की व्याख्या करते समय मिथक को अलग नहीं रख सकते।

संसार में निगूढ रहस्यों और अद्भुत प्रतिभासों से भरा पड़ा है। पृथ्वी का उद्भव, मौसम का परिवर्तन, बारिश, बिजली, सूर्य, चंद्र इन सब का रहस्य मानव के लिए हमेशा खोज का विषय रहा था। मानव में प्रकृति की संहार शक्तियों को पार करने का अरमान है। मिथक इस अरमान की पूर्ति के लिए मनुष्य द्वारा निर्मित कल्पित कथा है। मनुष्य ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति कल्पित कहानियों से की। ये कथाएं अपने से भी सशक्त मानवी पत्रों के सृष्टि द्वारा की गई है। इसीलिए इन कहानियों की पृष्ठभूमि भी अभौमिक हो सकती हैं। इस प्रकार में निगूढताओं से भरे संसार के संबंध में मानव द्वारा गठित कहानियों को ही मिथक कहते हैं। मिथक से सामान्यत ऐसी काल्पनिक कथाओं का अर्थ लगाया जाता है, जो अलौकिक तथा अद्भुत होती है। सदियों से कानों से कानों में कही गई गाथाएं, गाकर सुने गये गीत, मन में रूढ हुए विश्वास और संकल्पनाएं, आदत बने रीति रिवाज, जीवन रीतियां इत्यादि मिलकर अद्भूत परंपरागत संपत्ति को मिथक कह सकते हैं।

मिथक अलौकिक होने पर भी मानव जीवन से निकट संबंध रखता है। मानव जाति के उत्पत्तिकाल से ही मिथकों की सृष्टि शुरू हुई है और आज भी हो रहे हैं। यह आदिम मानव द्वारा जिज्ञासा वृत्ती की परितृप्ती के लिए की कयी अभिव्यक्ती मात्र नहीं बल्कि मिथकों की जडें मानव स्वभाव की अथल गहराइयों में भी विद्यमान है। "जहां-जहां मानव के ज्ञान में कमियां है उसे दूर करने के लिए शब्दों और प्रतीकों से मिथक का सृजन किया जाता है। प्रकृति से अपरिचित वस्तुओं का सृजन नहीं किया जाता है। बल्कि घटित, घटने की संभावना रखनेवाली योग्य व कल्पना करने योग्य चीजों का होता है। ये सभ मिथक के अन्तर्गत आते हैं।"(Sahityalokam, 113) अर्थात मिथक केवल अव्यवस्थित और भ्रमपूर्वक विचारों का समूह मात्र नहीं वरन यह प्रत्यक्ष ज्ञान की निश्चित रीति पर आधारित होता है।

ग्रीक शब्द मित्तोस से ही मिथक की उत्पत्ति हुई है। इसका पुराना अर्थ था मुख से उच्चारित वाणी। कथाएं तो मुख से उच्चारित होती है। लेकिन कालांतर में अन्य शब्दों के समान मिथक शब्द में भी अर्थ में बदलाव आ गया। ये एसी काल्पनिक कथाएं बन गई जिन्हें वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

मिथक का अध्ययन स्वाभाविक तौर पर प्रागबिम्बों की तलाश में पहुंचता है। सदियों से मनुष्य की अबोध चेतना में रूढ हुए संकल्पना और अनुभूतियों को ही युंग ने प्रागबिम्ब पुकारा। प्रागबिम्ब स्वत: अज्ञात है किंतु सार्वजनीन भाव रूप है, जो समस्त नैसर्गिक मानसिक शक्तियों को शासित रखते है। चेतन मन का कोई नियंत्रण इन पर नहीं होता अर्थात चेतन के व्यवहार से अचेतन मन का व्यापार बिल्कुल भिन्न है। "मिथक प्रपंच और जीवन के संबंध में प्रागैतिहासिक मनुष्य के प्रागबिम्बीय चिंतन का सु फल है। प्रागबिम्बीय होने के कारण यह सत्य व्यक्ति के स्तर पर ही सीमित नहीं रहा उन्हें वह समग्र समाज की संपत्ती बनता है। मिथक कोई झूठी कल्पना नहीं प्रत्युत वह प्रागबिम्बों से नियंत्रित एवं नियमित होकर अबोध पूर्वक संपन्न होने वाले व्यापार का परिणाम है।"अज्ञेय काव्य में प्रागबिम्ब और मिथक,63)

मिथक और इतिहास-मिथक एक तरह की कल्पित कथा है जिसे प्रमाण, स्थल व कल का बंधन ही नहीं है। लेकिन अतीत में घटित घटनाओं का आकलन है जो स्थान और समय के बंधन से मुक्त नहीं है। इतिहास अतीत के यथार्थ का लेखा जोखा है। लेकिन मिथक परिनिष्ठित नही है। उसके भीतर कई परिकल्पनाएं समाहित है। वैसे तो लोग मिथक माने पावन इतिहास कहते हैं। कभी-कभी इतिहास में मित्तोलजी और मित्तोलजी में इतिहास का मिश्रण भी होता है। एक समय ऐसा भी था मिथक और इतिहास को अलग नहीं माना गया था। "जो मिथक नहीं वही इतिहास है। इतिहास का कहना सत्य न हो तो वह गलत इतिहास है। मिथक का कहना सच हो या झूठ शायद इतिहास बन जाता है।"(9The use of Greek mythology ,,5) मिथक और इतिहास अलग-अलग होने पर भी अनेक मिथकों का स्रोत ऐतिहासिक घटनाओं में से स्पष्ट ही प्राप्त होता है। वह इसीलिए की कालांतर में मानव इतिहास को विकृत कर ऐतिहासिक पात्र को मिथकीय बनालिया और ऐतिहासिक नायक मिथकीय नायक बन जाता है। लेकिन यह कथापि ठीक नहीं है कि मिथक इतिहास से उत्पन्न है। मीथकीय सत्य तथा ऐतिहासिक सत्य में मूलभूत अंतर होता है। मिथकीय सत्य अनुष्ठानों से गूंथा हुआ है, ऐतिहासिक सत्य का संबंध तथ्यों से होता है इन। इन तत्वों का उद्घाटन करने पर सत्य की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

लोककथा परिकथा और मिथक

घटीकथा, लोककथा और परिकथाएं मिथक के अंतर्गत मानी जाती है।आपसी संबन्ध रखने परभी ये सब अलग अलग बै। मिथक के निर्माण में एतिहासिकता का भी योगदान है, फिर भी भावनाओं से भरी दास्ताएं है लेकिन इसमें इतिहास सत्य शामिल है।अतिहासिक सत्य में संन्देश ओवं भावनाएं भरकर एत्ह्यों का रूपायन हूआ । इसप्रकार की कहानियों में पाए जानेवाले इतिहास सत्य एतिह्य को प्रामाणिकता देते है।

मिथक और लोककथों में अनेक समान तत्व पाए जाते है। मिथक और लोककथाओं में देवताओं की कहानियाँ मिलती है फिर भी यह आवश्यक नही कि मिथक लोककथा हो और लोककथा मिथक हो। मिथक में देवताओं का प्रयोग धार्मिक आस्थाओं से होता है। इसका संबन्ध आदिम मानस से है, जब कि लोक कथाएं अपेक्षाकृत विकसित स्थिति का द्योधक है। अधिकांश लोककथाओं का विकास मिथकों से हुआ है। परिकथाएं मात्र काल्पनिक कथा है जिसका कोई धार्मिक सामाजिक अथवा नैतिक उद्धेश्य नही। मानव मन की व्यक्तिगत आकांक्षाएं, उसके मन की मौज इन कथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।कथात्मकता प्रतीकात्मकता के कारण मिथक तथा परिकथाओं में रूप की समानता है। इस तरह मिथक इन सब से संबन्ध रखते है। फिर

भी ये सब एक नही। मिथक कोई झठी कल्पना नही, वह मानवराशी के महानतम सत्य की अभिव्यक्ति है।मिथक सामूहिक अवचेतन की उपज है। इससे समाज की आवश्यकताएं, इच्छाएं नैतिक, सामाजिक आदर्श अर्थात उनके जीवन की संपूर्ण वास्तविकताए प्रतिबिंबित होती है। यह वैज्ञानिक अभिरुचि की परितृप्ति के लिए की गई व्याख्या नहीं है बल्कि आदिम वास्तविकताओं का कथात्मक पुनरुत्थान है। यह जीवन में गहरी धार्मिक मांग की संतुष्टि के लिए कहे गए कथाएं है। नैतिक अभिलाष सामाजिक
विनम्रता यहां तक की व्यवहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति मिथक करता है। मिलनोस्की का मिथक संबंधी दृष्टिकोण को मलती सिंह रेखा अंकित करती है- "मिथक आदिम समाज में एक अपरिहार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है- यह विश्वासों की अभिव्यक्ति करता है, बढ़ावा देता है, कूटबद्ध वह नैतिकता को प्रोत्साहित करता है, अनुष्ठानों की कुशलता या निपुणता के लिए साक्ष्य होता है तथा मनुष्य के दिशा निर्देशन के लिए व्यावहारिक नियमों को धारण करता है, इस प्रकार मिथक मानवीय सभ्यता का बहुत बड़ा उपादान है। यह एक बौद्धिक व्याख्या या कलात्मक कल्पना नहीं है बल्कि आदिम विश्वास एवं नैतिक ज्ञान का घोषणा पत्र है। मूल निवासियों के लिए यह कथाएं प्रचीनों के कथन मात्र हैं। आधिक महान तथा सुसंगत वास्तविकता है। उसके द्वारा आधुनिक मत का जीवन भाग्य तथा कार्य निर्धारित होता है, जिसका ज्ञान मनुष्य को नैतिक आचरण की प्रेरणा से परिपूर्ण करता है।"(मिथक एक अनुशीलन,28) जिस जनसमूह में मिथक को पूर्ण विश्वसनीयता प्राप्त होती है, जिसमें वह प्रचलित रहता है। इतिहास इसे सत्य माने या ना माने मिथक की शक्ति और अर्थवत्ता सब कुछ इस विश्वास के बल पर ही है

मिथक एक समाज का नितांत सपना है। एक जन समाज के अरमानों मूल्यों की मूल्य प्रतीकात्मक सपना है मिथक।" मिथक अर्थ और संरचना से स्वप्न के समान है। सपने से व्यक्ति के मन में रुपायित होनेवाले स्वानुभवों की समस्या की पूर्ति होता है तो एक समूह के सपनों की पूर्ती मिथकों के जरिए हो जाते है।" (मित्तम समूहवुम-प्रस्तावना) स्वप्न का अपना अस्तित्व होता है, उसी प्रकार मिथक का भी। स्वप्न पर हम सवाल नहीं उड़ाते, इसी प्रकार मिथक पर भी। संघर्षों से मन को मुक्त कराने और सुकून दिलाने की शक्ति स्वप्न में विद्यमान है। यही शक्ति मिथक में भी विद्यमान है। मिथक समाज द्वारा स्वीकृत सपना है।

मिथक समाज पर गहरा असर डालता है। वह हमेशा अपने अतीत की संस्कृति और विरासत से संबंध रखता है। यह मानव के चेतना पर ही नहीं अचेतन स्तर पर भी असर डालते हैं। यह एक जटिल सांस्कृतिक सत्य है। "परंपरा द्वारा स्वीकृत तथा संस्कृति द्वारा व्याख्यायित कहानी या पात्र ही मिथक है।(स्त्री रचना दर्शनम औरू अवलोकनम, 50-51) संस्कृति में रूढ होने के कारण मिथक के अस्तित्व पर कोई भी प्रश्न नहीं उठाते।

साहित्य में मिथक का सन्निवेश कई रूपों और मयनों में हुआ है। अतीत के उपकरण सदैव रचना के संप्रेषण शक्ति को बढ़ा देती है। क्योंकि अतीत के प्रति मनुष्य मन में एक तरह का आत्मीय संबंध बना रहता है। सत्यता की प्रतीती होती हैं, साथ ही अपनेपन का भी। रचनाकार इतिहास के पत्रों व घटनाओं को उसके बंधनों से मुक्त करके मिथकीय बना देता है। रचनाकार इतिहास की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता यहाँ अनुभव करता है।ये मिथक सामूहिक संवेगों तथा संवेदनाओं को संवहन करने की क्षमता रखते हैं। यही क्षमता मिथक को साहित्य से जोडती है।

मिथक और साहित्य- मिथक एवं साहित्य तत्वतः एक है। मिथकों में भावात्मकता कल्पनाशीलता, प्रतिकात्मकता ,चित्रात्मकता एवं रहस्यानुभूति जैसे अनेक ऐसे तत्व है जो उन्हें साहित्य के अत्यंत निकट पहुंचा देते हैं। "अनेक मीथकीय अध्येताओं ने मिथक को आदिम कविता कहां है।" (मिथक एक अनुशीलन,54) मिथक तथा साहित्य कासंबंध प्राचीन काल से है। होमर के समय से ही मिथक साहित्य में आने लगे थे। हर साहित्यकार अपने समय के सीमित दायरे में रहना नहीं चाहता। इसीलिए वह समय उल्लंघन करने का प्रयास करता है। वह अतीत में जाकर अतीत को वर्तमान से जोड़ने का प्रयत्न करता है। यह वापस साहित्य के मिथकों में आकर रुकती हैं।मिथक अर्थ संपन्न है। उसको साहित्य से अलग करने पर अर्थ अधूरा रह जाएगा। यानी अर्थ संपन्न मिथक साहित्य में आने पर ही पूर्णता पता है।कल्पित कथाएं, मिथक और कहानियों आदि स्वत: साहित्य नहीं है। ये सब साहित्य के लिए उपयोगी उपजीव्य है।

साहित्य से मिथक को पृथक नहीं कर सकते। अलग-अलग देश के अलग-अलग मिथक होते हैं। किसी भी देश का साहित्य उस देश के मिथकों को अछूता नहीं छोड़ सकता। कहने का तात्पर्य यह है मिथक संपूर्ण मानव जाति का प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम धरोहर है। साहित्य में ही तो हमारी संस्कृति ही द्योतित होती है। जब साहित्य में मिथक आ जाता है तो पूर्ण रूप से हमारी संस्कृति ही विकास पाती है। भारत का अपना अलग मिथक है। भारतीय मिथकों को साहित्य से अलग नहीं कर सकते। मिथकों को अलग करने पर साहित्य का कोई अस्तित्व हो नहीं रह जाता। भारत के पुराण और ऐतिहासिक रचनाएं मिथकों का भंडार हैं। इस भंडार में समाहित मिथकों को लेकर भारतीय साहित्यकारों ने अनेक रचनाएं की और आज भी कर रहे है। वेदो, ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण तथा महाभारत की कथाएं साहित्य का उपजीव्य ही नहीं है, वरन साहित्य का अंग भी है।

पुराण और ऐतिहासिक रचनाओं में से मिथक को लेकर साहित्यकार रचनाएं करते हैं। साहित्यकार अपनी रचनाओं में मिथक को उसी रूप में लेते हैं और प्रतीकात्मक रू में भी। मिथक में प्रतीकात्मकथा की शक्ति सन्निहित है। मिथक व्यक्ति और समाज के अनुभव, विश्वास, आस्था और समाज के उच्चतम सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्ति देने का मात्र भावात्मक माध्यम है। मिथकों के माध्यम से मानव ने साहित्य सृजन का संस्कार अर्जित किया है। साहित्यकार मिथक का प्रयोग अपनी रचनाओं के अनुसार करते है। साहित्यकार इसको पुरातन मौखिक कथाओं के रूप में लेखबद्ध करता है और अपनी इच्छा के (विषय) अनुसार या लक्ष्य के अनुसार इनका प्रयोग करते है। यहाँ घटनाओं की सत्यता से कोई सरोकार नही बल्कि कलात्मक अभिव्यक्ति को ही प्रमुखता दिया जाता है। मिथक मानव मस्तिष्क के बौदथिक विचारों को नही अपितु मानव मन की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने में सफल रहा है। इसलिए मिथक के द्वारा अभिव्यक्त विषय समाज मन पर प्रभाव डालता है।

लचीलापन मिथक की विशेषता है। इसलिए मिथक को प्रत्येक युग की वास्तविकता को अभिव्क्ति देने के लिए नए संदर्भों में प्रस्तुत किया जाता है। मिथकों का पुननिर्माण और पुनव्याख्या साहित्यकार कर रहे है। संस्कृति द्वरा पीढियों को प्राप्त होने के कारण युक्ति के परे समाज मन में इसका अस्तित्व बना रहता है। इसलिए मिथकीय पात्रों का असर समाज में अधिक होता है। पुन:निर्मित मिथक कल समाज द्वरा स्वीकृत किया जाएगा और कल का मिथक बन जाएगा। मिथक की इसी क्षमता को साहित्यकार अपनाते है। आज बहुत से पुन:व्याख्यित मिथक साहित्य में मिलते हैं खासकर स्त्रीवादी साहित्य, दलित साहित्य आदिवासी साहित्यों मे। हाशिएकृतों के अस्तित्व की स्थापना के लिए समाज में रूढमूल मिथकों का विमिथकीकरण को नए साहित्यकार कर रहे है।

****

संदर्भ :-

1. मालती सिन्हा,1988, मिथक एक अनुशीलन,लोकभारती प्रकाशन,इलहबाद।
2. सि.एस राजन,1992,अज्ञेय काव्य में प्रागबिम्ब और मिथक, लोकभारती प्रकाशन,इलहबाद।
3.राघव वारियर,1998,मित्तुम समूहवुम,जालकम् पब्लिकेशन, कोषिक्कोड।(मलयालम)
4.प्रशान्त कुमार एन,1998,स्त्री रचना दर्शनम औरू अवलोकनम,नेषणल बुकस्टाल, कोट्टयम। मलयालम)
5.Dowdem Ke,1992,The new encyclopaedia of Britannica, Routledge, London
6.Sahityalokam, 2009, सितंबर-अक्तूबर।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

मैला आँचल उपन्यास में संघर्ष चेतना एवं जीवन मूल्य

डॉ.लक्ष्मण भोसले
सह प्राध्यापक- हिंदी विभाग
सरकारी प्रथम श्रेणी महाविद्यालय, जेवर्गी-585310, गुलबर्गा जिला, कर्नाटक.

सारांश-
फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास **मैला आँचल** (1954) हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास है, जिसे प्रेमचंद के **गोदान** के बाद सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है[1]। उपन्यास की पृष्ठभूमि बिहार के पूर्णिया जिले का काल्पनिक गाँव मेरीगंज है, जो नेपाल सीमा से सटा पिछड़ा अंचल है। कथानायक डॉ. प्रशांत एक युवा डॉक्टर है, जो शहर से आकर इस गाँव में मलेरिया उन्मूलन के लिए कार्य करता है और ग्रामीण जीवन की वास्तविकताओं से रूबरू होता है। उपन्यास स्वतंत्रता के ठीक पहले और बाद के समय को चित्रित करता है, जहाँ गाँधीजी की हत्या तक की घटनाएँ शामिल हैं।

उपन्यास में कई प्रेम कथाएँ बुनी गई हैं – जैसे कमली और प्रशांत, बालदेव और लछमी, कालीचरण और मंगला आदि। ग्रामीण जीवन की जटिलताएँ – गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिवाद, जमींदारी शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार और सामाजिक कुरीतियाँ – जीवंत रूप से उभरती हैं। रेणु ने लोकभाषा, लोकगीतों और आंचलिक बोली का प्रयोग कर उपन्यास को अत्यंत यथार्थवादी बनाया है। उपन्यास का अंत गांधीजी की हत्या और ग्रामीण चेतना के जागरण के संकेत के साथ होता है, जो स्वतंत्रता के बाद के आदर्शों के पतन और नई उम्मीद को दर्शाता है[2]।

बीज शब्द:-मैला आँचल,फणीश्वरनाथ रेणु,आंचलिक उपन्यास,संघर्ष चेतना,जीवन मूल्य,ग्रामीण यथार्थ,जातिवाद,राजनीतिक चेतना,सामाजिक शोषण,गांधीवाद,दीन-दलित,लोकभाषा,स्वतंत्रोत्तर भारत,डॉ. प्रशांत,मेरीगंज।

मूल आलेख-

प्रस्तावना- फणीश्वरनाथ रेणु (1921-1977) हिंदी साहित्य के उन विरल कथाकारों में से एक हैं, जिन्होंने आंचलिकता को उपन्यास की मुख्य धारा बनाया। उनका प्रथम उपन्यास **मैला आँचल** न केवल आंचलिक उपन्यास की परंपरा का प्रवर्तक है, बल्कि स्वतंत्रोत्तर भारत के ग्रामीण समाज की संघर्ष चेतना और जीवन मूल्यों का गहन चित्रण भी प्रस्तुत करता है[3]। उपन्यास में रेणु ने बिहार के पूर्णिया अंचल के मेरीगंज गाँव को केंद्र में रखकर गरीबी, जातिवाद, जमींदारी, राजनीतिक अंतर्विरोधों और मानवीय संवेदनाओं को उकेरा है। यह उपन्यास प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए लोकजीवन की सूक्ष्मताओं को उजागर करता है।

संघर्ष चेतना का स्वरूप-

मैला आँचल में संघर्ष चेतना बहुआयामी है। यह व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तरों पर फैली हुई है। उपन्यास की शुरुआत मलेरिया जैसी महामारी से होती है, जो ग्रामीणों के जीवन का संघर्ष का प्रतीक है। डॉ. प्रशांत का आगमन आधुनिक चिकित्सा और विज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है, जो अंधविश्वास और ओझा-गुणी की परंपरा से टकराता है। यह संघर्ष आधुनिकता और परंपरा के बीच का है[4]।

सामाजिक संघर्ष जातिवाद और वर्ण व्यवस्था में स्पष्ट है। गाँव में ऊँच-नीच का भेद स्पष्ट दिखता है – दलित और पिछड़े वर्गों का शोषण, अछूत प्रथा और सामाजिक बहिष्कार। उदाहरणस्वरूप, दलित बस्तियों में रहने वाले लोग ऊँची जातियों के जूतों का निर्माण करते हैं, लेकिन उन्हें अछूत माना जाता है। रेणु ने इस संघर्ष को दलितों के आत्माभिमान जागरण के रूप में चित्रित किया है, जहाँ वे कहते हैं कि "यह राब नहीं चलेगा"[5]।

आर्थिक संघर्ष जमींदारी प्रथा और गरीबी से जुड़ा है। गाँव के लोग कर्ज के बोझ तले दबे हैं, महाजन और जमींदार शोषण करते हैं। स्वतंत्रता के बाद भी भूमि सुधार नहीं होते, जिससे किसानों का संघर्ष जारी रहता है। राजनीतिक संघर्ष स्वतंत्रता आंदोलन के आदर्शों के पतन में दिखता है। गांधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद के प्रभाव में गाँव के लोग बँटे हैं। बाबन दास जैसे पात्र गांधीवादी आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि अन्य पात्र सत्ता की लालच में भ्रष्ट हो जाते हैं। गांधीजी की हत्या उपन्यास का क्लाइमेक्स है, जो आदर्श राजनीति के पतन का प्रतीक है[6]।

महिलाओं का संघर्ष भी महत्वपूर्ण है। कमली, लछमी जैसी नारियाँ सामाजिक बंधनों, विधवा प्रथा और शोषण से जूझती हैं। उनका प्रेम और संघर्ष मानवीय संवेदना को उजागर करता है। आदिवासी और संथाल समुदाय का संघर्ष स्थानीय दमन और राज्य की उपेक्षा से जुड़ा है, जो स्वतंत्र भारत में भी जारी है[7]।

रेणु की संघर्ष चेतना क्रांतिकारी नहीं, बल्कि यथार्थवादी है। वे कोई बड़ा समाधान नहीं देते, बल्कि आंशिक प्रगति और जागृति दिखाते हैं। डॉ. प्रशांत का गाँव से जुड़ाव और ग्रामीण चेतना का जागरण इस चेतना का सकारात्मक पक्ष है।

जीवन मूल्य का चित्रण-

मैला आँचल में जीवन मूल्य ग्रामीण संस्कृति की जड़ों से जुड़े हैं। रेणु ने मानवीयता, प्रेम, सहानुभूति, त्याग और संघटन को प्रमुख मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया है। गांधीवादी मूल्य – अहिंसा, सत्य, स्वावलंबन – उपन्यास में प्रमुख हैं। बाबन दास जैसे पात्र इन मूल्यों का प्रतीक हैं, जबकि भ्रष्ट नेता इनके पतन को दर्शाते हैं[8]।

प्रेम जीवन का प्रमुख मूल्य है। उपन्यास में चार प्रेम कथाएँ हैं, जो विभिन्न वर्गों और परिस्थितियों में प्रेम की विविधता दिखाती हैं। कमली और प्रशांत का प्रेम आधुनिकता और परंपरा का मेल है, जबकि अन्य प्रेम कथाएँ सामाजिक बंधनों से संघर्ष करती हैं। प्रेम यहाँ शारीरिक नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना का प्रतीक है।

सामुदायिक जीवन और लोक संस्कृति के मूल्य – लोकगीत, नौटंकी, कुश्ती, त्योहार – उपन्यास को जीवंत बनाते हैं। ये मूल्य ग्रामीणों की एकता और सांस्कृतिक धरोहर को दर्शाते हैं। सहयोग और सेवा का मूल्य डॉ. प्रशांत में दिखता है, जो दीन-दलितों की सेवा करता है।नकारात्मक मूल्यों – लालच, भ्रष्टाचार, जातिवाद – का चित्रण भी है, जो स्वतंत्रता के बाद के समाज की विडंबना है। रेणु इनके विरुद्ध आत्मचिंतन का आह्वान करते हैं। जीवन मूल्य अंततः मानवीय गरिमा, समानता और संघर्ष से मुक्ति की ओर इंगित करते हैं। उपन्यास का शीर्षक "मैला आँचल" भारत माता के आँचल की मैलापन दर्शाता है, लेकिन अंत में उम्मीद की किरण दिखती है – ग्राम चेतना का जागरण[9]। रेणु की भाषा और शिल्प इन मूल्यों को जीवंत बनाते हैं। लोकभाषा का प्रयोग पात्रों को यथार्थवादी बनाता है, जबकि वर्णन सांगीतिक और काव्यात्मक है।

समाज सुधार और प्रासंगिकता--उपन्यास सामाजिक सुधार का दस्तावेज है। जाति, लिंग और वर्ग भेद के विरुद्ध रेणु की चेतना स्पष्ट है। आज भी महंगाई, भ्रष्टाचार और धार्मिक विभेद जैसी समस्याएँ प्रासंगिक हैं। रेणु का संदेश है कि कलियुग में संघटन और नाम स्मरण ही सहारा है, लेकिन यथार्थ में संघर्ष ही मुक्ति का मार्ग है[10]।

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास मैला आँचल (1954) न केवल हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण आंचलिक दस्तावेज है, बल्कि स्वतंत्रोत्तर भारत के ग्रामीण समाज में व्याप्त कुरीतियों और सुधार की आवश्यकता का जीवंत चित्रण भी प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास सामाजिक सुधार का एक मजबूत दस्तावेज है, जिसमें जाति, लिंग और वर्ग भेद के विरुद्ध रेणु की स्पष्ट चेतना झलकती है। मेरीगंज जैसे काल्पनिक गाँव के माध्यम से रेणु ने बिहार के पूर्णिया अंचल की वास्तविकताओं को उजागर किया, जो पूरे ग्रामीण भारत का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास में डॉ. प्रशांत जैसे पात्र आधुनिकता और विज्ञान का प्रतीक बनकर अंधविश्वास, जातिवाद और शोषण से जूझते हैं, जबकि दलित और पिछड़े वर्गों के पात्र आत्माभिमान की जागृति दिखाते हैं।

उपन्यास जातिवाद की गहरी जड़ों को उजागर करता है। गाँव में ऊँच-नीच का भेद, अछूत प्रथा और सामाजिक बहिष्कार स्पष्ट रूप से चित्रित है। दलित बस्तियों के लोग ऊँची जातियों के लिए जूते बनाते हैं, लेकिन उन्हें अछूत माना जाता है। रेणु इस भेदभाव के विरुद्ध दलितों में जागृति दिखाते हैं, जहाँ वे कहते हैं कि "यह राब नहीं चलेगा"। लिंग भेद के संदर्भ में महिलाएँ – जैसे कमली, लछमी और लक्ष्मी – विधवा प्रथा, शोषण और सामाजिक बंधनों से संघर्ष करती हैं। वर्ग भेद जमींदारी प्रथा, महाजनी शोषण और गरीबी के रूप में उभरता है, जहाँ स्वतंत्रता के बाद भी भूमि सुधार नहीं होते और गरीब कर्ज के बोझ तले दबे रहते हैं। रेणु इन कुरीतियों की आलोचना करते हुए सुधार की ओर इशारा करते हैं – सेवा, सहानुभूति और संघटन के माध्यम से।

आज, 2025 में भी उपन्यास की ये समस्याएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं। ग्रामीण भारत में जातिवाद अभी भी गहरा है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों और विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार, दलितों और आदिवासियों के खिलाफ अत्याचार जारी हैं – मंदिर प्रवेश से वंचित करना, सामाजिक बहिष्कार और हिंसा आम है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में जातीय भेदभाव से जुड़े मामले बढ़े हैं। भ्रष्टाचार ग्रामीण योजनाओं – जैसे मनरेगा – में व्याप्त है, जहाँ फंड का दुरुपयोग और स्थानीय नेताओं की लूट आम बात है। महंगाई ने ग्रामीण गरीबों का जीना मुहाल कर दिया है; खाद्य पदार्थों, ईंधन और आवश्यक वस्तुओं की कीमतें बढ़ने से गरीबी की खाई गहरी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में मुद्रास्फीति शहरी क्षेत्रों से अधिक प्रभावित करती है, जैसा कि हाल की रिपोर्टों में देखा गया है। धार्मिक विभेद और साम्प्रदायिक तनाव भी ग्रामीण समाज को बाँट रहे हैं, जो उपन्यास में गांधीजी की हत्या के बाद के पतन से जुड़ता है।

रेणु का संदेश गहन है – कलियुग में "संघे शक्ति कलयुगे" अर्थात् संघटन ही शक्ति है, और भगवान के नाम स्मरण से सहारा मिल सकता है। लेकिन यथार्थ में वे संघर्ष को मुक्ति का मार्ग बताते हैं। उपन्यास कोई क्रांतिकारी समाधान नहीं देता, बल्कि आंशिक प्रगति और जागृति पर जोर देता है। डॉ. प्रशांत का गाँव से जुड़ाव और ग्रामीण चेतना का जागरण इसी का प्रतीक है। आज के संदर्भ में यह संदेश और प्रासंगिक है, क्योंकि ग्रामीण भारत अभी भी गरीबी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य और शिक्षा की कमी से जूझ रहा है। रेणु हमें याद दिलाते हैं कि सुधार बाहरी नहीं, आंतरिक जागृति और सामूहिक प्रयास से संभव है। मैला आँचल आज भी भारत माता के मैलेपन को उजागर करता है, लेकिन अंत में उम्मीद की किरण दिखाता है – संघर्ष और सेवा से समाज बदला जा सकता है। यह उपन्यास न केवल साहित्यिक कृति है, बल्कि सामाजिक चेतना का आह्वान है, जो वर्तमान भारत के लिए अनिवार्य है।

निष्कर्ष-मैला आँचल संघर्ष चेतना और जीवन मूल्यों का ऐसा चित्रण है जो स्वतंत्रोत्तर भारत की ग्रामीण वास्तविकता को उजागर करता है। रेणु ने यथार्थवाद को आंचलिकता से जोड़कर हिंदी उपन्यास को नई दिशा दी। उपन्यास न केवल सामाजिक कुरीतियों की आलोचना करता है, बल्कि मानवीय मूल्यों – प्रेम, सेवा, समानता – की पुनर्स्थापना का आह्वान भी करता है। आज के संदर्भ में यह उपन्यास और भी प्रासंगिक है, क्योंकि ग्रामीण भारत अभी भी उन संघर्षों से जूझ रहा है। रेणु का योगदान यह है कि उन्होंने गाँव को नायक बनाकर लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत किया[11]।

****

संदर्भ सूची-

1. विकिपीडिया, "मैला आँचल", https://hi.wikipedia.org/wiki/मैला_आँचल (पृष्ठ जानकारी उपलब्ध)।
2. हिंदूकुंज, "मैला आँचल उपन्यास का सारांश", https://www.hindikunj.com/2024/09/maila-anchal-upanyas-ka-saransh-phanishwar-nath-renu.html।
3. भारत डिस्कवरी, "मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु", https://bharatdiscovery.org/india/मैला_आँचल_-फणीश्वरनाथ_रेणु।
4. समालोचन, "मैला आँचल: लोकवृत्त का कथा-आख्यान", https://samalochan.com/maila-aanchal/।
5. हिंदूकुंज, "मैला आँचल उपन्यास की तात्विक समीक्षा", https://www.hindikunj.com/2024/10/maila-anchal-upanyas-ki-tatvik-samiksha.html।
6. द वायर, "The Novel and the Nation: Revisiting Phanishwar Nath Renu's 'Maila Aanchal'", https://m.thewire.in/article/politics/the-novel-and-the-nation-revisiting-phanishwar-nath-renus-maila-aanchal-70-years-on।
7. फ्रंटलाइन, "Phanishwar Nath Renu and the Politics of the Village", https://frontline.thehindu.com/arts-and-culture/literature/phanishwar-nath-renu-maila-anchal-hindi-literature-village-india-anchalik-katha/article69655730.ece।
8. अपणी माटी, "शोध आलेख : मैला आँचल का संवेदना पक्ष", https://www.apnimaati.com/2022/06/blog-post_65.html।
9. यायावर, "पुस्तक समीक्षा : फणीश्वर नाथ 'रेणु' द्वारा रचित 'मैला आँचल'", https://www.yayawar.in/2015/09/book-review-maila-anchal-by-phanishwar-nath-renu.html।
10. सरल मटेरियल्स, "मैला आँचल में राजनैतिक चेतना", http://saralmaterials.com/content.php?id=41।
11. विकिपीडिया (अंग्रेजी), "Maila Anchal", https://en.wikipedia.org/wiki/Maila_Anchal।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

ऋता शुक्ल के उपन्यासों में मानवीय संवेदना

प्रियंका कुमारी
(षोधार्थी)
मानविकी संकाय, राँची विष्वविद्यालय, राँची
डा. रेणु सिन्हा
शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
निर्मला कॉलेज, राँची विष्वविद्यालय, राँची

सारांश - मनुष्य के हृदय में निहित वह कोमल भावना जिसके माध्यम से वह दूसरों के सुख-दुख को अपने हृदय में महसूस कर हँसता-रोता है, मानवीय संवेदना है। मानवीय संवेदना वह भाव है जिसके बल पर मनुष्य अन्य प्राणियों से अपनी अलग पहचान स्थापित करता है। इसके अभाव में मनुष्य कठोर, निष्ठुर तथा कृत्रिम बन जाता है और जब मनुष्य कठोरता तथा निष्ठुरता का भाव ग्रहण करेगा तब समाज भी पूर्णतः कठोर और यांत्रिक बन जाएगा।

बीज शब्द:- मानवीय संवेदना, जीवन संघर्ष, भौतिकवादी प्रतिस्पर्द्धा, सुसंस्कृत समाज, ममत्व, धरोहर, उच्चादर्ष, आध्यात्मिक

संवेदना वह अदृष्य डोर है जो मनुष्य को मनुष्य के साथ बड़ी मजबूती से बाँधे रखता है। यही नही जब मनुष्य प्रेम, करूणा, दया, परोपकार के समन्वित भाव को हृदय में धारण करता है तो वह मनुष्यता के उच्चतम षिखर पर आरूढ़ हो जाता है। जब किसी दुखी-पीड़ित शोषित व्यक्ति के आँसू हमें विचलित करते हैं तब हम उसके दुख को दूर करने का प्रयास भी करते हैं। इसी प्रकार के प्रयास से मानवीय संवेदनो साकार होती है। जब ऐसे प्रयास किसी व्यक्ति के द्वारा किये जाते हैं तब वह किसी ईष्वरीय अवतार से कम नहीं होता है। मनुष्य का यह प्रयास समाज में आपसी प्रेम, भाईचारा और सौहार्द को बनाता है।

यदि साहित्य के माध्यम से मानवीय संवेदना को स्थापित करने की बात की जाय तो यह बिल्कुल भी गलत नही है। प्रारंभ से ही साहित्य और कला मानवीय संवेदना की सषक्त अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। सभी काल में साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में समाज के शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, असहाय वर्ग के प्रति अपनी गहरी संवेदना व्यक्त की है। बात चाहे प्रेमचंद की हो या महादेवी वर्मा की, निराला की हो या कृष्णा सोबती की - सभी ने अपनी लेखनी से संवेदना के स्वर को ऊँचा किया है। प्रेमचंद के 'गोदान' का 'होरी' आज भी लोगों के हृदय के संवेदना के तार को झंकृत करता है। महादेवी वर्मा ने मनुष्य से अलग पशु-पक्षियों के जीवन तथा उनकी क्रियाओं के माध्यम से भी संवेदना के भाव को पुष्ट किया है। इसी प्रकार वर्तमान युग में झारखंड की प्रसिद्ध महिला साहित्यकार ऋता शुक्ल ने भी अपनी अधिकांष रचनाओं में मानवीय संवेदना के विभिन्न रूपों का बड़ी गहराई से चित्रण किया है।

पाठक वर्ग जब साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ता है, तो उसमें छिपे भाव उसे सोचने-विचारने पर विवष करते हैं। विभिन्न रचनाओं (उपन्यास, कहानी, कविता) के अलग-अलग पात्र अपनी विषेषताओं से पाठक वर्ग को प्रभावित करता है। पाठक वर्ग भी पात्रों के जीवन संघर्ष, व्यथा, वेदना को स्वयं के साथ जोड़कर देखने लगता है। उसका हृदय करूणा से भर उठता है। पात्रों के सुख-दुख को वह अपना मानने लगता है। इस प्रकार साहित्य समाज को संवेदनषील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दुख की बात यह है कि वर्तमान युग की भौतिकवादी प्रतिस्पर्द्धा ने मानवीय मूल्यों का क्षरण किया है। एक ओर विज्ञान के विकास से समाज हर प्रकार की सुख-सुविधा से परिपूर्ण है, तो दूसरी ओर मनुष्य के आपसी तालमेल तथा आत्मीयता धीरे-धीरे शून्य की ओर बढ़ते जा रहे हैं। समाज के अलग-अलग वर्गों की बात कौन कहे अब तो अपने ही परिवार में सुख-दुख बाँटनेवाले नहीं मिल रहे है। परिवार में पैसे कमाने की होड़ ने समयाभाव को जन्म दिया। इसी प्रगति तभी सार्थक हो सकती है जब वह मानव कल्याण से जुड़ी हो। यह तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में मानवीय संवेदना के भाव पुष्ट हों।हम कह सकते है कि मानवीय संवेदना सीमित भाव का नाम नहीं, बल्कि यह तो व्यापक जीवन दृष्टि है, सार्थक जीवन मूल्य है। समाज में सकारात्मक परिवर्तन तथा विकास तभी संभव है जब मनुष्य स्वयं के साथ-साथ दूसरों के हित का भी ध्यान रखे। यह कार्य संवेदनषील व्यक्ति अपनी उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, करूणा के बल पर बड़ी सहजता से कर सकता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने हृदय में मानवीय संवेदना का विकास करना चाहिए, जिससे सभ्य, स्वस्थ, सुसंस्कृत समाज की स्थापना हो सके। मानवीय संवेदना के संदर्भ में उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो गई कि इसके बिना एक ओर जीवन अधूरा है, तो दूसरी ओर साहित्य भी अधूरा है।

मानवीय संवेदना की दृष्टि से ऋता शुक्ल की लगभग सभी रचनाएँ अद्वितीय है। अपने विभिन्न उपन्यासों - कितने जनम वैदेही, अरूंधती, कब आओगे महामना, कनिष्ठा ऊँगली का पाप, लोपा अगस्त्य में अपनी संवेदना के विविध रूप को पाठक वर्ग तक पहुँचाती हैं। इन सभी उपन्यासों में विभिन्न पात्रों की मानवीय संवेदना इतनी सजीव हैं कि वे सहृदय पाठकों को सीधे प्रभावित करती है।

ऋता शुक्ल ने अपने उपन्यास 'कितने जनम वैदेही' में वैदेही की अति पुरातन किंतु चिर नवीन कथा के साथ उनके जनपद तिवारीपुर की परिखिनें जिसमें उनकी पितामही जागेष्वरी देई भी शामिल हैं - उनके संघर्ष, तप, वेदना की सहज अभिव्यक्ति दी है। वही जागेष्वरी देई जो अपने पति के हर अन्याय, अत्याचार का सदैव मौन प्रतिकार करती है। उनके जीवन की पीड़ा, वेदना हर संवेदनषील व्यक्ति को व्यथित करता है।लेखिका के विभिन्न रचनाओं के पात्र अपने जीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए शांत भाव से आगे बढ़ते जाते हैं। जागेष्वरी देई भी ऐसी ही पात्र हैं। उनके हृदय का ममत्व पाठकों को भी प्रभावित करता है। जागेष्वरी आजी का यह कथन पाठकों को स्नेह से परिपूर्ण करता है -"पूत हो या धिया, संतान ही माता की असली धरोहर होती है। कनिया, इसका पालन-पोषण करना, इसकी नींद सोना-जागना, इसे हीरे -मानिक से कम नहीं समझना य बस, आज से यही तुम्हारी जिंदगी हुई समझो। " [1]

मातृहीना जागेष्वरी देई जैसे पात्र के चरित्र में करूणा, संवेदनषीलता और धैर्य का संतुलन दिखाई पड़ता है। वे अपने जीवन की पीड़ा को अपना नियती मानती है। हर अन्याय और अत्याचार को अपने मौन प्रतिकार से परास्त करती है। उनके चरित्र की इस विषेषता को लेखिका ने उनकी कमजोरी के रूप में नहीं बल्कि सक्रिय सहनषीलता के रूप में चित्रित किया है। ऐसी सहनषीलता जिसके बल पर वे अंतर-बाह्य दोनों तरह से मजबूत होती हैं।स्पष्ट है कि ऋता शुक्ल ने अपने इस उपन्यास में वैदेही तथा जागेष्वरी देई जैसी स्त्री पात्र के आजीवन 'संघर्ष', त्याग और सहनषीलता को अपनी मानवीय संवेदना के बल पर अत्यधिक गहराई से अभिव्यक्ति दी है। ऋता शुक्ल का एक अन्य उपन्यास 'कब आओगे महामना' मानवीय संवेदना का अत्यंत सषक्त चित्रण प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में महामना मदन मोहन मालवीय के जीवन, उनके उच्चादर्ष और संघर्षों के माध्यम से मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। उपन्यास में महामना का व्यक्तित्व करूणा,

दया, परहित जैसे गुणों से ओत-प्रोत है। महामना के हृदय में षिक्षा के माध्यम से श्रेष्ठ मानव निर्माण की भावना है।

उनके शैक्षिक चिंतन में मानवीय संवेदना का विषेष स्थान है। उनके द्वारा काषी हिंदू विष्वविद्यालय की स्थापना समाज में नैतिक तथा मानवीय मूल्यों से युक्त आदर्ष नागरिक तैयार करने की संवेदनषील सोच का सार्थक परिणाम है। काषी हिंदू विष्वविद्यालय की स्थापना के बाद उनका मुख्य उद्देष्य था देष के विद्यार्थियों को इस रूप में षिक्षित करना कि वो भविष्य में देष के विकास में अपना योगदान सुनिष्चित कर सकें। उनका मुख्य विचार था कि षिक्षा के माध्यम से ही समाज में आवष्यक परिवर्तन किया जा सकता है। यह षिक्षा सिर्फ किताबी ज्ञान नहीं आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा नैतिकता से परिपूर्ण हो तभी उद्देष्य की पूर्ति संभव है। ऐसी उदार विचारों के स्वामी महामना के संदर्भ में ऋता शुक्ल का कथन अक्षरषः सत्य प्रतीत होता है -

"हिंदुत्व का विराट स्वर उनकी आत्मा की पोर-पोर में निनादित था। वह हिंदुत्व, जो केवल नीति नहीं, जीवन-सत्य है। वह हिंदुत्व जो आवरण मात्र नीति नहीं, विषुद्ध अध्यात्म है, सचेतन आत्म दर्षन है। " [2]

इस उपन्यास में राष्ट्रप्रेम को संकीर्ण भाव नहीं बल्कि व्यापक मानवीय चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने सदैव सत्य, अहिंसा, मानव मर्यादा, परोपकार, अपनी संस्कृति की रक्षा आदि भावों को अपने कर्मों से सिद्ध किया है। समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों जैसे - जातिगत भेदभाव, अषिक्षा, सामाजिक असमानता आदि के प्रति महामना की संवेदनषील दृष्टि को ऋता शुक्ल ने गहराई से उकेरा है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि समाज का कल्याण, राष्ट्र का कल्याण तब तक संभव नहीं है जब तक देष की युवा पीढ़ी त्याग, कर्तव्यनिष्ठा, सदाचार को अपने जीवन का आधार नहीं बना लेती है।

कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में मानवीय संवेदना के विभिन्न रूप उपन्यास की केंद्रीय आत्मा है। लेखिका ने महामना के व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से समाज को संदेष दिया है कि राष्ट्र के विकास और कल्याण के लिए सभी को मानवीय मूल्यों प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, परोपकार, सदाचरण से युक्त होकर कार्य करना होगा। लेखिका का यह संदेष पाठक वर्ग को मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देता है।

इसी क्रम में ऋता शुक्ल का प्रसिद्ध उपन्यास 'अरूंधती' की चर्चा भी आवष्यक है। यह उपन्यास मानवीय संवेदना की सूक्ष्म, गहन और सार्थक अभिव्यक्ति का सषक्त उदाहरण है। यह उपन्यास विभिन्न भावों को केंद्र में रखकर रचा गया है जिसमें स्त्री जीवन की पीड़ा, उसका आत्मसंघर्ष, सामाजिक यथार्थ, मानवीय मूल्यों आदि प्रमुख है। इस उपन्यास में पात्रों की संवेदना को मात्र भावुकता नहीं कहा जा सकता है, बल्कि यह संवेदना सामाजिक चेतना और नैतिकता से परिपूर्ण है।

उपन्यास की केंद्रीय पात्र 'अरूंधती' स्त्री मन की संवेदनषीलता, सहनषीलता और आत्मसंघर्ष की प्रतिनिधि है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने लिखा है -

"संसार के कर्मों से मुक्त हो जाने की लालसा उसकी नहीं, वह अपने भीतर छिपी बीजरूपा शक्ति का आवाहन करना जानती है। जाति धर्म और सामाजिक रूढ़ियों का परिहार करती हुई वह एक नए 'षांति-तीर्थ' की परिकल्पना करती है, जहाँ माता-पिता के प्रेम से वंचित एक अभिनव-षिषु संसार उसके अकृत ममत्व की प्रतीक्षा में है। " 3'अरूंधती' का जीवन इसलिए आदर्ष नहीं कि वह सदा दुख झेलती है बल्कि वह इसलिए अनुकरणीय है कि वह अपने दुख से ऊपर उठकर दूसरों के कष्ट को भी समझने की क्षमता रखती है। वह षिंजनी, मयंक, सुरम्या, स्वराज जैसे बालक-बालिकाओं की गुरूमाता बनकर सबके दुख-सुख में सहभागी बनती है। यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि उपन्यास को मानवीय संवेदना से भर देती है और पाठक को भावनात्मक रूप से जोड़ती है। उपन्यास में लेखिका ने एक ओर पारिवारिक दबाव तथा नैतिक पाखंड को तो दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों और स्त्री उत्पीड़न को मानवीय पीड़ा के माध्यम से उद्घाटित करती हैं, जिससे पाठक वर्ग भी करूणा तथा आत्मचिंतन के भाव से भर जाते हैं। अरूंधती के जीवन का संघर्ष मानवीय गरिमा विषेषकर स्त्री गरिमा की रक्षा का संघर्ष बन जाता है। वह कठिन परिस्थितियों से हार न मानकर अपने अस्तित्व को पहचानने का प्रयास करती है।स्पष्ट है कि इस उपन्यास में मानवीय संवेदना, स्त्री जीवन के संघर्ष, पीड़ा, वेदना से युक्त अनुभव, सामाजिक यथार्थ और नैतिक मूल्यों के माध्यम से सजीव रूप में अभिव्यक्त हुई है। इस उपन्यास को केवल स्त्री कथा के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय करूणा, सहानुभूति, मानवीय संवेदना से युक्त साहित्य के रूप में पढ़ा जाता है।

ऋता शुक्ल द्वारा रचित लगभग सभी उपन्यासों में मानवीय संवेदना का स्वर काफी ऊँचा है। इस दृष्टि से इनके द्वारा रचित उपन्यास 'लोपा अगस्त्य' इनकी गहरी मानवीय संवेदना का सषक्त और गरिमामयी उदाहरण है। यह उपन्यास केवल पौराणिक-ऐतिहासिक चरित्रों की कथा मात्र नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों और जीवन मूल्यों की संवेदनषील अभिव्यक्ति है। लेखिका ने लोपामुद्रा और अगस्त्य के जीवन प्रसंगों के माध्यम से मानवीय भावनाओं, त्याग, प्रेम का उदाहरण रूप आदि को अत्यंत सहजता से उकेरा है। उपन्यास में एक ओर केंद्रीय पात्र लोपा जो विदर्भ राज्य की राजकुमारी है, उसके मन की संवेदनषीलता, सहनषीलता, परोपकार की भावना आदि का चित्रण है, जो दूसरी ओर ऋषि अगस्त्य के चरित्र की कर्तव्यनिष्ठा और तपस्या का भी सुंदर चित्रण किया गया है। उपन्यास में लोपा अगस्त्य के प्रेम को आध्यात्मिक और मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। लोपा और अगस्त्य का संबंध केवल दांपत्य नहीं, बल्कि अटूट विष्वास, समर्पण, त्याग, सम्मान पर आधारित है। लेखिका ने अत्यंत संवेदनषीलता तथा भावनात्मक गहराई से इनके संबंधों को दिखाया है। राजप्रासाद की सुख-सुविधाओं में पली-बढ़ी, समस्त विद्याओं में पारंगत लोपामुद्रा जब वीतरोगी योगी यती ऋषि अगस्त्य को अपना जीवन साथी चुनती हैं तब अपने मुख से इस प्रकार के तर्क उपस्थित कर सभी को निष्चित कर देती हैं -"पिताश्री, तपोवन में रहनेवाले लोग गृही नहीं होते ..... ? जहाँ तप बल है, वहाँ जीवन कितना सरल हो जाता है। राजभवन की प्राचीरों में बंदिनी होकर रहना मुझे कभी भी स्वीकार्य नहीं।" [4] ऐश्वर्य से भरा जीवन त्याग कर वल्कलधारिणी बननेवाली लोपामुद्रा को उनके संकल्प से कोई भी डिगा नहीं पाया। स्पष्ट है कि लोपामुद्रा मात्र अपने सुख से सुखी नहीं हैं। उन्हें तो विदर्भ राज्य की समस्त प्रजा को सुखी देखना है। जब विदर्भ राज्य की संपूर्ण कृषि व्यवस्था जीर्ण-षीर्ष होने के कगार पर थी, जब प्रजा के पास कृषि योग्य भू-भाग का अभाव था तब सबसे अधिक चिंतनषील लोपामुद्रा थीं। उन्होंने समस्त असुविधाओं को दूर करने के लिए ऋषि अगस्त्य के पास अपनी प्रार्थना भेजी। उनका यह कृत्य लोगों के समक्ष यह भाव प्रस्तुत करती है कि लोककल्याण की भावना से ही व्यक्ति,समाज तथा राष्ट्र का कल्याण संभव है।

निष्कर्ष - निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ऋता शुक्ल के कथा-संसार की केंद्रीय चेतना मानवीय संवेदना है। अरूंधती, कब आओगे महामना, लोपा अगस्त्य जैसे विभिन्न उपन्यासों में लेखिका ने मानव-जीवन के विविध पक्षों को करूणा, सहानुभूति प्रेम, सदाचार, आत्मसम्मान आदि को बड़ी गहराई से अभिव्यक्त किया है। उनके संपूर्ण साहित्य में संवेदना कोरी भावुकता नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ और मानवीय मूल्यों से जुड़ी सजग दृष्टि के रूप में सामने आती है। सभी उपन्यासों में लेखिका की संवेदना व्यक्ति से आगे बढ़कर समाज और समाज से राष्ट्र तक विस्तृत होती दिखाई देती है। स्त्री जीवन की पीड़ा, संघर्ष, सामाजिक विषमता और मानवीय गरिमा आदि सभी तत्व उनके उपन्यासों को अत्यधिक गहराई और प्रासंगिकता प्रदान करते हैं। इनका साहित्य पाठक वर्ग को संवेदनषील, सहृदय और मानवीय बनने की प्रेरणा देते हैं।

****

संदर्भ सूची:-

1.शुक्ल ऋता (2011), कितने जनम वैदेही, प्रभात प्रकाषन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 -31
2.शुक्ल ऋता (2013), कब आओगे महामना, प्रभात प्रकाषन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 -8
3.शुक्ल ऋता (2004), अरूंधती, सत्साहित्य प्रकाषन, दिल्ली, पृष्ठ सं0 -8
4.शुक्ल ऋता (2023), लोपा अगस्त्य, विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 -23

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

कबीर के साहित्य में संघर्ष- चेतना एवं जीवन-मूल्य

डॉ. जितेंद्र गौतम
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
पी.एम. कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शिवपुरी (म. प्र.)

सारांश :-
कबीरदास मध्यकालीन भारत के महान संत-कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक विषमता, सांप्रदायिक कुरीतियों और आध्यात्मिक भटकाव के विरुद्ध एक प्रबल आवाज उठाई। यह शोध पत्र कबीर के साहित्य में निहित संघर्ष चेतना और जीवन मूल्यों का विश्लेषण करता है। कबीर की रचनाएं केवल धार्मिक नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय के लिए एक मजबूत संघर्ष का दस्तावेज हैं। उनकी काव्य भाषा सरल होने के बावजूद अत्यंत प्रभावशाली है और समाज के सभी वर्गों को संबोधित करती है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि कबीर की विचारधारा केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास के लिए नहीं बल्कि एक सार्वभौमिक सामाजिक परिवर्तन का संदेश देती है।

बीज शब्द -कबीर, संघर्ष चेतना, सामाजिक न्याय, जीवन मूल्य, मध्यकालीन साहित्य, आध्यात्मिकता, सामाजिक परिवर्तन, धार्मिक सुधार, मानवीय गरिमा, आधुनिकता

प्रस्तावना :-कबीरदास (1398-1518) मध्यकालीन भारत की सबसे महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और साहित्यिक विभूति थे। उनका जन्म वाराणसी में एक जुलाहा परिवार में हुआ था, जो तत्कालीन भारतीय समाज में निम्न माना जाता था। इसी सामाजिक असमानता के संदर्भ में कबीर ने अपनी संघर्ष चेतना का विकास किया। "कबीर की काव्य परंपरा भक्ति आंदोलन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जहाँ वे सभी धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक मानदंडों की आलोचना करते हैं।"[1] उनकी रचनाएं 'बीजक' के नाम से संकलित हैं।कबीर का साहित्य केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि वह समकालीन समाज की सभी कुरीतियों के विरुद्ध एक सशक्त विद्रोह है। उनके समय में हिंदू धर्म में मूर्तिपूजा, जातिगत भेदभाव और महिलाओं के शोषण की प्रथाएं व्यापक थीं, जबकि इस्लाम में भी रूढ़िवादिता और आडंबर की समस्या थी। "कबीर ने इन सभी समस्याओं के खिलाफ एक महान विद्रोह का आयोजन किया और मानव समानता, सामाजिक न्याय और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की बात की।"[2] उनकी यह चेतना उन्हें केवल एक आध्यात्मिक गुरु नहीं बनाती, बल्कि एक सामाजिक क्रांतिकारी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। इस शोध पत्र का उद्देश्य कबीर के साहित्य में निहित संघर्ष चेतना के विविध आयामों को उजागर करना है। इसमें हम देखेंगे कि कैसे कबीर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जातिगत भेदभाव, धार्मिक रूढ़िवाद, महिला शोषण, आर्थिक असमानता और राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया। साथ ही, हम कबीर के जीवन मूल्यों—जैसे सत्य, प्रेम, समानता, आत्मसम्मान और आध्यात्मिक स्वतंत्रता—की परीक्षा भी करेंगे।

कबीर का परिचय और संघर्ष चेतना का उद्भव:-
कबीर का जीवन ही संघर्ष का इतिहास है। वे एक निम्न जाति के जुलाहे के घर पैदा हुए थे, जहाँ समाज में उनकी निरंतर अवहेलना की जाती थी। इसी सामाजिक असमानता के संदर्भ में कबीर ने अपनी संघर्ष चेतना का विकास किया। "कबीर की शिक्षा-दीक्षा औपचारिक नहीं थी, लेकिन उन्होंने अपने समय के महान संत रामानंद को अपना आध्यात्मिक गुरु माना।"[3] रामानंद भक्ति आंदोलन के एक सुधारक संत थे, जिन्होंने सभी जाति और धर्म के लोगों को समान रूप से स्वीकार किया।कबीर की संघर्ष चेतना मुख्य रूप से तीन स्रोतों से निकलती है: पहला, उनका निम्न जातीय पृष्ठभूमि; दूसरा, मध्यकालीन भारत में व्याप्त सामाजिक असमानता; और तीसरा, भक्ति आंदोलन की सुधारवादी परंपरा। "कबीर ने अपने समय में जातिगत पदानुक्रम को सबसे बड़ी बुराई माना और इसके विरुद्ध एक प्रबल आवाज उठाई।"[4] उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर ब्राह्मणवादी व्यवस्था की कटु आलोचना है, वहीं दूसरी ओर सभी मनुष्यों की आंतरिक समानता का प्रतिपादन है।

कबीर के साहित्य में सामाजिक न्याय का विचार -कबीर के साहित्य का मूल विषय सामाजिक न्याय है। वे विश्वास करते थे कि सच्चा धर्म वह है जो सामाजिक समानता और न्याय को बढ़ावा देता है। "कबीर की दृष्टि में, धर्म का अर्थ केवल कर्मकांड और मूर्तिपूजा नहीं है, बल्कि समाज में न्याय स्थापित करना और सभी मनुष्यों का सम्मान करना है।"[5] उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ इसी विचार को व्यक्त करती हैं:

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भयो न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।"

इन पंक्तियों में कबीर धार्मिक ज्ञान और प्रेम के मध्य एक विभाजन रेखा खींचते हैं। धार्मिक पुस्तकों का बारबार पठन करने से कोई सच्चा पंडित नहीं बन सकता, बल्कि सच्ची शिक्षा तो प्रेम की है। "कबीर के लिए, सामाजिक न्याय का अर्थ है सभी मनुष्यों के साथ प्रेम और समानता का व्यवहार करना।"[6]कबीर ने जातिगत भेदभाव के विरुद्ध अपनी तीव्र आलोचना प्रस्तुत की। वे मानते थे कि जन्म से कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता। "कबीर की दृष्टि में, ब्राह्मणवाद और जातिप्रथा सामाजिक विषमता के मूल कारण हैं।"[7] महिला न्याय भी कबीर के सामाजिक विचार का एक महत्वपूर्ण अंग है। वे कहते हैं कि प्रकृति के नियमों में, नर और नारी दोनों समान महत्व रखते हैं।

धार्मिक सुधार और आध्यात्मिक स्वतंत्रता :-कबीर के समय हिंदू और मुस्लिम, दोनों धर्मों में रूढ़िवाद और बाह्य आडंबर का प्रचलन था। "कबीर ने दोनों धर्मों की बाहरी रूढ़ियों की कटु आलोचना की और एक सर्वव्यापी आध्यात्मिकता का प्रचार किया।"[8] हिंदू धर्म में मूर्तिपूजा, कर्मकांड और जाति-व्यवस्था प्रमुख समस्याएं थीं, जबकि इस्लाम में भी अरबी परंपराओं का अंधानुकरण किया जा रहा था।कबीर मूर्तिपूजा के विरोधी थे। उनकी एक प्रसिद्ध पंक्ति है:-

'पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
याते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।

यह कहते हुए कि यदि पत्थर की पूजा से भगवान मिल जाता है, तो मैं पूरे पहाड़ की पूजा कर दूँ। इस तरह कबीर पूजा-पाठ की निरर्थकता को उजागर करते हैं। "कबीर की दृष्टि में, सच्ची आध्यात्मिकता का संबंध बाहरी अनुष्ठानों से नहीं, बल्कि आंतरिक भक्ति और ईश्वर से सीधे संबंध स्थापित करने से है।"[9]कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा को प्रस्तुत किया, जहाँ वे एक ऐसे ईश्वर की कल्पना करते हैं जो किसी रूप, रंग या विशेषता से परे है। यह ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है, जिसे हृदय में अनुभव किया जा सकता है। "कबीर का निर्गुण ब्रह्म हिंदू और मुस्लिम, दोनों धर्मों को एक बिंदु पर एकत्रित करता है, क्योंकि यह ईश्वर किसी धर्म विशेष का नहीं है, बल्कि सभी का है।"[10]

आर्थिक न्याय और सामाजिक समानता:-कबीर केवल धार्मिक सुधार के पक्षधर नहीं थे, बल्कि आर्थिक न्याय के भी प्रबल समर्थक थे। मध्यकालीन समाज में आर्थिक असमानता अत्यंत तीव्र थी। "कबीर ने इस आर्थिक असमानता की निंदा की और एक न्यायसंगत आर्थिक व्यवस्था की बात की।"[11]कबीर का विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कड़ी परिश्रम से जीविका अर्जित करनी चाहिए। वे बेईमान व्यापार, सूद लेने वालों और लूटपाट करने वालों की कटु आलोचना करते हैं। उनकी दृष्टि में, सच्ची समृद्धि वह है जो सत्य और न्याय के माध्यम से अर्जित की गई हो। "कबीर मानते हैं कि जो व्यक्ति अन्यायपूर्ण तरीकों से धन अर्जित करता है, वह भले ही सांसारिक रूप से समृद्ध हो, लेकिन आध्यात्मिक रूप से दरिद्र है।"[12] कबीर स्वयं एक जुलाहा थे और अपनी श्रम के माध्यम से जीविका अर्जित करते थे। उन्होंने कभी भी दान पर आश्रित नहीं होना पसंद किया। यह उनके जीवन मूल्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है। उनका कहना है कि 'जिहि खाइयै सो खोवै सब, साचु कहौ नहि कोय।' अर्थात्, जो कुछ बिना परिश्रम के खाया जाता है, वह नष्ट हो जाता है। "कबीर का सपना एक ऐसे समाज का है जहाँ न तो कोई राजा है और न ही कोई रंक, बल्कि सभी मनुष्य एक दूसरे के साथ भाईचारे के साथ रहते हैं।"[13]

कबीर के जीवन मूल्य और व्यक्तिगत विकास:-कबीर के साहित्य में निहित जीवन मूल्य मनुष्य के व्यक्तिगत विकास के लिए एक सम्पूर्ण दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। ये मूल्य न केवल आध्यात्मिक विकास से संबंधित हैं, बल्कि नैतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास को भी समेटते हैं।

सत्य और ईमानदारी:-कबीर के जीवन में सत्य सबसे महत्वपूर्ण मूल्य है। उनका कहना है कि 'सत तो एक मात्र सार है, और साँची बात न और।' अर्थात्, सत्य ही एकमात्र वास्तविकता है। "सत्य के प्रति कबीर की प्रतिबद्धता इतनी गहरी थी कि वे इसके लिए सामाजिक निंदा और शारीरिक यातना सहने को भी तैयार थे।"[14] वे मानते हैं कि सत्य कभी नष्ट नहीं हो सकता।कबीर ईमानदारी को आत्मा की शुद्धि का साधन मानते हैं। व्यावसायिक लेनदेन से लेकर व्यक्तिगत संबंधों तक, सभी क्षेत्रों में सत्य और ईमानदारी की अपेक्षा की जानी चाहिए। उनकी दृष्टि में, ईमानदार व्यक्ति को कभी भी शर्माने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसका अंतरात्मा स्वच्छ होता है।

प्रेम और करुणा:-प्रेम और करुणा कबीर के जीवन दर्शन के केंद्र बिंदु हैं। वे विश्वास करते हैं कि प्रेम ही एकमात्र ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को अपने संकीर्ण स्वार्थों से मुक्त कर सकती है। ""कबीर का प्रेम धार्मिक सीमाओं से परे है; यह सभी प्राणियों के लिए एक समान प्रेम है।"[15] करुणा के संदर्भ में, कबीर मानते हैं कि प्रत्येक सजीव प्राणी में ईश्वर का अंश है, इसलिए किसी भी जीव को कष्ट देना पाप है। वे पशुबलि और हिंसा के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में, करुणा केवल भावनात्मक नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक कर्तव्य है जो सामाजिक न्याय को स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

आत्मसम्मान और आत्मविश्वास:-कबीर के जीवन में आत्मसम्मान का एक विशेष स्थान है। वे किसी के भी आगे झुकने को तैयार नहीं हैं, भले ही वह राजा क्यों न हो। उनका विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य में एक आंतरिक गरिमा है जो उसके जन्म के आधार पर निर्धारित नहीं होती। "कबीर एक निम्न जाति से संबंधित होने के बावजूद, कभी भी अपने को हीन नहीं माना और न ही किसी के समक्ष अपनी अस्मिता को झुकाया।"[16] आत्मविश्वास के माध्यम से, कबीर समाज को संदेश देते हैं कि भले ही समाज आपको निम्न मानता हो, लेकिन आप अपने गुणों और कर्मों के माध्यम से खुद को सिद्ध कर सकते हैं। यह संदेश विशेषकर दलित और वंचित वर्गों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं –

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

सभी में एक ही रक्त, मल-मूत्र, चमड़ी और मांस है। एक ही ज्योति (आत्मा) और हवा का संचार है, तो फिर कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र?

'एकै बूँद एकै मल-मूत्र, एकै चाम एकै गूदा।
एकै जोति एकै पवन पसारा, कौन ब्राह्मण कौन शूद्र।'

उपरोक्त पंक्तियों में संदेश है कि मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं, सब ईश्वर की संतान हैं।

सरलता और विनम्रता:-कबीर का जीवन बेहद सरल था। उन्होंने भौतिक संपत्ति का कभी संचय नहीं किया और न ही भव्य दिखावे को महत्व दिया। उनकी सरलता उनकी शक्ति थी। "कबीर विनम्रता में विश्वास करते हैं, लेकिन यह विनम्रता दासत्व नहीं है; यह एक सचेतन विकल्प है।"[17] वे विनम्र होने के साथ-साथ आत्मनिर्भर और आत्मनियंत्रक भी थे। सरलता और विनम्रता के माध्यम से, कबीर एक ऐसी जीवन शैली का प्रचार करते हैं जो पर्यावरण के लिए टिकाऊ है और समाज में सद्भावना उत्पन्न करती है।

कबीर का साहित्य और सामाजिक विद्रोह:-कबीर के साहित्य को समझने के लिए उसे केवल आध्यात्मिक ग्रंथ के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक विद्रोह के दस्तावेज के रूप में देखना आवश्यक है। उनकी रचनाओं की भाषा सरल है, लेकिन उसमें निहित विचार अत्यंत प्रबल और क्रांतिकारी हैं। कबीर की काव्य परंपरा मौखिक थी। उन्होंने अपनी रचनाएं सीधे जनता के सामने प्रस्तुत कीं और उसे समझाया। यह उन्हें एक जनांदोलन का नेतृत्व करने का अवसर देता है। "कबीर की साखियाँ (दोहे) सरल हैं, लेकिन वे गहरे सामाजिक और आध्यात्मिक अर्थ को समेटे होते हैं।"[18] इस कारण, उनकी रचनाओं को साक्षर और निरक्षर, दोनों वर्गों द्वारा समझा जा सकता है। कबीर के विद्रोह की प्रकृति अहिंसक है। वे किसी को हिंसा के माध्यम से समझाने की बजाय, विचार और संवाद के माध्यम से लोगों को जागरूक करना चाहते हैं। उनका विद्रोह मुख्य रूप से विचारों के स्तर पर है। ""कबीर की आलोचना सीधी और कठोर है, लेकिन उसका उद्देश्य विध्वंस नहीं, बल्कि निर्माण है।"[19] कबीर का यह विद्रोह भक्ति आंदोलन का एक महत्वपूर्ण अध्याय बन गया। उनके विचारों से प्रेरित होकर, लाखों लोगों ने रूढ़िवादी धार्मिक प्रथाओं को छोड़ दिया और एक नई सामाजिक चेतना का विकास किया। कबीर के माध्यम से भक्ति आंदोलन केवल धार्मिक सुधार तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन गया।

कबीर की विचारधारा की वर्तमान में प्रासंगिकता:-कबीर का साहित्य और विचार आज के आधुनिक संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। 21वीं शताब्दी में, जहाँ वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के कारण सामाजिक मूल्य बिखरे हो रहे हैं, वहाँ कबीर की विचारधारा एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है। आधुनिक भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव अभी भी एक गंभीर समस्या है। कबीर के विचार इस समस्या के समाधान के लिए एक महत्वपूर्ण

दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। "कबीर की कथन कि सभी मनुष्य समान हैं, आजकी समानता और सामाजिक न्याय की बहस में भी प्रासंगिक है।"[20] धार्मिक संघर्ष और साम्प्रदायिकता भी आज की एक बड़ी समस्या है। कबीर का निर्गुण ब्रह्म और सार्वभौमिक प्रेम का संदेश साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ावा देता है। कबीर का विचार है कि सभी धर्मों का मूल एक है, और यह विचार आज की बहु-धार्मिक और बहु-सांस्कृतिक दुनिया में शांति और सहअस्तित्व के लिए अत्यंत आवश्यक है। पर्यावरणीय संकट और पारिस्थितिक असंतुलन भी आजकी प्रमुख समस्या है। कबीर की सरलता, विनम्रता और प्रकृति के साथ सामंजस्य की अवधारणा एक टिकाऊ विकास का मार्ग दिखाती है। कबीर का संदेश आधुनिक मनुष्य को अपनी लालसा को नियंत्रित करने और प्रकृति के साथ एक संतुलित संबंध स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है।

'बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।'

यहाँ कबीर संदेश देते है कि जब मैं दुनिया में बुराई खोजने निकला, तो कोई बुरा नहीं मिला। जब अपने मन में झाँका, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।वास्तव में बुराई बाहर नहीं, अपने अंदर होती है। आत्म-चिंतन आवश्यक है।

'कंकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय?'

कबीर कहते हैं कि कंकण पत्थर जोड़कर मस्जिद बनाई, उस पर चढ़कर मुल्ला अज़ान देता है, क्या खुदा बहरा हो गया है? ईश्वर को बाहरी कर्मकांडों (मस्जिद, मंदिर) की ज़रूरत नहीं, वह तो हर जगह है। कबीर की साखियाँ आडंबरों को त्यागकर आंतरिक शुद्धि, समानता और प्रेम-भक्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

निष्कर्ष :- कबीरदास मध्यकालीन भारत के एक असाधारण संत-कवि थे, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का संदेश दिया। उनकी संघर्ष चेतना केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि समष्टिगत स्तर पर समाज के सभी वर्गों को स्पर्श करती है। कबीर के साहित्य में निहित मुख्य विचार हैं: जातिगत भेदभाव का विरोध, धार्मिक सुधार, आर्थिक न्याय, महिला समानता, और आध्यात्मिक स्वतंत्रता। ये विचार न केवल उनके समय के लिए क्रांतिकारी थे, बल्कि आज भी समान रूप से महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं। "कबीर की विचारधारा एक सर्वव्यापी मानवतावाद का प्रतीक है, जहाँ सभी प्राणियों को समान सम्मान और अधिकार दिए जाते हैं।"[21]

कबीर के जीवन मूल्य—सत्य, प्रेम, करुणा, आत्मसम्मान, ईमानदारी और सरलता—ये सभी एक पूर्ण मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक हैं। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत विकास में सहायक हैं, बल्कि एक न्यायसंगत और समतामूलक समाज के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कबीर का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साधारण भाषा में गहरे विचारों को प्रस्तुत किया। उनकी काव्य भाषा इतनी सरल है कि कोई भी व्यक्ति उसे समझ सकता है, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित। यह उन्हें एक जन-कवि बनाता है, न कि केवल एक विद्वान या आध्यात्मिक गुरु।

अंत में, कहा जा सकता है कि कबीर का साहित्य एक शाश्वत सामाजिक पाठ्यक्रम है, जो प्रत्येक समय में मनुष्य को सामाजिक न्याय, आध्यात्मिक स्वतंत्रता और मानवीय मूल्यों की ओर मार्गदर्शन करता है। उनका संघर्ष और उनके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने 500 वर्ष पहले थे। आज का भारतीय समाज कबीर की विचारधारा को अपनाकर एक अधिक न्यायसंगत, समतामूलक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध समाज की ओर अग्रसर हो सकता है।

****

संदर्भ सूची:-

1. नामवर सिंह (1978)। "कबीर: काव्य और विचार", राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी (1984)। "कबीर अध्ययन", राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. डॉ. राहुल सांकृत्यायन (1972)। "कबीर परिचय", किताब महल, प्रयागराज।
4. डॉ. जगदीश गुप्त (1983)। "कबीर का समाज दर्शन", वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. माताप्रसाद गुप्त (1995)। "कबीर साहित्य और आज का भारत", वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
6. परशुराम चतुर्वेदी (1989)। "कबीर की आलोचना", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1981)। "हिंदी साहित्य का इतिहास", नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
8. विजय देव नारायण साही (1992)। "कबीर: व्यक्ति और विचार", साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।
9. डॉ. धर्मवीर (1996)। "कबीर का सामाजिक दर्शन", अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली।
10. पुरुषोत्तम अग्रवाल (2001)। "कबीर और मानवीय मुक्ति", अनु पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
11. डॉ. सीता अरविंदन (1999)। "कबीर की आर्थिक विचारधारा", लोकमानस प्रकाशन, वाराणसी।
12. भोला नाथ तिवारी (1987)। "कबीर की धार्मिक विचारधारा", हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
13. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह (1993)। "कबीर: समाज और आध्यात्मिकता", राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
14. डॉ. शमशेर सिंह (2000)। "कबीर की सत्य की खोज", वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
15. डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा (1998)। "कबीर का भक्ति दर्शन", राजस्थान प्रकाशन, जयपुर।
16. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (2002)। "कबीर: आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा", लोक प्रकाशन, वाराणसी।
17. डॉ. प्रकाश दीक्षित (1997)। "कबीर की जीवन शैली", साहित्य निकेतन, लखनऊ।
18. डॉ. अरविंद प्रसाद (2003)। "कबीर की काव्य भाषा और समाज", भारती प्रकाशन, दिल्ली।
19. डॉ. सुनील शर्मा (1999)। "कबीर का विद्रोह और निर्माण", अनुमति प्रकाशन, कानपुर।
20. डॉ. राजीव कुमार (2004)। "कबीर की आधुनिकता", राष्ट्रीय पुस्तक निर्माण संस्था, कोलकाता।
21. डॉ. गोपेश्वर सिंह (2001)। "कबीर का सार्वभौमिक मानवतावाद", साहित्य भारती प्रकाशन, गुड़गांव।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

टुसू पर्व में जीवन दर्शन

देवेन्द्र साहू
सहायक प्राध्यापक
नागपुरी विभाग
कार्तिक उरांव महाविद्यालय गुमला - झारखण्ड

माघ कृष्ण पक्ष द्वितीय दिवस को मनाया जाता है। विसर्जन मेला दुसरे दिन से कहीं-कहीं टुसू का मेला मास भर चलता रहता है। झारखण्ड प्रदेश में भी इस पर्व को उल्लासपूर्ण उमंग उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस पर्व में सुर्य उपासना की प्रमुखता होती है। सुर्य का उतरायण होना इस त्योहार का मुख्य आधार है। खेत खलिहान से अनाज घरों में संरक्षित हो जाता है। झारखण्ड के पूर्वी क्षेत्र में पंचपरगनिया एवं कुरमाली समाज मंे टुसू का त्योहार बहुत धुम धाम से मनाया जाता है। टुसू पर्व के कथा भी अत्यन्त रोचक है। टुसू पर्व में लोकगीत भी अत्यन्त सुदंर मधुर स्वर में गाये जाते हैं। जगह-जगह पर नदी किनारे इस अवसर पर मेला (जातरा) भी लगाया जाता है। नागपुरी समाज में भी टुसू पर्व की कथा बहुत लोकप्रिय हुई है। इसे गाँवों में सुनने को मिलता है। टुसू पर्व के गीत गाते बजाते और झुमते हैं। गुमला जिला के नागफेनी गाँव में दक्षिणी कोयल नदी के किनारे बहुत बड़ी मेला भी मकर संक्रांति के दिन लगता है। इसी तरह खुंटी क्षेत्रों में रंग रोड़ी का मेला तजना नदी के किनारे वृहद रूप में लगता है। नाच गान खुब होती है। टुसू गीत के अपने राग लय और ताल भी है। यह पर्व हास परिहास का उत्सव माना जाता है। डॉ0 गिरिधारी राम गौंझ के मतानुसार -

‘‘मकर सक्रांति सुर्य का उतरायण होना। मौसम में तनिक परिवर्तन। आम मंजरियों का आरम्भ। पतों का झड़ना शुरू ऐसे ही जाते हुए शीत की विदाई की तैयारी का उत्सव है टुसू पर्व।

झारखण्ड की पूर्वी भाग का पंचपरगाना इलाके में मेला और इसे लगे सिमांत इलाकों का एक महत्वपूर्ण पर्व है। नए वस्त्र धारण कर टुसू मेले जाना। टुसू का विसर्जन। गुड़ मुढ़ही पीठा (अरसा) खाना। कुमारी कन्याओं की तलास। विवाह के सपनों को सकार करने का पर्व उत्सव है। टुसू मेले में युवाओं का तीरादांजी का खेल चलता है। शक्ति प्रदर्शन कर खेत जोतने का उत्सव भी है। विजयी युवक के घर लौटने पर पाँव पखारे जाते हैं। दुसरे दिन खेतों को तीन बार जोतने का कार्य संपन्न होता है।

मूलतः टुसू पर्व खेती - खलीयानी का काम समाप्त कर अनाज घरों में मोरा छटका, डिमनी आदि में भर कर रखने के बाद खाली समय का उत्सव है। धान कटनी के समय धान के एक बाली को छोड़ दिया जाता है। उसे बाद में किसी शुभ दिन मिट्टी समेत उस बाली के पौधे समेत उखाड़कर खलियान फिर घर में स्थापित किया जाता है। इसे दिनी बुढ़ी अथवा स्थान विशेष पर दिनी विरान भी कहते हैं। पुरूषों द्वारा लाए गये दिनी बुढ़ी को घर की महिलाएँ देवी रूप में पुजा करती है। इसकी मिट्टी को अगली बार बोने वाले धान में मिला कर बोया जाता है। अघहन की समाप्ति के बाद टुसू की स्थापना एक मिट्टी के टोकना (बर्तन) में आरवा चावल के आटे का गोला और गोबर का गोला टुसू पर्व के प्रतीक रूप में स्थापित कर घर के दिसवा (आला) को सजा कर रखा जाता है। इसे तीन अंगुलियों से तीन बार सिन्दूर का (टीका) टिपन दिया जाता है। धुप, धुवन, दीप से पुजा की जाती है। पुजा के बाद टुसू गीत गाए जाते हैं। यह कार्य पूर्णतः कुमारी कन्याएँ करती है। उपर से घर की महिलाएँ गीत गाने में साथ देती है।

मकर सक्रांति के पूर्व मास भर टुसू स्थापना अन्तर्गत टुसू की स्थापना कर प्रति दिन पूजा होती है। मकर सक्रांति के दिन सुर्यास्त के पहले टुसू का विसर्जन होता है। टुसू के लिए मुढ़ही या भंुजे वह भी आठ प्रकार के अनाजों का लावा चढ़ाया तथा प्रसाद रूप में ग्रहण किया जाता है। इस दिन गुड़ पीठा खाने की परंपरा पूर्वी अंचल झारखण्ड में आज भी यथावत है। लोग खाते भी और खिलाते खुब हैं। टुसु का विसर्जन हमेशा बहती नदी के धारा में होता है। नदी के संगम में विशेष रूप से मेला लगा कर विसर्जन होता है। जैसे - स्वर्ण रेखा, कांची एवं राद नदी का संगम टुसु मेले के लिए प्रख्यात है।टुसू विसर्जन की विशेष विधि होती है। लोग टुसू के लिए चौड़ल या बेटुला बनाते हैं। जैसे:- मुहर्रम में तजिया। उसी चौड़ल को फुला रंगीन कागजों, बांस लकड़ी, मोर पंख, धान की बाली जो चोटी में लगायी जाती है। से सजाते हैं।

टुसू मेले में विसर्जन के पूर्व हास परिहास के गीत गाए जाते हैं। जबकि विसर्जन अर्थात् टुसू की बिदाई के समय के गीत बहुत ही करूणिक हो जाते हैं। मेले से लौटते वक्त वतावरण जो करूण गीतों से गमगीन हुआ रहता है। उसे काटने के लिए स्त्री - पुरूष एक दुसरे पर अश्लील गीत गाते घर लौटते हैं। इसको लोग बुरा नहीं मानते हैं। ऐसे समय आशुगायकों की वाणी में मौन चित्रण की अधिकता होती है।

कहीं-कहीं दो गावों के युवा अपनी शक्ति प्रदर्शन के लिए नाटकीय युद्ध भी करते हैं। तो कहीं-कहीं संगीत का द्वन्द्व होता है। टुसू के बासी दिन अर्थात् दुसरे दिन किसान तीन बार अपने-अपने खेतों में हल चलाते हैं। टुसुू पर्व को औंड़ी - बौंढ़ी भी कहा जाता है। इस दिन कहीं आने-जाने से भटकते रहने की शंका गहरी हो जाती है। खुंटी में रंग रोड़ी में मेला लगता है। टुसू की कई स्थानीय कथाएँ विकसीत हो गई है। एक कथा में एक कुम्हार की सुन्दर कन्या पर एक राजकुमार मुग्ध हो जाता है। विवाह के कुछ दिन बाद राजकुमार चल बसता है। परिणामतः टुसू पति के साथ सती हो जाती है। एक दुसरी कथा में राजा की बेटी टुसू अति सुन्दर थी। वह असमय में मर जाती है। उसके मोह में राजा पागल हो जाता है। टुसू की प्रतिमुर्ति (चौड़ल) बनाकर राजा को संत्वाना दिया जाता है। तभी राजा ठीक हो जाता है। तभी से टुसू पर्व मनाया जाता है।

टुसू हर्ष उल्लास का पर्व है। कृषि उपज से घर भर जाने का उत्सव है। विवाह शादी कन्या देखने का त्योहार है। अपनी कला प्रियता को बनाए रखने का उपक्रम है। अब तो चौड़ल निर्माण की प्रतियोगिता भी होने लगी है। विजेता को सम्मानित एवं पुरूस्कृत किया जाता है।

टुसू एक अति सुन्दर मधुर सुशील कन्या की स्मृति लोकउत्सव है। ऐसी ही सुन्दर कन्या युवकों को मिले। तथा बालिकाएँ टुसू की तरह सुन्दर सुशील व्यवहार कुशल बनने तथा योग्य पति पाने की कामना के साथ पूजा करती है। टुसू ऋतु परिवर्तन के समय एक मौसम के विसर्जन एवं दुसरे का आगमन का त्योहार है। आनंद, उमंग, उत्साह से सराबोर टुसू फौदी खेल के साथ समाप्त हो जाता है।’’[1]

नागपुरी समाज में टुसू पर्व (मकर सक्रांति) को खास कर सदान समुदाय ही अधिकतर मनाते हैं। आदिवासियों में कहीं-कहीं पर ही इस पर्व को मनाया जाता है। पूर्वी झारखण्ड में प्रायः सदान आदिवासी दोनों जन समुदाय इस पर्व को हर्ष उल्लास के साथ मनाते हैं। दक्षिणी झारखण्ड में भी मकर सक्रांति के दिन धुम धाम से मेला लगाया जाता है। सभी लोग शीत ऋतु की समाप्ति के कारण मेला घुमने जाते हैं। मकर सक्रांति के दिन कहीं-कहीं पर 14 जनवरी को पर्यटन स्थलों पर

सभी लोग दर्शन करने जाते हैं। इस त्योहार में तील लड्डु तिलकुट) मुरही लड्डु या तो अन्य प्रकार की लड्डुओं से मुंह मीठा की सुरूवात किया जाता है। मेला में भी ये लड्डु मिठाई खुब चड़ते हैं। जिसे सभी लोग खरीदते हैं। अपने घर परिवार जो घर में रहते हैं। उनके लिए यही मिठाई खरीद कर लाने की परम्परा बना हुआ है। कहीं-कहीं पर रथ यात्रा भी निकाली जाती है। जैसे - नागफेनी में माहा रथ यात्रा किया जाता है। और बहुत बड़ी मेला लगाया जाता है। इस पर्व में भगवान भास्कर की उपासना भी किया जाता है। इस दिन बहता पानी नदियों में नहाने की परंपरा भी बनी हुई है। जो अत्यन्त शुभ माना जाता है।

टुसू पर्व की कथा झारखण्ड के हर पर्व त्योहारों की कोई न कोई लोककथाएँ हैं। जो अत्यन्त ही रोचक है। इसे समाज में बहुत ही लोकप्रिय माना जाता है। टुसू पर्व का भी कई कथाएँ हैं। जो स्थान भेद से किंचिंत बदल जाती है। पंचपरगाना क्षेत्र में तीन लोक कथाएँ प्रचलित है। डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज' के मतानुसार ये कथाएँ तीन प्रकार से है। जो इस प्रकार है -

पहली कथा है - ''पंचपरगाना के एक गाँव में एक कुम्हार की बेटी अति सुन्दर थी। उसका नाम था टुसूमणि। एक दिन वह जंगल में पतियाँ तोड़ने गई। वहाँ का राजकुमार उसी वन में शिकार खेलने निकला था। शिकार खेलने के क्रम में राजकुमार की नजर परम सुन्दरी टुसूमणि पर टिक गई। राजकुमार शिकार करने आया था पर वह तो टुसूमणि के सौंदर्य का शिकार हो गया। टुसूमणि और राजकुमार की आँखें चार हुई। दोनों के हृदय में प्रेम के ज्वार उताल मारने लगा। राजकुमार भी टुसूमणि के कुम्हार पिता से उससे विवाह का प्रस्ताव रखा। कुम्हार क्या जवाब देता। वह गरीब मिट्टी की कारीगरी से अपने परिवार का पालन - पोषण करता था। राजकुमार की बराबरी की सोच भी नहीं सकता था। पर राजकुमार बड़ी कठिनाई से टुसूमणि को विवाह कर अपने महल ले आया। सुख के दिन बड़ी तेजी से व्यतीत हो रहे थे। आनन्द महल में आनन्द ही आनन्द था। अचानक क्या हो गया राजकुमार अकारण एक दिन मौत हो गई। खुशी गम में परिणत हो गई। टुसू अपने प्रिय पति राजकुमार को प्रेम के प्रतिदान में क्या दे सकती थी। अपने पति की चिता में सोलह शृंगार कर सती हो गई। राजकुमार के राज्य में सुख, दुख में बदल गया। हँसी खुसी में नृत्य संगीत में मेहनत और इमानदारी में जीने वाले लोग राजकुमार और टुसुमणि के ऐसे विदारक दृश्य को देखकर उनकी याद में डुब गए। उस सुन्दर प्रेम पूर्ण जोड़े को फिर न देख पाने की याद में टुसू की पालकी सजाकर लोग उसे पुजने लगे। गरीब की बेटी का सुख विधाता से देखा न गया। इसी शोक में आज भी टुसू पर्व मनाते हैं। और अपनी प्रिय टुसूमणि की याद को लोग मकर सक्रांति के दिन जिस दिन टुसू पति के साथ उस लोक में चली गई। तब से टुसू पर्व मनाने की परम्परा चल पड़ी।

दुसरी कथा है - एक राजा था वह कुम्हार की बेटी टुसूमणि की सुन्दरता पर मोहित हो गया। पर राजा उसे प्राप्त करने में असफल रहा टुसूमणि अचानक असमय में मृत्यु को प्राप्त हुई। राजा पछताता रह गया। अतिशय प्रेम के कारण राजा सुन्दर टुसूमणि के प्रेम में पागल हो गया। पंचपरगना राज्य में अव्यस्था फैल गयी।

तब वहाँ की प्रजा टुसुमणि की एक प्रतिमुर्ति खुबसुरत पालकी या चौड़ल के रूप में राजा को बड़ा राहत दिया। यही आपकी टुसू है। इसकी याद में आप पुरे राज्य में चौड़ल बनवाएँ। उस पर टुसू को स्थापित कर उसे धुम धाम के साथ नदी में विसर्जन कर दे। पर राजा तो उसकी याद में पागल सा हो गया था। परन्तु चौड़ल में स्थापित टुसू की शोभा यात्रा और नाचते गाते - बजाते देख राजा ठीक हो गया। और फिर से अपने राज - काज में ध्यान देने लगा। कहते हैं- टुसू की सुन्दरता पुरे इलाके को विमोहित कर रखी थी। उसी सौंदर्य की उपासना है। टुसू पर्व।

तीसरी कथा है - इस कथा में भी कुम्हार की अद्वितीय सुन्दर कन्या टुसूमणि की सुन्दरता फुलों की खुशबु की तरह पुरे पंचपरगाना में फैल गई थी। चारों ओर टुसू मणि के सौंदर्य की ही चर्चा होती थी। एक मुगल आक्रमणकारी उस फुल सी सुन्दर टुसू को पाने के लिए एड़ी चोटी एक कर बैठा। न केवल कुम्हार बल्कि पुरे पंचपरगाना इलाके के लोगों इस मुगल के आंतक से परेशान थे। कुम्हार भी अपनी बेटी को किसी भी हालत में उस मुगल आतातायी को देने के लिए तैयार न हुआ। वह दुष्ट मुगल अपनी पुरी शक्ति से कुम्हार को परेशान करने लगा। कुम्हार को हर तरह से नष्ट कर देने के लिए उसने कोई भी उपाय न छोड़ा।

टुसू अपने पिता पर जुल्म होते देख कर और मुगल आतंक से उबकर अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देना उचित समझी और कांची नदी में मुगल के बढ़ते दबाव और अपने पिता के कष्ट को देखकर कुद कर जीवन लीला ही अंत कर दी। न रहे बांस न बाजे बांसुरी। इसी टुसु के लिए मुगल पुरे पंचपरगाना को तबाह करने में लगा था।

टुसू अपनी अस्मीता की रक्षा के लिए जो बलिदान दी और पंचपरगानिया इलाके के लिए गौरव गरीमा की रक्षा की। इसी की याद में टुसू उत्सव मनाया जाता है। टुसू की स्मृति में चौड़ल या पालकी बनाकर उसके त्याग की और बलिदान एवं आत्म रक्षार्थ जो कदम उठायी वह अद्भुत था। उसे प्रतीक रूप में आज भी लोग धूम धाम से टुसु मनाते आ रहे हैं।

तीनों ही कथा में कुम्हार की बेटी की सुन्दर कन्या का वर्णन है। या एक में राजकुमार दुसरे में राजा और तीसरे में मुगल आतंकी है।''[2]

झारखण्ड प्रदेश में सभी लोग आपसी मेल मिलाप के साथ हर उत्सव को मनाते हैं। यहाँ की संस्कृति की अपनी अलग पहचान है। नागपुरी संस्कृति भी अपनी अलग पहचान रखती है। टुसू पर्व (मकर सक्रांति) भी एक लोकप्रिय उत्सव है। झारखण्डी उत्सव में टुसू की अलग ही महत्व है। टुसूमणि की अद्वितीय सुन्दर रूप को देख कर सभी ने उसे पाना चाहा पर सबके साथ कुछ न कुछ घटना घट जाती है। और टुसूमणि का सौंदर्य रूप सबको आश्चर्य में डाल दिया। टुसूमणि भी अपनी आत्म सम्मान की रक्षा कर बलिदान हो जाती है। ये टुसूमणि का कथा को समाज कभी भी नहीं भूल पायेगा।

इस कथा से समाज को नई सिख मिलती है। सौंदर्य कुशल व्यवहार चरित्रणम पति पत्नि की अपना भी इस कथा में परिलक्षित होती है। इसी कामना के साथ युवक युवतियों टुसू पर्व की उपासना करते हैं। ये कथाएँ कुछ मिथक तो कुछ इतिहासिक कथा भी जान पड़ती है। इतिहास में ऐसा सच्ची घटना घटी होगी। जिसे समाज आज तक याद करते हुए टुसू पर्व मनाते आ रहा है। अतः इनकी कथा समाज के लिए शिक्षा प्रद है। जो अत्यन्त रोचक माना जाता है।

टुसू पर्व /मकर सक्रांति की गीत

इस पर्व में भी अन्य पर्वों की भाँति गीत होते हैं। इस पर्व में भी खुब नाच -गान होता है। हास परिहास की गीतों में कुछ अपना अलग ही महत्व है। कुछ गीत डॉ0 विधोतमा निधि के मतानुसार इस प्रकार है -

''टुसू पुजा के गीत -

(क)जलाब सात घीव केर बाती
सजाब आइज दिया बाती

टुसू के स्वागत गीत -

(ख)बारह बछर आले टुसू करले गोहाइर - 2

टुसू स्थापना के गीत -

(ग)आले रे घुरघूरनो पोका
दखिन दने बसा तोर
आलक रे सोनाक पालकी
टुसू धन के लेगे ले।

टुसू लागत हिस बेस करत हिस
टुसू के राखके जतने
हामर टुसू बालक आहे
दुख कर मरम जाने निही।
टुसू विदाई के गीत या विसर्जन के गीत -
(घ)तोके टुसु जल में देमु निहीं।
हामर पुराव मन कर कामना।
हाँसी मजाक के टुसू गीत -
(ङ)आइज तो खामु गरम जिलेबी
इ जिलेबी में रस भरल पाबे
नी खाबे तो पाछे पछताबे
हमार मिता दाता दानी।''(3)
आइझ तो खामु गरम जिलेबी
(च)तोर सइकल तो हेंडिल बोका
कोन दोकाने लेले रे बोका
(छ)मुनगा टुसू फुल फुटे
जेमन छोड़ी तें मनक सुर उठे।(3)''[3]

निष्कर्ष:-

टुसू पर्व के गीत हास परिहास के गीत होते हैं। इस पर्व में टुसूमणि की तरह ही सुन्दर का वर्णन गीत में भी सौंदर्य का अनोखा चित्रण हुआ है। टुसू पर्व को झारखण्ड में मकर सक्रांति के दिन ही मनाया जाता है। इसी से संबंधित गीत भी गाया जाता है। झारखण्ड प्रदेश में यह एक लोकप्रिय पर्व है। झारखण्ड के सदान आदिवासी दोनों ही समुदाय इस पर्व को बड़ी धुम धाम से मनाते हैं। टुसू की पुजा गीत में पुजा पाठ से संबंधित गीत गाया जाता है। स्वागत गीत भी टुसू की स्वागत के लिए गाया जाता है। उसके बाद टुसू की स्थापना गीत भी अत्यन्त रोचक माना जाता है। उसी प्रकार टुसू की विदाई अर्थात् विसर्जन के गीत भी गाया जाता है। जब टुसू की विसर्जन कर सभी लोग घर वापस लौटते हैं। तो हास परिहास के गीत गाये जाते हैं। ये अश्लील गीत होती है। परन्तु इस समय इससे किसी को तकलीफ नहीं होती है। इस तरह से टुसू पर्व का उत्सव समाप्त हो जाता है। अन्य पर्वों के गीत की भाँति इसके गीत कम पाये जाते हैं।

****

संदर्भ सूची:-

1.डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू ,ऋतु के रंग मांदर संग ,पृ0 सं0-20 ,21 ,प्रिय साहित्य सदन दिल्ली
2.उर्पयुक्त ,पृ0 सं0-18 ,19
3.डॉ0 विघोतमा निधि , नागपुरी लोकगीत ,लोकनृत्य एवं लोकवाद्य ,पृ0 सं0 -238 ,पृथ्वी प्रकाशन नई दिल्ली।

पारिवारिक संबंधों के बदलते स्वरूप और मालती जोशी की कहानियाँ: एक मूल्यांकन

डॉ. रेणु सिन्हा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
निर्मला कॉलेज, राँची

अनीता कुमारी
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश-

प्रस्तुत शोध पत्र में मालती जोशी की कहानियों में चित्रित पारिवारिक संबंधों के बदलते स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की परंपरा रही है, जहाँ प्रेम, सहयोग, त्याग और आत्मीयता के सूत्र में सभी सदस्य बंधे रहते थे। परन्तु औद्योगिकीकरण, भौतिकवाद और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण संयुक्त परिवार विघटित होकर एकल परिवारों में परिवर्तित हो गए हैं। इस परिवर्तन के फलस्वरूप पारिवारिक संबंधों में आत्मीयता का ह्रास हुआ है और रिश्तों में कटुता व दरियाँ बढ़ी हैं।

मालती जोशी ने अपनी कहानियों में परिवार और पारिवारिक संबंधों को केंद्र में रखकर विभिन्न रिश्तों के मधुर और कटु दोनों रूपों का यथार्थ चित्रण किया है। 'संदर्भहीन', 'अक्षम्य', 'प्रतिरोध' जैसी कहानियों में पति-पत्नी के बीच अहं, संदेह और स्वार्थ के कारण उत्पन्न तनाव को दर्शाया गया है। 'उसने नहीं कहा', 'अनहैप्पी बर्थ डे', 'गणित' आदि कहानियों में माता-पिता और संतान के बीच बढ़ती दूरी, भौतिकवादी सोच और स्वार्थपरता को उजागर किया गया है। 'नैहर छूटो जाय', 'हमको दियो परदेश' में भाई-बहन के संबंधों की जटिलता प्रस्तुत की गई है। इसके अतिरिक्त सास-बहू, ननद-भाभी और पीढ़ीगत अंतराल से उत्पन्न संघर्ष का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मालती जोशी ने अपनी कहानियों के माध्यम से परिवारिक संबंधों के बदलते स्वरूप को उद्घाटित करते हुए यह संदेश दिया है कि पारंपरिक मूल्यों पर आधारित संबंध ही जीवन-मूल्यों की स्थापना में उपयुक्त और आदर्श हैं। उनकी कहानियाँ समकालीन समाज में टूटते रिश्तों की पीड़ा को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं और पारिवारिक संबंधों को बचाए रखने की आवश्यकता पर बल देती हैं।

बीज शब्द:-मालती जोशी,पारिवारिक संबंध,संयुक्त परिवार,एकल परिवार,पति-पत्नी संबंध,माता-पिता-संतान,संबंध,भाईबहन,संबंध,सास -बहू संबंध,ननद-भाभी भौतिकवाद,व्यक्तिवाद,जीवन-मूल्य,सामाजिक परिवर्तन,हिन्दी कहानी, संबंध,पीढ़ीगतअंतराल।

प्रस्तावना-भारतीय समाज का आधार संयुक्त परिवार रहा है। हमारे पितृसत्तात्मक परिवार के संयुक्त परिवार में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व घर के सबसे बड़े पुरुष के कंधे पर होता है। इस परिवार में माता-पिता, भाई, बहन, पति-पत्नी, दादा-दादी, बुआ आदि सभी लोग एक छत के नीचे परस्पर प्रेम एवं सहभागिता के साथ रहते आये हैं। लेकिन औद्योगिकीकरण और आर्थिक विषमताओं के कारण जीवन मूल्यों में इतना ह्रास आया है कि अब संयुक्त परिवार पूरी तरह से विघटित हो गया है और एकल परिवार भी पति-पत्नी के कार्यरत होने तथा बच्चों की शिक्षा आदि कारणों से टूटने को विवश हैं। जहाँ व्यक्ति अपने परिवार द्वारा पहचाना जाता था, आज वहीं परिवार का महत्त्व घटता जा

रहा है और रिश्तों की अहमियत भी कम होती जा रही है। ऐसे में मालती जोशी की कहानियों में एक ओर पारिवारिक संबंधों को बचाए रखने की जद्दोजहद दिखायी देती है तो दूसरी ओर परिवेश के प्रभाववश वे टूटते भी दिखायी देते हैं। अतः मालती जोशी जी की कहानियों में वर्णित पारिवारिक संबंधों के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं।

मालती जोशी जी मूल रूप से परिवार और पारिवारिक संबंधों की कथाकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में परिवार और पारिवारिक संबंधों को केन्द्र में रखा है। प्रेम, करुणा और सहयोग जहाँ पारिवारिक संबंधों को प्रबल और प्रगाढ़ करती हैं वहीं अपेक्षाएँ, स्वार्थता, असहयोग संबंधों में कड़वाहट पैदा करती है। किसी भी परिवार में पति-पत्नी का संबंध सबसे महत्वपूर्ण होता है। पति-पत्नी के संबंध पर ही परिवार की नींव खड़ी होती है। यह संबंध प्रेम, विश्वास, और भावना पर आधारित होता है, जो परिवार की नींव को सुदृढ़ और सशक्त करता है। लेकिन आज बदलते समय के अनुसार पति-पत्नी दोनों में अहं की भावना इतनी अधिक प्रबल हो चुकी है कि रिश्ते में व्यक्ति एक-दूसरे के सामने झकने को तैयार नहीं है। इसी संदर्भ में मालती जोशी की एक कहानी 'संदर्भहीन' है जिसमें शोभा को उसका पति अपने निज स्वार्थ के लिए सीढ़ी के रूप में उपयोग करता है। जब वह अपने पति का विरोध करती है तब शोभा का पति अन्य तरीके से उससे प्रतिशोध लेता है। वह अपने ही बच्चों के मन में शोभा के प्रति चरित्रहीनता के लांछन का विष घोलता है, जिसके कारण शोभा अपने बच्चों एवं परिवार से पूरी तरह कट जाती है। उसकी मुँह बोली भाभी कुसुम जब शोभा से पूछती हैं कि बच्चे आपका तिरस्कार क्यों करते हैं? तब शोभा कहती है कि "ये उनके पिता की विरासत हैं। मैं जीवन-भर उनसे नफरत करती रही, इसका प्रतिशोध उन्होंने बच्चों के मन में विष के बीज बोकर किया।"[1]

संदेह के कारण भी पति-पत्नी के संबंधों में विघटन आ जाता है। दोनों का जीवन दुखमय हो जाता है। इसी संदर्भ में जोशी जी की कहानी 'अक्षम्य' है जिसमें संदेह के कारण पति-पत्नी का संबंध पूरी तरह से टूट कर बिखर जाता है। श्याम एवं उसकी माँ, बिन्दु को पसंद नहीं करते हैं और इसके साथ ही साथ सास द्वारा बहू बिन्दु के रज्जू हलवाहे के साथ रिश्तों का लांछन लगाया जाता है। जिसके कारण पति-पत्नी के संबंधों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह 'प्रतिरोध' कहानी में सुयश और मीरा के बीच संदेह उत्पन्न होने से उनके दाम्पत्य-जीवन में दरार पैदा हो जाता है।

परिवार में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान माता-पिता का होता है और माता-पिता का भी अपनी संतान से विशेष संबंध होता है। परन्तु आज के बदलते परिवेश में माता-पिता और संतान के बीच काफी दूरी बढ़ गई है। जो माता-पिता अपनी संतान के लिए हर कष्ट को सहकर उसकी हर सुख -सुविधा का ख्याल रखते हैं, उन्हीं माता-पिता को बच्चे आज बोझ समझने लगे हैं और इन सबका कारण भौतिकवादी मानसिकता एवं व्यक्तिवादिता का भाव है। इसी संदर्भ में मालती जोशी जी की एक कहानी है 'उसने नहीं कहा' जिसमें पिता अपने बेटे प्रमोद के घर आकर रहने लगते हैं और वहाँ के आस-पास के लोगों से मित्रता भी कर लेते हैं। लेकिन प्रमोद की पत्नी शोभा अपने ससुर द्वारा रोज-रोज घर में उनके मित्रों को चाय-नाश्ता कराने के कारण नाराज होती है। प्रमोद जब अपने पिता से यह कहता है कि आप कैसे जानेंगे कि परेशानी क्या होती है? प्रमोद के इस वाक्य से पिता अवाक् रह जाते हैं और थोड़ी देर के बाद बोलते हैं "मैं जानता हूँ बेटे कि मेरी गृहस्थी एक मामूली से क्लर्क की गृहस्थी थी पर तुम्हारी माँ ने राजा-रईसों की सी शान दे दी थी। साक्षात् लक्ष्मी का रूप थी वह!"[2] यह कथन उनकी दर्द और स्वाभिमान को प्रकट करता है। इसी तरह इनकी एक कहानी 'अनहैप्पी बर्थ डे' है जिसके माध्यम से इन्होंने पिता और बेटे के रिश्ते को पूरी तरह तार-तार होते दिखाया है। जब जिम्मी के बर्थ डे पर उसके माता-पिता एक बड़ा आयोजन करते हैं जिसमें जिम्मी के पिता अपने बॉस को बुलाते हैं और बॉस समारोह में बहुत देर से पहुँचते हैं। जिसके कारण वहाँ आए सभी लोगों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस समारोह में जिम्मी भी अपने दोस्त को बुलाता है, जो उसके माली का पोता है। जब जिम्मी के पिता उसे देखते हैं तो क्रोधित होते है और उसे वापस भेज देते हैं, क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं होती। इस कारण जिम्मी बहुत दुःखी होता है। चेतन अपने बॉस को देखकर बहुत खुश होता है, किन्तु जिम्मी उनसे कोई बात नहीं करता, जिसको लेकर चेतन अपने-आप को अपमानित महसूस करता है। चेतन अपनी पत्नी दीपा तथा जिम्मी से कहता है कि- "इससे तो अच्छा था मैं उन सब को बुलाता ही नहीं। कम-से-कम उनकी इनसल्ट तो न होती।"[3] पिता के इस व्यवहार से जिम्मी गुस्सा होता है तब वह पिता से कहता है "पापा आपने भी तो मेरे दोस्तों की इन्सल्ट की है। जिम्मी की बात पूरी होने से पहले ही एक तमाचा उसके गाल पर पड़ जाता है। फिर अनायास ही उसके होठों पर वे शब्द आ जाते हैं जिसकी रिहर्सल बन्ना अंकल के लिए की जा चुकी थी। काँपती आवाज में जिम्मी बोला थैंक्यू पापा! थैंक्यू फॉर द ब्यूटीफुल गिफ्ट। इसका अभिप्राय यह है कि अपने बॉस के आगे अपना इम्प्रेशन जमाने हेतु चेतन अपने बेटे की भावनाओं को समझ नहीं पाता और उसके साथ अन्याय करता है।

जोशी जी की एक कहानी 'गणित' है जिसमें माता-पिता अपने स्वार्थ के कारण अपनी बेटी की शादी विलम्ब से करते हैं। अपने बेटे को डॉक्टर बनाने के लिए उसके माता-पिता सीमा की शादी जब नहीं करते हैं तब उसके मन में बस यही आता है "कितने बसंत आये और चले गये। कितने सावन बरस कर बीत गये, पर उसके मन में कोई कोपल नहीं फूटी।"[5]

आधुनिक युग में स्वार्थ व्यक्ति के भीतर इतना रच बस गया है कि मनुष्य निकलना भी चाहे तो उससे निकल नहीं पाता है। इसके वशीभूत वह अपने आत्मीय रिश्तों को भी भूल जाता है। 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर' कहानी में पिंकी अपने पिता तथा उसके परिवार से नफरत करती है, क्योंकि उसके पिता उसे छोड़कर अपना नया घर बसा लेते हैं। "अपने पिता के परिवार से पिंकी को थोड़ा-सा भी लगाव नहीं होता है, बल्कि उन लोगों से भी वितृष्णा सी हो गयी है, जो व्यक्ति अपने बीवी-बच्चों को छोड़कर विदेश चला गया है। यही नहीं वहाँ उसने अपना नया घर भी बसा लिया है- ऐसे व्यक्ति को पिता कहते उसे शर्म आती है और पिता से कोई सरोकार नहीं रहा तो उसकी जायदाद की औकात क्या है। उसे किसी की खैरात नहीं चाहिए। दाल रोटी-मजे से चल रही है- चलती रहेगी।"[6]

इस तरह मालती जोशी जी ने माता-पिता तथा संतान के बीच टूटते संबंधों को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इसका मुख्य कारण आज के भौतिकवादी युग की स्वार्थपरता दिखायी देती है। हालाँकि संतान ही नहीं बल्कि माता-पिता भी आज स्वार्थी बन गये हैं जिसके कारण 'गणित' कहानी की सीमा की भाँति संतान उनकी स्वार्थ पूर्ति का साधन बन जाती है। भारतीय परिवार में भाई-बहन का संबंध सात्विक और अटूट होता है। इस रिश्ते में विश्वास और स्नेह होता है। यह रिश्ता अनमोल होता है। लेकिन पारिवारिक समस्याओं के कारण इस अनूठे रिश्ते में भी विघटन आ गया है। दोनों में दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। आज के दौर में भाई-बहन अपनी-अपनी गृहस्थी में इतने उलझे हुए हैं कि किसी के पास एक-दूसरे से मिलने का समय तक नहीं रह गया है। यह भी एक मुख्य कारण है जिससे दोनों के बीच प्रेम का अभाव होता जा रहा है। इस संबंध में कहानी 'नैहर छूटो जाय' को देखने से स्पष्ट होता है कि भाई-बहन में पहले तो दूरियाँ बढ़ती हैं परन्तु फिर दोनों अपनी दूरियों को कम करते हुए अपने संबंधों को मजबूत करते हैं। भाई के आमंत्रण पर

बहन घर आती है और अपने बचपन के दिनों को याद करके वह फिर से प्रेम-स्नेह में बँध जाते हैं। अपने पुराने वाले घर जाकर अपने बचपन की यादों को स्मरण करते हैं- "हमलोग जब उस गली से निकले और बाहर आये तो मन बड़ा हल्का हो रहा था, इसलिए नहीं कि पुराने लोग मिल गए बल्कि इसलिए कि उनके माध्यम से हम दोनों भाई-बहन सालों की दीवार चीरकर फिर से एक मन एक प्राण हो सके थे।"[7]

इसी तरह जोशी जी की कहानी 'हमको दियो परदेश' में बड़ी बहन का अपने छोटे भाई के प्रति प्रेम और उत्तरदायित्व की भावना को दर्शाया गया है। माँ के मरणोपरान्त कुसुम अपने छोटे भाई के लिए एक ममतामयी माँ बन जाती है। ढ़ाई-तीन साल के रघु को उसने अपनी छाती से सटाकर रखा और पूरे घर में घोषणा कर दी- "मैं नौकरी करूँगी, रघु को पढ़ाऊँगी। उसे बड़ा आदमी बनाऊँगी, जब तक वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता मैं विवाह की बात सोच भी नहीं सकती।"[8] कुसुम आगे चलकर अपने भाई को पढ़ा-लिखाकर उसे नौकरी करने लायक बनाती है और उसकी शादी भी करवाती है। परन्तु उसी कुसुम को रघु की शादी हो जाने के बाद उस अपने ही घर में रहना मुश्किल हो जाता है। जिसके कारण उसे प्रौढ़ावस्था में विवाह करना पड़ता है। इस तरह उन दोनों भाई-बहन का मधुर संबंध कटु संबंध में बदल जाता है।

परिवार को बनाने या फिर तोड़ने में सास-बहू की भूमिका को कदापि नकारा नहीं जा सकता। इसीलिए मालती जोशी जी ने अपनी कहानियों में सास-बहू के कटु और मधुर संबंध के दोनों ही रूपों का चित्रण किया है। इनकी कहानी 'फासले' में सास-बहू के संबंधों में, परिस्थितियों में परिवर्तन आने से आपसी मतभेद चलते रहते हैं। अमोल अपनी दादी से कहानी सुनाने की जिद्द करता है, लेकिन वह उसे पुराने विचारों से युक्त अपनी कहानी सुनाती है। जबकि अमोल की मम्मी आधुनिक होने पर उन कहानियों को 'स्टुपिड' की संज्ञा देती है। यदि कहानी बीच में ही बंद हो जाय तो रात में मामा रास्ता भूल जाते हैं। ऐसी बातों से अमोल की मम्मी क्रोधित होकर अमोल को डाँटती है, जिससे सास-बहू के विचारों में भिन्नता दिखायी देती है। अपनी कहानी 'उफान' में भी मालती जोशी जी ने सास-बहू के संबंध को दर्शाया है। माँ अपने बेटे हरीश की शादी बड़े धूम-धाम से करती है। किन्तु अपनी बहू के बारे में कुछ गलत सुनने पर वह उसे शक की निगाह से देखती है तथा उसके पीहर जाने पर उसे याद तक भी नहीं करती और न ही अपने बेटे को बहू लाने को कहती है। उसका बेटा हरीश अपनी माँ से कहता है- "चिन्ता मत करो, अम्मा। जब तक तुम नहीं कहोगी मैं उसे यहाँ नहीं लाऊँगा। तुमने मेरे लिए जिन्दगी में बहुत दुख उठाये हैं। अब यह एक और दुःख, अनचाही बहू के साथ रहने का दुःख मैं तुम्हे नहीं दूँगा।"[9]

परिवार में ननद-भाभी का संबंध भी बहुत प्यारा और अनूठा होता है। ये सहेलियों की तरह आपस में घुलमिलकर रहती है जिससे घर में खुशियों का माहौल बना रहता है। लेकिन इनके संबंध में भी आज कटुता दिखती है। मालती जोशी जी ने ननद और भाभी के मधुर और कटु दोनों संबंधों को ही अपनी कहानियों में दिखाया है। उनकी कहानी 'आउटसाइडर' में ननद-भाभी के संबंध संवेदनशून्य दिखते हैं। भाभी अपनी ननद से लगाव नहीं रखती। जो ननद अपने पूरे परिवार के लिए अपनी जिन्दगी कुर्बान कर देती है, वही ननद परिवार में सिर्फ एक 'आउटसाइडर' के रूप में दिखती है। 'मेहमान' कहानी में ननद-भाभी के प्रेम को बखूबी दिखाने का प्रयास किया गया है। इस कहानी में हेमा को अपनी भाभी से बहुत अधिक प्रेम है। दोनों के मधुर प्रेम को देखकर सभी उनके रिश्ते से ईर्ष्या करते हैं।

मालती जोशी जी ने पीढ़ीगत अंतराल से प्रभावित पारिवारिक संबंध का भी यथार्थ चित्र खींचा है। किस तरह विचारों में भिन्नता, संबंधों में खटास पैदा कर देती है तथा पिता-पुत्र, पुत्र-माँ, सास-बहू आदि के आपसी विचारों में अंतर आने से परिवार में टूटन, विघटन एवं कलह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है सबका चित्रांकन मालती जोशी जी ने किया है। 'साथी' कहानी में पिता-पुत्र के विचारों में पूरी तरह से भिन्नता दिखायी देती है। अपने पिता को बैठक के कमरे में देखकर उनकी उपस्थिति परिवेश को अस्वस्थ कर देती है। विशेषकर जब मेहमान आए हों। "बैठक के कमरे में पहुँचते ही बाबूजी दूसरे आदमी बन जाते हैं। हमारे जमाने में से शुरू करके पता नहीं क्या-क्या किस्से सुना डालते थे। कमरे के वातावरण में अजीब-सा तनाव भर जाता था।"[10] लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से यह बताना चाहा है कि आज नयी और पुरानी पीढ़ी अपने साथ एडजस्ट नहीं कर पा रही है। इसलिए विचारों की इस भिन्नता ने दोनों पीढ़ियों के बीच संघर्ष खड़ा कर दिया है।

निष्कर्ष:-

निष्कर्षतः भारतीय समाज में जिस प्रकार परिजनों में आपसी प्रेम, सहयोग, त्याग, सहिष्णुता एवं आत्मीयता का संबंध होता है जिससे सभी आपस में एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं, बदलते परिवेश के दबाव में व्यक्ति चेतना में कॉफी बदलाव आया है। फलतः परिवारिक संबंधों में आत्मीयता का अभाव पूरी तरह से दिखने लगा है। बदलते युग की आवश्यकता के अनुसार आज संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार ने ले लिया है, जिसका मुख्य कारण व्यक्ति का भौतिकवादी दृष्टिकोण है। मूल्यात्मक बंधनों से मुक्त होकर व्यक्तिवादी होने से वह पुराने संबंधों के मोहपाश से मुक्त होकर आत्मकेंद्रित बनता जा रहा है। संयुक्त परिवार में जहाँ सभी संबंधों में अपनापन और प्रेम था, वहाँ अब बदलते परिवेश में सब कुछ लुप्त हो गया है। संबंधों का बदला हुआ स्वरूप आज एक गंभीर समस्या है।

इस संदर्भ में मालती जोशी जी ने अपनी कहानियों में युग के अनुरूप जहाँ संयुक्त परिवारों के संबंधों को दर्शाया है, वहाँ एकल परिवारों की समस्याओं एवं कुंठाओं को भी अपनी कहानियों में चित्रित किया है। उन्होंने परिवारिक संबंधों के बदलते स्वरूप को उद्घाटित करके यह संकेत दिया है कि हमारे पुराने संबंध ही जीवन-मूल्यों की स्थापना में उपयुक्त एवं आदर्श हैं।

****

संदर्भ सूची:-

1.जोशी, मालती- ''संदर्भहीन'' (कहानी संग्रह-एक और देवदास) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ सं॰ 51
2.जोशी, मालती- ''उसने नहीं कहा'' (कहानी संग्रह-मन ना भये दस-बीस) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली-2023, पृष्ठ सं॰ 80
3.जोशी, मालती- ''अन्हैप्पी बर्थ डे'' (कहानी संग्रह-बाबुल का घर) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृष्ठ सं॰ 129
4.वही, पृष्ठ सं॰ 131
5.जोशी, मालती- ''गणित'' (कहानी संग्रह-महकते रिश्ते) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली-2012, पृष्ठ सं॰ 32
6.जोशी, मालती- ''नीड़ का निर्माण फिर-फिर'' (कहानी संग्रह-महकते रिश्ते) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ सं॰ 15-16
7.जोशी, मालती- ''नैहर छूटो जाय'' (कहानी संग्रह-मन न भये दस-बीस) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृष्ठ सं॰ 38-39
8.जोशी, मालती- ''हमको दियो परदेश'' (कहानी संग्रह-बोल री कठपुतली) किताबघर, प्रकाशन, दिल्ली-1985, पृष्ठ सं॰ 46
9.जोशी, मालती- ''उफान'' (कहानी संग्रह-मन न भये दस-बीस) साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृष्ठ 62
10.जोशी, मालती- ''साथी'' (कहानी संग्रह-दर्द का रिश्ता) किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृष्ठ सं॰ 98

मीरा के काव्य में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना का अध्ययन

विकास सिंह
शोधार्थी -हिंदी
rajpurohitvikas@gmail.com

सारांश-
संत-कवयित्री मीराबाई का काव्य भारतीय साहित्य एवं दर्शन में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उनकी पदावलियाँ एक गहन आध्यात्मिक साधना एवं दार्शनिक चिंतन का प्रतिबिंब हैं। यह शोध पत्र मीरा के काव्य में निहित आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिंतन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें मीरा की भक्ति-भावना को 'माधुर्य भाव' की अद्वितीय अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया है। जहाँ प्रेम की सांसारिक अभिव्यक्तियाँ परमात्मा से मिलन की आकांक्षा में परिणत हो जाती हैं। इस अध्ययन में यह प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार मीरा का काव्य वैष्णव भक्ति दर्शन, विशेषकर शुद्धाद्वैत एवं भक्तिमार्ग के सिद्धांतों से अनुप्राणित है। साथ ही वह सामाजिक रूढ़ियों एवं जातिगत पदानुक्रम का सशक्त प्रतिवाद भी प्रस्तुत करता है। उनके काव्य में 'ब्रह्म', 'आत्मा' एवं 'माया' जैसे दार्शनिक सिद्धांतों की सरल किन्तु प्रभावशाली व्याख्या मिलती है। यह पत्र मीरा के काव्य को एक ऐसी दार्शनिक पाठ के रूप में पढ़ने का प्रयास करता है। जीवन के सार्वभौमिक प्रश्नों—प्रेम, वैराग्य, मुक्ति एवं आत्म-साक्षात्कार—की ओर संकेत करता है।

बीजशब्द - मीराबाई, भक्ति आंदोलन, माधुर्य भाव, आध्यात्मिकता, दर्शन, सामाजिक प्रतिरोध, सूफी प्रभाव, मुक्ति।

प्रस्तावना-

मध्यकालीन भारत का भक्ति आंदोलन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक महत्वपूर्ण युग था। इस आंदोलन ने जहाँ एक ओर रूढ़ियों को चुनौती दी, वहीं दूसरी ओर ईश्वर तक की सीधी पहुँच के लिए 'भक्ति' को सर्वोच्च मार्ग घोषित किया। इसी परिवेश में राजस्थान के मेड़ता में जन्मी राजपूत राजकुमारी मीराबाई (1498-1547 ई.) एक ऐसी विलक्षण व्यक्तित्व के रूप में उभरीं। जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से न केवल आध्यात्मिक प्रेम की एक नई परिभाषा गढ़ी, बल्कि सामंती पितृसत्तात्मक समाज के नियमों को भी ध्वस्त किया। अध्यात्म, दर्शन, धर्म, साहित्य एवं लोकजीवन के विविध विद्वानों और मनीषियों ने भक्त कवियित्री मीराबाई का अपनी-अपनी तात्विक दृष्टियों से आकलन किया है। आचार्य रजनीश ने मीरा को तीर्थंकर की संज्ञा दी तो गीता के महान चिन्तक स्वामी रामसुखदासजी उन्हें भक्ति और विरह की प्रतिमूर्ति बताते हैं। मीराबाई की भक्ति, जीवन-दर्शन, एवं जीवन-मूल्यों का सर्वाधिक प्राचीनतम और प्रामाणिक उल्लेख भक्तमालकार नारायणदास नाभा ने अपनी भक्तमाल में किया है जो एक प्रकार से मीरा के भक्ति-दर्शन को समझने का प्रवेशद्वार है। रोहिणी अग्रवाल के मीरा के बारे में लिखती है - "मीरा के पदों को यदि आध्यात्मिकता के कुहासे से मुक्त कर दिया जाए, तो वे जीवन के राग, उल्लास, उत्सव और ठाट-बाट के साथ एन्द्रिकता के उद्दाम का भी संस्पर्श करते हैं। घोर लौकिकता के बीच घोर शृंगारिक बाना।"

मीरा की आध्यात्मिकता का केंद्रीय स्वर श्रीकृष्ण के प्रति अतिशय अनुराग है। जो 'माधुर्य भाव' की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। यहाँ भक्त (मीरा) स्वयं को प्रेमिका (नायिका) और ईश्वर (कृष्ण) को प्रेमी (नायक) के रूप में देखती हैं। यह प्रेम सांसारिक प्रेम के समानांतर चलता हुआ प्रतीत होता है। लेकिन उससे कहीं अधिक गहन, अमर और परमार्थिक है। उनकी भक्ति भोग की नहीं, त्याग और समर्पण की है।

म्हारो तो गिरधर गोपाल, दूसरों न कोई।
दूसरो ने कोई साधां, सकल लोक जोई।।[1]

इस पद में मीरा कृष्ण को अपना एकमात्र स्वामी घोषित करते हुए सांसारिक पति के बंधन का निषेध करती हैं। यह आध्यात्मिक विवाह (सौलह संस्कारों में से एक) का प्रतीक है, जहाँ जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होता है। यह प्रेम उनकी साधना का आधार है, जो विरह भावना की तीव्र पीड़ा से होकर गुजरता है।

कृष्ण अनुरागी मीरां के गेय पदों का आधार सामवेद ही माना गया है। मीरा ने अपना संपूर्ण काव्य गीतों में, पदों में, हरजस में इत्यादि पद्धति को गेय युक्त बनाया है। वस्तुतः मीरां के काव्य पर समस्त वेदों में से सामवेद का प्रभाव सर्वाधिक देखने को मिलता है। मीरां राग बिलावल पद्धति में कहती है कि-

मीरां कहे प्रभु तुम्हारे दरशन से,
मिट जाये चौरासी की चिंता।।[2]

भक्तिकाल में गेयता का सीधा संबंध सामवेद से न होकर लोक शास्त्र से हैं। पर शास्त्रीय गेयता में सामवेद के रूप में देखा जा सकता है। भक्तिमती मीरां बचपन से ही श्रीकृष्ण की भक्त प्रेमी थी, श्रीकृष्ण के गीत गाती थी। इसी गेयता के कारण मीरां लोक में नारी शक्ति की प्रेरणा बन गई। यद्यपि वे आज नहीं है परंतु वे हमारे लिए एक समृद्ध भक्ति-साहित्य की धरोहर छोड़ गई है जिसे उन्होंने रच-रचकर गाया और उसके द्वारा अपना ही नहीं अन्य भक्तों के मार्ग को स्पष्ट किया। उसके काव्य में सांसारिक बंधनों का त्याग तथा ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव मिलता है।

*मीरां के अनुसार कोई सत्य है तो केवल 'गिरधर गोपाल' जो कि एकमात्र सहायक है और भव-सागर के पार उतारने वाले खेवनहार हैं।*3 गेय पद्धति से युक्त शास्त्रीय ग्रंथ सामवेद के आधार पर मीरां और श्रीकृष्ण के प्रति गेय पद में अभिव्यक्त भाव-

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
रैण दिनां बाके संग खेलूँ, ज्यूँ बाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
जहां बैठावें तितही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊँ। [4]

मीरां ने अपने पदों में जीवन की नश्वरता, गुरु की महिमा, सत्संग की महानता को उजागर किया है। जीवन क्या है? यही बात बहुत सरल एवं सरस लोक भाषा में समझायी है। जैसे-

काया नगर रे ओळे दोळे, ज्ञान पपईयो बोले रे
कागज री एक नाव बनाई, धरी गंगाजल मांई रे
करमी धरमी पाप ऊकारीया, पानी नाव डुबोई रे
जान पपईयो बोले रे

.....

बाई मीरां ने गिरधर मिळिया, मन की रह गई मन में रे। [5]

इन्हीं वेदसम्मत मीरां ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण में ही समस्त वेदो का सार बताते हुए कहा कि-

दरद की मारी वन-वन डोलूँ, वेद मिला नहिं कोय।
मीरां के प्रभु पीर मिटै जब, वेद साँवलिया होय।[6]

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि 'वेद' में अनुभवों का सत्य छिपा हुआ है जिसकी रत्नगर्भा से लोक का प्रत्येक प्राणी प्रेरित होता है। भावों से भरी भूमि को भारतीय आध्यात्मिक में वेदों से सुशोभित किया गया है। यही वेद सच्चे अर्थो में जनमानस है, जनमंगल है। वेद समस्त ज्ञानराशि के अक्षय भण्डार हैं। इतना ही नहीं हम भारतीयों की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और धर्म के आधारभूत स्तंभ हैं। समस्त जन-मानस इन्हें अतिशय आदर-सम्मान एवं पवित्रता की दृष्टि से देखता है। मीरां के काव्य में अप्रत्यक्ष रूप से ही सही परंतु भारतीय दर्शन के वेदों का प्रभाव स्वतः दिखलाई पड़ता है, ये इनकी महानीयता है।

हरि मेरे जीवन प्राण अधार।
और आसिरो नाहिन तुम बिन, तीनूं लोक मंझार
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यो सब संसार....।। [7]

जीवन में उपासना का विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है, तब वह तन-मन-धन से अपने उस लक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न हो जाता है। भक्तिमती मीरां ने पुराणसम्मत ज्ञान के आधार पर श्रीकृष्ण की एकनिष्ठ भक्ति की। इस संबंध में मीरां के काव्य में कहा गया है कि-

मोहि लागी लगन गुरु चरण की।
चरण बिना कछुवैं नहीं भावै।
.....
आस वही गुरु सरनन की।।[8]

भक्तिमती मीरां ने भी महलों को त्यागकर साधु-संतों की मंडली में रहना एवं भजन गाना शुरु किया। इस शिव पुराणसम्मत मीरां के काव्य में देखा जाता है कि-

महल तो मालिया राणा काम न आवे म्हारे।
टूटी झुपड़ियाँ मन भावे। [9]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मीरां के काव्य में टूटी झोपड़ियाँ, कड़वी तूमड़ियों, खाटी राबड़िया, फाटी कामलिया इत्यादि शब्दों का आना शिव के माहात्म्य का पूर्ण प्रभाव माना गया है। शिव पुराण के प्रभाव से ही मीरां सरलता एवं सादगी को अपनाकर जीवन भर श्रीकृष्ण की भक्ति आधार बनाया।

भक्त शिरोमणि मीरां ने अपने जीवन को पूर्व मीमांसा दर्शन के अनुसार जीया। वे जीवन धर्म मानकर अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ती रही। इस संबंध में सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र, पाँच पांडव तथा द्रोपदी का उदहारण देती हुई मीरां अपने पदों में कहती है कि-

करम गति टारे नाहिं टरे।
सतबादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु सती द्रोपदी, हाड़ हिमालै गले।
.....
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बिख से अमृत करे। [10]

बाल्यकाल से ही मेड़ता(राजस्थान) के चारभुजा मन्दिर से मीरा का ऐसा घनिष्ट संबंध स्थापित हो गया कि वह खेल-खेल में ही भगवान के दिव्य विग्रह को अपने चक्षु में बसा बैठी। भक्त कवयित्री मीरां को भौतिक आकर्षण कभी लुभा ना सके। वह तो अलौकिक ईश्वर के एकनिष्ठ प्रेम से ही बंधी रही। परिणामस्वरूप संघर्षों का दौर शुरू हुआ और इन्ही संघर्षों से मीरा के अलौकिक प्रेम के दर्शन एवं भक्ति-दर्शन कि पृष्ठभूमि विकसित हुई। मीरा ने स्वयं को अचल सुहागिन माना क्योंकि अपने दिवंगत पति के साथ सती होने के बजाय दृढ़ता से उद्घोषणा की 'गिरधर गास्याँ सती न होस्याँ, मन मोह्यो घणनामी' अर्थात भगवान श्री कृष्ण की परिणिता माना। मीरा का जीवन-दर्शन धारा के प्रतिकूल जीवन जीने का दर्शन था।

निष्कर्ष-

मीराबाई का काव्य आध्यात्मिकता एवं दर्शन का एक अद्वितीय संगम है। उन्होंने जटिल दार्शनिक सिद्धांतों—जैसे सगुण-निर्गुण ब्रह्म, अद्वैत, भक्ति मार्ग, शरणागति—को सरल, गेय एवं हृदयस्पर्शी पदों में ढालकर उन्हें जन-जन तक पहुँचाया। उनकी आध्यात्मिकता का केंद्र 'प्रेम' है। जो विरह की पीड़ा से होकर गुजरता हुआ परम मिलन की अनुभूति तक पहुँचता है। यह प्रेम न केवल ईश्वर के प्रति है, बल्कि समस्त मानवता एवं सृष्टि के प्रति करुणा में भी विस्तारित होता है। दार्शनिक स्तर पर मीरा ने जाति एवं सामाजिक हैसियत के आधार पर भेद करने वाली व्यवस्था को निरर्थक सिद्ध किया। उनका जीवन और काव्य इस सत्य का प्रमाण है कि आध्यात्मिक साक्षात्कार का मार्ग किसी भी बाह्य आडंबर या सामाजिक बंधन से परे है। उन्होंने स्त्री की आध्यात्मिक स्वायत्तता को एक नई पहचान दी और सिद्ध किया कि भक्ति का पथ सभी के लिए खुला है। मीरा का काव्य आज भी प्रासंगिक है क्योंकि यह मनुष्य की अंतर्निहित स्वतंत्रता, प्रेम की शक्ति और आत्म-साक्षात्कार की अनिवार्यता की ओर संकेत करता है। उनकी वाणी में निहित आध्यात्मिक गहराई एवं दार्शनिक सूझबूझ उन्हें केवल एक कवयित्री नहीं, बल्कि एक विचारक एवं समाज-सुधारक का गौरव भी प्रदान करती है। इस प्रकार, मीराबाई का काव्य भारतीय चिंतन परंपरा में एक ऐसा मील का पत्थर है जो भक्ति को दर्शन से और दर्शन को जीवन से जोड़ता है।

****

सन्दर्भ:-

1. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल : मीरांबाई प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली, पृ. 167
2. नंद चतुर्वेदी : मौरां संचयन, पृ. 72
3. पेमाराम : मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आंदोलन, पृ. 181
4. पेमाराम : मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आंदोलन, पृ. 181
5. भुवनेश जैन : भीलों के लोक गीत, पृ. 155
6. नंद चतुर्वेदी मीरां संचयन, पृ. 150
7. हरिनारायण पुरोहित : मीरां वृहत्पदावली, भाग-1, पृ. 321
8. हरिनारायण पुरोहित : मीरां वृहत्पदावली, भाग-1, पृ. 85
9. नंद चतुर्वेदी : मीरां संचयन, पृ. 43
10. नंद चतुर्वेदी : मीरां संचयन, पृ. 105

धूमिल की पटकथा: लोकतंत्र की विडंबना और जनचेतना का दस्तावेज

डॉ. मुक्तारानी कंचकार
एम.ए., पी- एच.डी., नेट, सेट हिंदी
व्याख्याता - वीरांगना रानी दुर्गावती शासकीय महाविद्यालय मरवाही जिला -जी.पी.एम.(छ.ग.)

सारांश –
धूमिल ने पटकथा कविता के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन के आदर्शों से मोहभंग को बताया है जैसे कि आजादी शब्द सुनकर समाज में ऊर्जा और उत्साह की लहर दौड़ जाती थी परंतु राजनीति की अलग-अलग सच्चाइयों के सामने आने से जनतंत्र,त्याग,स्वतंत्रता, संस्कृति, शांति, मानवता जैसे शब्द खोखले लगने लगे। राजनीति में एकरूपता, झूठी प्रतिज्ञाएं, सात्विकता की आड़ में छल - कपट निराशा की चरम सीमा तक पहुंच चुकी है,और कहा भी जा सकता है कि पटकथा एक यथार्थवादी , जनवादी और राजनीतिक कविता है जिसमें व्यंग और आक्रोश की तीव्रता है। इस कविता में सत्ता और व्यवस्था का खोखलापन बताया गया है जनता की स्थिति और व्यवस्था का खोखलापन बताया गया है जनता की स्थिति और शोषण तथा आम जनता का आक्रोश और प्रतिरोध को चित्रित किया गया है। पटकथा - कविता आजादी के बाद के भारत की राजनीति और सामाजिक वास्तविकता पर एक व्यंग है जहां स्वतंत्रता के आदर्शों का विश्वासघात हुआ।यह कविता नेताओं के खोखले वादों और आम जनता के मोहभंग को दर्शाती है। कविता के माध्यम से कवि ने ग्रामीण संवेदना और शहरी बौद्धिकता के रचनात्मक तनाव को दिखाया है जो व्यवस्था की विसंगतियों, शोषण और आम आदमी के दुखों को उजागर करती है, जिसके कारण एक गहरी उदासी और व्यवस्था के प्रति मोहभंग की भावना जाग्रत होती है।

बीज शब्द- धूमिल, पटकथा, लोकतंत्र, सत्ता, जनता, भूख।

प्रस्तावना - धूमिल को हिंदी कविता का जनकवि कहा जाता है उनकी कविता व्यवस्था, सत्ता और समाज की कठोर सच्चाइयों को स्पष्ट रूप से सामने लाती है।उनकी कविता ' पटकथा ' इन सबकी गवाही है यह एक ऐसी कविता है जो राजनीतिक नाटक की तरह मंच पर घटित होती है और इसमें आम आदमी सदैव हाशिए पर रहता है। भारतीय समाज और राजनीति के अंतर्विरोधों को गहरी दृष्टि से उजागर करती हुई यह कविता न केवल सत्ता की आलोचना बल्कि आम आदमी की संवेदनाओं और संघर्षों को स्वर देती है। धूमिल ने कविता को सिर्फ सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं रहने दिया बल्कि उसे आम आदमी की आवाज बनाया। इसमें व्यवस्था के खोखलेपन राजनीति के पाखंड और आम जनता की दयनीय स्थिति को तीखे और व्यंग्यात्मक स्वर में प्रस्तुत किया गया है। यह कविता अपने कथा और शिल्प दोनों स्तरों पर हिंदी साहित्य में 'मील का पत्थर' कही जा सकती है।पटकथा में भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक - राजनीतिक ढांचे की सच्चाई को उजागर किया गया है। यह कविता केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं बल्कि आम जनता के अनुभवों और पीड़ा कीआवाज है। इस कविता में धूमिल सत्ता, नेता,न्यायपालिका और व्यवस्था की पोल खोलते हैं। कविता का शीर्षक ही 'पटकथा' है जिसका अर्थ है किसी नाटक की रूपरेखा। वस्तुत: यह कविता एक सामाजिक, राजनीतिक नाटक की पटकथा है जिसमें जनता, शोषक और शासक अपने- अपने किरदार निभा रहे हैं। धूमिल लोकतंत्र की खोखली सच्चाई उजागर करते है हुए कहते हैं -

" जनता क्या है?
वह तो आज भी भूख से मरती है और कल भी मरेगी।"

पंक्तियां स्पष्ट करती हैं कि लोकतंत्र आम जनता के लिए कोई ठोस बदलाव नहीं लाता।
न्यायपालिका और कानून पर कटाक्ष करते हुए कवि लिखते हैं -

"यहाँ न्याय की कुर्सी पर न्याय नहीं
बल्कि हत्यारों की ऊंगली उठती है।"

ये पंक्तियां व्यवस्था के भ्रष्ट और अमानवीय चेहरे को उजागर करती हैं। कविता में सबके अपने किरदार है- जनता, नेता, अफसर, न्यायधीश जो राजनीति के मंच पर अपने - अपने अभिनय करते हैं। कविता में प्रदर्शित वास्तविकता लोकतंत्र के नाम पर सिर्फ खोखले वादे किए जातेहैं।
***जनता भूख, गरीबी और बेरोजगारी से जूझती रहती है।**
*** न्याय व्यवस्था पर सत्ता और ताकतवर लोगों का कब्जा है।**
*** नेता और अफसर मुखौटे पहनकर जनता को धोखा देते हैं।**
विश्लेषण - धूमिल की पटकथा कविता स्वाधीनता आंदोलन के आदर्शों से मोहभंग का प्रतीक है। यहां कवि ने अपने भीतर की उस ऊर्जा और उत्साह को व्यक्त करते हैं जो पहले 'आजादी' जैसे शब्द सुनकर उत्पन्न होता था। यह कविता वस्तुत: हमारे समाज के राजनीति और लोकतंत्र की विडंबनाओं का नाटकीय मंचन है। धूमिल ने इसे केवल कवि की संवेदनशीलता से नहीं, बल्कि एक दस्तावेज की तरह रचा है जिसमें आम जनता का दु:ख व्यवस्था की विफलता और लोकतंत्र की खोखली हकीकत सामने आती है। धूमिल के अनुसार - भारत का लोकतंत्र एक ऐसा नाटक है जिसकी पूरी पटकथा पहले से सत्ता द्वारा लिखी जाती है जनता इसमें केवल दर्शकहै।
. चुनाव से पहले नेता जनता से बाते करते हैं।
. चुनाव के बाद वे जनता को भूल जाते हैं।
. निर्णय जनता नहीं सत्ता और संस्थाएं करती हैं।
लोकतंत्र की इस पटकथा में:

नेता कलाकार है, संसद मंच है, जनता दर्शक है,
पुलिस नौकरशाही और न्यायपालिका
पर्दे के पीछे की ताकत हैं।

यह कविता सत्ता के इस नाटकीय चरित्र को उजागर करती है और यह समझाती है कि लोकतंत्र में जनता की भागीदारी बहुत सीमित है। धूमिल पर आलोचकों के विचार नामवर सिंह के अनुसार - ' धूमिल वह कवि है जो व्यवस्था के मर्म को सबसे गहरे स्तर पर पहचानता है।' . रामविलास शर्मा के अनुसार - ' धूमिल की कविता सामाजिक अन्याय और राजनीति विडम्बना का कठोर दस्तावेज है।' . विश्वनाथ त्रिपाठी उनकी भाषा को ' जमीन की भाषा ' बताते हैं - ' धूमिल की भाषा किसी भी सजी - संवरी काव्यभाषा से अलग है, यह जनता के मुंह से निकले शब्दों की भाषा है।' 'पटकथा' लंबी कविता है और इसमें -सत्ता, जनता, सड़क, संसद, न्याय, भाषा इन सभी पर चरणबद्ध टिप्पणी मिलती है। कविता में नेता, मंत्री, नौकरशाही, पुलिस और न्यायपालिका सब पर व्यंग है। धूमिल का व्यंग सिर्फ कटाक्ष नहीं है बल्कि व्यवस्था की सच्चाई को उजागर करने का हथियार है।

नेता वादे करते हैं, चुनाव जनता के नाम पर लड़ते हैं पर सत्ता में आते ही जनता को भूल जाते है, राजनीति में अवसरवाद, भ्रष्टाचार, धूर्तता भाषा का दोहरापन स्पष्ट रूप से कविता में दिखता है। यह कविता हिंदी की राजनीतिक - सामाजिक चेतना से जुड़ी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कविताओं में एक है। यह कविता लोकतंत्र, सत्ता, न्यायव्यवस्था और जनता के बीच के संबंधों की वास्तविकता को बेहद तीखे और बेबाक ढंग से उजागर करती है। धूमिल पारंपरिक काव्यभाषा का प्रयोग नहीं करते बल्कि सड़क की भाषा जनता की आवाज और अनुभवों से बनी हुई अभिव्यक्ति का प्रयोग करते हैं। यही कारण है कि पटकथा एक कविता कम राजनीति यथार्थ का बयान अधिक प्रतीत होती है।

इस कविता का मूल सन्देश यह है कि भारतीय लोकतंत्र एक ऐसे नाटक की तरह है जिसकी पटकथा पहले से सत्ता, नेता और व्यवस्था तय कर लेते है। जनता केवल दर्शक होती है असली खेल मंच के पीछे तय होता है नेताओं की अपनी - अपनी भूमिका पूर्व से निर्धारित रहती है। निर्णय जनता नहीं बल्कि सत्ता का गठजोड़ करता है। लोकतंत्र जनता के लिए नहीं बल्कि सत्ता संरचनाओं के लिए संचालित होती है । यह लोकतंत्र का सबसे बड़ा विरोधाभास है - जनता लोकतंत्र की नींव है, लेकिन सत्ता में उसकी कोई वास्तविक भूमिका नहीं। कवि के अनुसार जनता को केवल भावुक बनाकर सत्ता हासिल की जाती है, और फिर जनता को भूलकर नेता सत्ता के खेल में लग जाते हैं। कविता खंडों में होने के बावजूद एक संगठित विचार धारा प्रस्तुत करती है। धूमिल अपनी कविता को एक राजनीतिक रिपोर्ट की तरह लिखते हैं - जहां हर खंड सत्ता की एक परत खोलता है। इसलिए यह केवल साहित्यिक कविता नहीं बल्कि लोकतंत्र की आलोचना का सबसे सशक्त दस्तावेज है। इस कविता में जनता की भूमिका अत्यंत विडम्बना पूर्ण रूप में सामने आती है। लोकतंत्र का मूल आधार जनता मानी जाती है किंतु व्यवहार में वही सबसे अधिक उपेक्षित दिखाई देती है और जनता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह चुनावों में भाग ले नारे लगाए और तालियां बजाए किन्तु निर्णय प्रक्रिया में उसकी कोई वास्तविक भागीदारी नहीं होती। कविता में लोकतंत्र की इस संरचना को उजागर करते हुए धूमिल बताते हैं कि लोकतांत्रिक संस्थाएं जनता के नाम पर कार्य करती है, परंतु उनका नियंत्रण सत्ता-तंत्र के हाथों में रहता है। इस प्रकार लोकतंत्र जनता की सत्ता न होकर सत्ता की रणनीति बन जाता है पटकथा केवल 1970 के दशक की कविता नहीं बल्कि आज के समय में भी चुनावी वादे, राजनीतिक अवसरवाद, सत्ता और जनता के बीच दूरी न्याय में असमानता जैसे स्थितियां विद्यमान है इसलिए धूमिल की यह कविता आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी अपने समय में थी। यह कविता पाठक वर्ग को सजग नागरिक बनने की प्रेरणा देती है।

निष्कर्ष - धूमिल की कविता ' पटकथा ' भारतीय लोकतंत्र की विडंबनाओं का सशक्त और निर्भीक दस्तावेज है। कवि ने संसद, न्यायपालिका और नौकरशाही जैसी संस्थाओं की भूमिका पर गंभीर प्रश्न उठाए हैं। साथ ही जनता की विवश स्थिति को उजागर कर लोकतंत्र खोखली संरचना को सामने रखा है। पटकथा भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक संरचना और उसकी अंतर्निहित विडंबनाओं को उजागर करने वाली एक सशक्त काव्य-रचना है। इस कविता में लोकतंत्र की व्यवस्था को ऐसे नाटक के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जिसकी पटकथा सत्ता और राजनीतिक संस्थाओं द्वारा पहले से निर्धारित कर ली गई थी, जनता को केवल दर्शक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि इस रचना के माध्यम से लोकतंत्र की उस सच्चाई को सामने लाते हैं जहां पर जनता के नाम पर सत्ता का संचालन किया जाता है, परंतु जनता को सत्ता से दूर रखा जाता है। पटकथा में संसद, न्यायपालिका, पुलिस और जैसी नौकरशाही जैसी लोकतांत्रिक संस्थाओं की भूमिका पर गहन प्रश्न उठाए गए हैं। संस्थाएं व्यवहार में जनता के पक्ष में खड़ी नहीं दिखाई देती बल्कि सत्ता के संरक्षण और संचालन का माध्यम बन जाती है। लोकतंत्र अपनी मूल भावना जनसत्ता से विचलित हो जाता है। धूमिल की रचनात्मक विशेषताओं का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनकी सीधी, तीखी और व्यंग्यात्मक भाषा कविता को केवल भावनात्मक नहीं बल्कि वैचारिक रूप से भी अत्यंत प्रभावशाली बनती है। यह कविता सत्ता-विरोधी चेतना, जनपक्षधर दृष्टि और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा का आह्वान करती है। इस प्रकार 'पटकथा' हिंदी की राजनीतिक कविता में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्थापित होती है। निष्कर्षत: -: यह काव्य न केवल अपने समय की सच्चाई को व्यक्त करती है, बल्कि आज के लोकतांत्रिक समाज के लिए भी एक चेतावनी और मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है।

****

संदर्भ सूची :-

1. धूमिल - संसद से सड़क तक, पृष्ठ संख्या63-68।
2. रामविलास शर्मा - हिंदी साहित्य और भारतीय समाज, पृष्ठ संख्या112-148।
3. नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान, पृष्ठ संख्या 104-125।
4. विश्वनाथ त्रिपाठी - आलोचना और विचार, पृष्ठ 78- 102।
5. नागार्जुन - भस्म हो जाने दो इस संसद को, पृष्ठ 147-150।
6. रघुवीर सहाय- लोग भूल गए हैं, पृष्ठ संख्या 32-55।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

'भोलाराम का जीव' में निहित प्रशासनिक भ्रष्टाचार और सामाजिक विसंगति का आलोचनात्मक विश्लेषण

चित्रार्धनी पटेल
शोधार्थी: हिंदी विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्य प्रदेश)
ईमेल: chitra221995@gmail.com संपर्क: +91-8770240245

सारांश :-प्रस्तुत शोध-आलेख सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की कालजयी रचना 'भोलाराम का जीव' के माध्यम से समकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और संवेदनहीनता का विश्लेषण करता है। यह शोध इस बात पर प्रकाश डालता है कि किस प्रकार एक आम नागरिक सरकारी तंत्र की पेचीदगियों में फंसकर अपना अस्तित्व खो देता है।

प्रस्तावना :-हरिशंकर परसाई हिंदी साहित्य के वे हस्ताक्षर हैं जिन्होंने व्यंग्य को केवल विनोद का साधन न मानकर उसे सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र बनाया। 'भोलाराम का जीव' उनकी एक ऐसी सशक्त रचना है जो स्वतंत्रता के पश्चात के भारतीय लोकतंत्र की प्रशासनिक सड़ांध को उजागर करती है। यह कहानी यमलोक और मृत्युलोक के बीच एक व्यंग्यात्मक सेतु का निर्माण करती है।

प्रशासनिक भ्रष्टाचार और 'वजन' की अवधारणा:-हरिशंकर परसाई जी की कहानी 'भोलाराम का जीव' में 'वजन' शब्द का प्रयोग सत्ता के भ्रष्ट ढाँचे का प्रतीक है। इस कहानी में सरकारी दफ्तर का बाबू नारद से कहता है कि भोलाराम की दरख्वास्तें तो आई थीं, परंतु उन पर 'वजन' न होने के कारण वे फाइलों में खो गईं। यहाँ 'वजन' का अर्थ केवल रिश्वत नहीं है, बल्कि यह शक्ति, प्रभाव और सामाजिक दर्जे का प्रतीक है। जिसके पास राजनीतिक या आर्थिक 'वजन' नहीं है, उसकी पुकार सुनी ही नहीं जाती। यह आज के 'टेबल के नीचे से लेनदेन' की संस्कृति पर एक तीक्ष्ण और करारा प्रहार है। परसाई जी ने दिखाया है कि कैसे भारतीय नौकरशाही में भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरी हैं कि ईमानदार आवेदकों की दरख्वास्तें तब तक अपना मायाजाल नहीं हटातीं जब तक उन्हें 'उचित संदर्भ' या 'समुचित प्रभाव' न मिले। यह व्यवस्था न केवल भ्रष्ट है, बल्कि संवेदनहीन भी है।

आम आदमी की त्रासदी और पेंशन की विडंबना:-भोलाराम एक मध्यमवर्गीय ईमानदार कर्मचारी का प्रतीक है, जो अपने पूरे कार्यकाल में न्याय और सत्य के मार्ग पर चलता है। सेवानिवृत्ति के बाद जब उसे अपनी ही पेंशन के लिए सरकार का दरवाजा खटखटाना पड़ता है, तो यह भारतीय कल्याणकारी राज्य की एक बड़ी विडंबना है। भोलाराम की गाढ़ी कमाई, जो उसके जीवन भर की मेहनत का प्रतिफल है, उसे पाने के लिए उसे भ्रष्ट व्यवस्था के समक्ष झुकना पड़ता है।कहानी में भोलाराम की मृत्यु बीमारी से नहीं, बल्कि व्यवस्था की निर्दयता, उपेक्षा और आर्थिक विपन्नता (भूख) से होती है। यह दृश्य पाठकों के मन में गहरी पीड़ा पैदा करता है। एक ईमानदार नागरिक जो अपने देश की सेवा करता रहा, अंततः फाइलों के बीच खो जाता है। परसाई जी के माध्यम से यह सवाल उठता है कि क्या एक लोकतांत्रिक राष्ट्र में नागरिकों को इस तरह की पीड़ा झेलनी चाहिए?

संवेदनहीनता का गहन चित्रण:-कहानी में दफ्तर के उच्चाधिकारियों द्वारा नारद की 'वीणा' को रिश्वत के रूप में स्वीकार करना एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक क्षण है। वीणा संगीत का साधन है, सौंदर्य की प्रतीक है, किंतु भ्रष्ट व्यवस्था उसे मुद्रा में परिवर्तित कर देती है। इसके माध्यम से परसाई जी यह दर्शाते हैं कि भ्रष्टाचार की जड़ें कितनी गहरी हैं और यह कैसे सभी कुछ को अपने काले पंजों में जकड़ लेता है।सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस पूरी प्रक्रिया में मानवीय संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं रह जाता। न तो भोलाराम की दुर्दशा किसी को द्रवित करती है,न ही उसके परिवार की पीड़ा। यह संवेदनहीनता ही आधुनिक नौकरशाही की सबसे बड़ी त्रासदी है। कागज, नियम-कानून और व्यवस्था मनुष्य से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

पौराणिक और आधुनिक का संयोजन:-परसाई जी ने पौराणिक पात्रों—नारद (देवताओं के दूत), चित्रगुप्त (कर्मों का लेखाकार) और यमराज (न्याय के देवता)—को आधुनिक नौकरशाही के साथ जोड़कर एक अनूठी व्यंग्य-रचना की है। यह संयोजन दर्शाता है कि भले ही शासन-व्यवस्था बदल गई हो, किंतु भ्रष्टाचार और अन्याय के मूल में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। प्राचीन काल में जो अन्याय थे, वे आज भी विद्यमान हैं, केवल उनका रूप बदल गया है।

सरल किंतु प्रभावशाली भाषा:-हरिशंकर परसाई जी ने अपनी कहानी में सरल, सुगम और दैनंदिन भाषा का प्रयोग किया है। इसके कारण यह रचना सभी वर्गों के पाठकों तक आसानी से पहुँचती है। कोई दरूह शब्दावली या जटिल वाक्य-विन्यास नहीं है, जिससे विषय की गंभीरता को प्रभावित किया जा सके। इसके विपरीत, सरल भाषा में गहन विचार व्यक्त करना परसाई जी की कला का प्रमुख विशेषता है।

व्यंग्य और लक्षणा की कुशलता:-परसाई जी की शैली में लक्षणा (परोक्ष अर्थ) और व्यंजना (सुझाव) का सुंदर समावेश है। 'वजन' शब्द का प्रयोग करते हुए वे सीधे 'भ्रष्टाचार' शब्द का उपयोग नहीं करते, बल्कि एक सूक्ष्म रूपक के माध्यम से इसे व्यक्त करते हैं। यह व्यंग्य की सर्वोत्तम परंपरा है, जहाँ आलोचना इतनी कुशलता से की जाती है कि वह हास्य के साथ-साथ चिंतन को भी प्रेरित करती है।

पौराणिक संदर्भों का कौशलपूर्ण प्रयोग:-पौराणिक पात्रों (नारद, चित्रगुप्त, यमराज) का आधुनिक नौकरशाही के साथ मेल कराना परसाई जी के साहित्यिक कौशल की परिचायक है। इस तकनीक को 'ब्यंग्य-रूपक' (ironic parallelism) कहा जा सकता है। पाठक को एक ओर परिचित पौराणिक संदर्भ मिलते हैं, तो दूसरी ओर वे आधुनिक संदर्भों में एक नए अर्थ ग्रहण करते हैं। इससे साहित्य में गहराई और व्यापकता आती है।

व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता:-यह शोध-पत्र यह स्पष्ट करता है कि जब तक प्रशासन में पारदर्शिता, जवाबदेही और मानवीय संवेदनशीलता सुनिश्चित नहीं होगी, तब तक भोलाराम जैसे पात्र फाइलों के नीचे दबे रहेंगे और उनका जीवन नारकीय बना रहेगा। आधुनिक प्रौद्योगिकी, डिजिटलीकरण और ई-गवर्नेंस के माध्यम से कुछ सुधार अवश्य संभव है, किंतु जब तक मानवीय मूल्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं दी जाएगी, व्यवस्था का चरित्र नहीं बदलेगा।

सामाजिक चेतना का आह्वान:-हरिशंकर परसाई की यह रचना केवल एक साहित्यिक कृति नहीं है, बल्कि समाज को अपनी चेतना जगाने का एक सशक्त आह्वान है। यह पाठकों से पूछता है कि क्या हम मौन दर्शक बने रहेंगे? क्या हम भोलाराम जैसे लोगों की पीड़ा को भूल जाएँगे? इसी क्षण की चेतना ही सामाजिक परिवर्तन का आधार बन सकती है।अंत में, परसाई जी की यह कहानी हमें याद दिलाती है कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक सचेतता और परिवर्तन का वाहक होना चाहिए। 'भोलाराम का जीव' इसी परंपरा की एक महान कृति है।

निष्कर्षत: 'भोलाराम का जीव' आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है। लगभग दो दशक पहले लिखी गई यह कहानी, आज के भ्रष्टाचार और अमानवीयकरण के इस दौर में एक मार्गदर्शक दस्तावेज़ प्रतीत होती है। हर दिन हज़ारों भोलाराम हमारे दफ्तरों में फाइलों के नीचे दबे होते हैं, उनकी आवाज़ें सुनी नहीं जातीं।

****

संदर्भ सूची :-

1. परसाई, हरिशंकर - 'परसाई रचनावली', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. शुक्ल, रामचंद्र - हिंदी साहित्य का इतिहास।
3. समकालीन हिंदी व्यंग्य के विविध आयाम - शोध पत्रिकाएँ।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

सिरमौर जिला के गिरिपार क्षेत्र में प्रचलित प्रसिद्ध पारंपरिक त्योहार 'बूढ़ी दिवाली' एक सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ. मलकीयत सिंह
निर्देशक
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
हि. प्र. केंद्रीय विश्वविद्यालय-धर्मशाला

सविता
शोध छात्रा
हिंदी विभाग
ई- मेल- sharmasavita.sml@gmail.com
मो- 8629890435

सारांश :- भारत विविधताओं और बहुलताओं का देश है, जो भारत की प्रमुख विशेषता है। यहां उत्तर दिशा में पश्चिमी हिमालय के रमणीय सौंदर्य में विराजमान हिमाचल प्रदेश है, जिसे विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल माना जाता है। हिमाचल प्रदेश भौगोलिक विविधता प्राकृतिक सौंदर्य विभिन्न संस्कृतियों एवं लोक त्योहारों का प्रदेश है । हिमाचल प्रदेश के दक्षिण भाग में सांस्कृतिक समृद्धता से परिपूर्ण सिरमौर जनपद है। सिरमौर जनपद भौगोलिक रूप से बहने वाली गिरि नदी के नाम पर दो भागों **'गिरीआर'** और **'गिरीपार'** में बांटा गया है।गिरिपार पूरी तरह पहाड़ी क्षेत्र है।यहां का लोक त्योहार अत्यंत प्राचीन एवं वैविध्यपूर्ण है,जो यहां के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन से ओत-प्रोत है। इसमें लोक जीवन के हर्ष-विषाद, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा एवं आशा-निराशा के भाव उदगार समाहित है।सिरमौर जनपद की सांस्कृतिक पहचान में 'बूढ़ी दिवाली' लोक त्योहारों में विशिष्ट स्थान रखती है, जिसे 'गिरिपार' क्षेत्र के मानस द्वारा 'मार्गशीर्ष' मास की अमावस्या को मनाया जाता है।यह शोध पत्र इस पारंपरिक त्योहार के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व का विश्लेषण तथा विवेचन करता है, जिसमें सिरमौर जिले के 'गिरिपार' क्षेत्र के लोगों की अटूट भूमिका और 'बूढ़ी दिवाली' मनाने की गतिविधियों का विस्तृत विवरण शामिल हैं। आधुनिकता की होड़ के बावजूद यह अध्ययन इस अनमोल उत्सव के संरक्षण और संवर्धन की आवश्यकता पर जोर देता है। एक शोधार्थी के रूप में त्योहार की मान्यता, उत्पत्ति ,विकास और वर्तमान सामाजिक प्रासंगिकता का गहन अध्ययन-मनन करना आवश्यक है, ताकि हम सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक परंपराओं की जटिलताओं को उचित ढंग से समझ सकें। यह अध्ययन न केवल इस विशेष त्योहार पर प्रकाश डालेगा, अपितु अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं के विश्लेषण के लिए भी एक उपयोगी ढांचा प्रदान करेगा।

बीज शब्द :- गिरिपार, बूढ़ी दियाली, भीयुरी, हारूल, चोल्टू, बलिराज, मशाल, लिंबर।

प्रस्तावना:-हिमाचल प्रदेश की संस्कृति एवं त्योहारों में दिवाली एक प्रसिद्ध पर्व है। पूरे देश में दिवाली का पर्व लंका विजय के उपरांत भगवान राम के लंका से अयोध्या लौटने की खुशी में मनाया जाता है। पर'बूढ़ी दिवाली' का प्रसंग भगवान राम के अयोध्या वापस लौटने की खुशी के साथ-साथ 'गिरिपार'मानस के लोग इस त्योहार का संबंध महाभारत युद्ध में कौरवों पर पांडवों की विजय से जोड़कर भी देखते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर के राज तिलक की खुशी में 'बूढ़ी दिवाली'पर्व मनाया जाता है। सिरमौर के 'गिरिपार' क्षेत्र के दरदराज एवं दुर्गम इलाकों में 'बूढ़ी दिवाली' मनाने का रिवाज सदियों पुराना है। यह त्योहार 'मार्गशीर्ष' महीने के अमावस्या को मनाया जाता है। इस क्षेत्र के लोग 'बूढ़ी दिवाली' का पर्व बड़े ही आनंद से मानते हैं। जिसमें बच्चे, बूढ़े, जवान एवं औरतें सभी बड़े चाव से 'बूढ़ी दिवाली' में भाग लेते हैं। गांव के प्रत्येक घर में इस पर्व की तैयारी एक महीना पहले से शुरू हो जाती है।

नामकरण :-'बूढ़ी दिवाली' नाम का संबंध पुरानी या बीती हुई घटना से जोड़ा जाता है। यह पर्व दिवाली के करीब एक महीने बाद मनाया जाता है। यह दिवाली जो समय की देरी के कारण सिरमौर पर्वतीय क्षेत्रों में बाद में मनाई जाती है।

बूढ़ी दिवाली के संदर्भ में विभिन्न किंवदंतियां:-सिरमौर जिला के गिरिपार क्षेत्र में 'बूढ़ी दिवाली' क्यों मनाई जाती है? इसके पीछे विभिन्न लोगों की अलग-अलग किंवदंतियां है जिसका संबंध यहां के लोग पौराणिक ग्रंथों रामायण, महाभारत, राजा बलि तथा फसल कटाई में देरी से जोड़कर देखते है।

"यह त्योहार परंपरागत दिवाली से ठीक एक मास उपरांत मगहर की अमावस्या को मनाया जाता है। यह तीन दिन तक मनाया जाता है। 'दियाली' के दिन मंदिर के आंगन में या निकट के पहाड़ी खेत में आग जलाई जाती है जिसे 'बलराज' कहा जाता है।"[1]

एकमत के अनुसार-'अमर सिंह':- "इसका मुख्य कारण यह है कि श्री राम जी के चौदह वर्षों बाद अयोध्या लौटने की सूचना पहाड़ी व दुर्गम क्षेत्र 'गिरिपार' में देरी से मिली। अतः दिवाली के ठीक एक मास पश्चात अमावस्या को यह पर्व धूमधाम से मनाया जाता है।"[2]

दूसरी मत के अनुसार-वंशी राम शर्मा :- "इसका दूसरा कारण यह है कि शीताधिकाएं से इस क्षेत्र में फसल जल्दी पक कर तैयार नहीं होती। देरी से फसल पकने के कारण दिवाली के स्थान पर 'बूढ़ी दिवाली' मनाने का प्रचलन है।"[3]

'बूढ़ी दिवाली'मात्र एक पारंपरिक त्योहार ही नहीं, अपितु यह समाज संचार, संदेश, एवं मूल्य के संप्रेषण का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। 'गिरिपार' क्षेत्र में यह त्योहार लगभग एक सप्ताह तक चलता है। **"कंवर रणजोर सिंह के शब्दों में:-**"गिरिपार' क्षेत्र में दिवाली मनाई जाती है एक छोटी तथा एक बड़ी या बूढ़ी दीवाली होती है। गिरिपार के लोक त्योहारों में नाचने, गाने, बजाने के बहुत शौकीन है। स्त्री- पुरुष एक साथ नृत्य करते हैं जिसको स्थानीय बोली में **'गी'** कहते हैं। उस समय नगाड़े,शहनाई, बाजे आदि खूब बजाए जाते हैं।"[4]

अन्य मत के अनुसार-'बूढ़ी दिवाली' उत्सव की शुरुआत**'भीम अमावस्या'** की आधी रात के बाद मशालो के जुलूस से होती है। भीम अमावस्या को गांव के लोग कुल देवी के प्रांगण में आधी रात के पश्चात लगभग चार बजे एकत्र होते हैं। हजारों ग्रामीण रात के अंधेरे में जब उल्लास भरे स्वरों में कौरवों पर पांडवों की विजय का उद्घोष करते हैं तो यह दृश्य रोमांचित एवं चकित कर देता है। यहां की बोली में इस उद्घोष को **'लिंबर'** कहा जाता है। रात के अंधेरे में ढोल, नगाड़े, दूमाना, ताली तथा रणसिंघा जैसे वाद्य यंत्रों की थाप पर गांव के सभी पुरुष रात के

समय मशाल यात्रा निकालते हैं। प्रांगण में देवी-देवताओं का वंदन तथा नमन कर **'लिंबर'** लगाते हैं। गांव के सभी पुरुष मशाल लेकर जुलूस के रूप में गांव के एक छोर से चलकर दूसरे निर्धारित स्थान पर विशाल **'बलिराज'** को जलाते हैं।

गिरिपार मशाल लोक यात्रा

'बलिराज' का संबंध राजा बलि से जोड़ा गया है। भगवान विष्णु ने जब वामन अवतार लिया था तब राजा बलि के घमंड को तोड़ने के लिए तीन पग धरती मांगी थी। तीसरे पग में राजा बलि के सिर पर विष्णु ने पांव रखा था। उसी समय राजा बलि धरती में समा गए थे, इस उपलक्ष्य पर 'बलिराज' को जलाया जाता है। इसे बुराई पर अच्छाई की जीत यानी कौरवों पर पांडवों की विजय तथा पांडवों के स्वराज की स्थापना का प्रतीक भी माना जाता है। जब पांडवों ने अपना अज्ञातवास हिमालय क्षेत्र में काटा, तो वह यहां से लौट कर हस्तिनापुर पहुंच गए। इस खुशी के अवसर पर लोग नाचे,गाए, झमें थे। इसी समय से यह पर्व'बूढ़ी दिवाली' के रूप मनाया जाता है।'मार्गशीर्ष'मास की अमावस्या को **'भीम अमावस्या'** भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि भीम का विवाह हिडिंबा से हुआ था और भीम एक महीने तक देवी हिडिंबा के साथ रहे थे। भीम एक महीने पश्चात हस्तिनापुर पहुंचे। इसी अमावस्या के दिन लोगों ने खुशी मनाई ।पांडवों से इस रात का संबंध जोड़ा जाता है। इसी कारण 'भीम अमावस्या' नाम पड़ा। रात खुलने से पूर्व 'बलिराज' दहन के बाद मशाल जुलूस नाचता- झमता वापिस कुलदेवी के प्रांगण में पहुंचता है। गिरिपार पिछड़े क्षेत्र में 'बूढ़ी दिवाली' वाले त्योहार यूं तो हजारों गांव में पूरे जोश के साथ मनाया जाता है परंतु सिरमौर जिला के शिलाई तहसील के द्राबिल, टीटीयाना, शीला तथा नाया पंजोड़ आदि गांवों का 'बूढ़ी दिवाली' त्योहार आज भी अपने प्राचीन और पारंपरिक स्वरूप के लिए अलग पहचान रखता है। इन गांवो में 'बूढ़ी दिवाली' के पर्व के लिए लोगों में उमड़ने वाला उत्साह, उत्तेजना और दिल जान से इस पर्व को मनाने का जुनून आज भी आश्चर्य चकित कर देता है। ऐसा लगता है मानो यहां का जन सैलाब पूरे साल इस अनूठे उत्सव मनाने में आंखें बिछा के बैठा हो। इस त्योहार के उद्गम को लेकर अलग-अलग किंवदंतियां प्रचलित है जिससे एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है। लेकिन इस त्योहार के नामकरण 'बूढ़ी दिवाली' से इस संबंधी दीपावली से अधिक प्रतीत होता है। क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र दुर्गम है। अतः यह तर्क भी जुड़ता प्रतीत होता है।

सांस्कृतिक लोक नृत्य:-सिरमौर जनपद के 'गिरिपार' क्षेत्र में 'बूढ़ी दिवाली' पर्व पर विभिन्न लोक नृत्यों का आयोजन देखने को मिलता है। इन लोक नृत्यों में रासा नृत्य, चोल्टू नृत्य, खेलटू नृत्य, हारूल नृत्य तथा गी नृत्य आदि प्रमुख हैं। इस अवसर पर पूरे दिन गांव के पुरूषों, महिलाओं और मेहमानों द्वारा हारूल गीत गाकर रासा नृत्य का गायन वाद्य यंत्रों को बजाकर करते हैं।

हारूल लोकगीत में राजपूतों की वीर गाथाएं गाई जाती हैं। इसमें राजपूतों का मुगलों के साथ युद्ध, राजपूत की राजपूत के साथ लड़ाई तथा यह युद्ध क्यों हुआ? कैसे हुआ? किसकी विजय हुई? इन वीर गाथाओं में उन सब का गान होता है। इसी बीच दोपहर के समय गांव के समस्त पुरुषों द्वारा पारंपरिक परिधान चोल्टु पहनकर **'घुंडिया रासा'** नृत्य किया जाता है।आज भी हर घर के पुरुष द्वारा इस कढ़ाईनुमा श्वेत वस्त्र पहनकर वाद्य-यंत्रों की चाप पर मस्त लोक नृत्य करते हैं। 'बूढ़ी दिवाली' के अवसर चोल्टू रासा नृत्य की प्रक्रिया के बीच-बीच में गांव के स्थानीय पुरुष कलाकारों द्वारा खेल्टू नृत्य (खेल) का आयोजन किया जाता है। खेल्टू नृत्य का मुख्य उद्देश्य लोक मनोरंजन तथा लोक को उपदेश देना होता है। इसमें कलाकारों के द्वारा हास्य और व्यंग्य वाक्य कहकर दर्शकों को रोमांचित किया जाता है। 'खेल्टू' नृत्य का प्रमुख आधार शिक्षा, नारी, नशा निवारण, देवता पूजन, बाघ मारा, जैसे विषयों पर हास्य पूर्ण वाक्य कहे जाते हैं। **पवन बक्शी के अनुसार** "दीपावली के ठीक एक मास बाद मनाया जाने वाले मशालों का उत्सव इसमें चार पांच दिन खान-पान व नाच-गाना तथा सिंह खेल आदि का आयोजन होता है।"[5]

गिरिपार चोल्टू रासा नृत्य

वेश-भूषा:-इस त्योहार के अवसर पर गिरिपार के लोगों द्वारा पारंपरिक वस्त्र पहने जाते हैं। पुरुषों के द्वारा लोइयां, चोल्टू, सूथन, कुर्ता, टोपी और महिलाओं के द्वारा लुगड़ी, ढाठू, सदरी, गरारा-झगा आदि परिधान पहने जाते हैं। महिलाओं के द्वारा सोने-चांदी के आभूषणों को धारण किया जाता है जिसमें हार, मंगलसूत्र, बाजू बन्द, टिका, पैंडल आदि पहने जाते हैं। अतः इस वेश-भूषा के माध्यम से न केवल यहां के लोक पहनावे का ही पता नहीं चलता है अपितु लोक जीवन की सांस्कृतिक झलक पेश होती है।

गिरिपार लुगड़ी पारंपरिक परिधान

खान-पान:-गिरिपार क्षेत्र में 'बूढ़ी दिवाली' के त्योहार पर एक सप्ताह तक भिन्न-भिन्न पारंपरिक व्यंजन बनाएं जाते हैं। जिसमें मुख्य रूप से तेलपाकी, खिंडा, गुलगुले, हलौउले, मीठी रोटी, सिड़कू, असकली, सुतौउले आदि पकवान बनाए जाते हैं। मेहमानों को चाय के साथ मुडा, शाकुली, अखरोट, तथा चिवड़ा परोसा जाता है। यह पारंपरिक व्यंजन यहां के संस्कृति एवं त्योहार की अलग पहचान प्रदर्शित करते हैं

अन्य लोक कथा प्रसंग और मिथक-इस पर्व में धार्मिक मान्यताएं, आस्थाएं, परंपराएं तथा लोक मनोरंजन के साथ-साथ अन्य लोक कथा प्रसंग का समावेश देखने को मिलता है। अन्य लोक कथा में भीयुरी कथा बहुत प्रसिद्ध है। अमावस्या का दूसरा दिन 'गिरिपार' मानस द्वारा **'भौयुरी'** के नाम से मनाया जाता है।'भीयुरी' के दिन गांव की सभी कुंवारी लड़कियां तथा शादी शुदा धीयांटी सामूहिक रूप से देवता के आंगन में 'भीयुरी' गीत पर नृत्य करती हैं। यह गीत 'भीयुरी' नामक बेटी की याद में गाया जाता है,जो किसी कारण 'बूढ़ी दिवाली' के अवसर पर अपने पिता के घर नहीं आ पाई थी। पिता पुत्री की विछोह भावना से परिपूर्ण इस शोक गीत में वाद्य- यंत्रों का प्रयोग वर्जित माना जाता है।'भीयुरी'गीत गाने के पश्चात गांव की सभी धीयांटी को महिलाओं के द्वारा मुड़ा,शाकुली, चिवड़ा और अखरोट दिया जाता है, जिसे 'भीयुरी' का हिस्सा कहा जाता है।

भीयुरी लोकगीत के बोल और भावार्थ:—सिरमौर के 'गिरिपार' क्षेत्र में 'भीयुरी' लोकगीत गायन परंपरा की एक समृद्ध और विविध श्रृंखला पाई जाती है। इस लोकगीत का अपना विशिष्ट भाव,लय तथा सामाजिक संदेश है,गीत के भाव बोल इस प्रकार है।

साक्षात्कार:- 'प्रमिला देवी', 'मालो देवी','जानकी देवी'।[6]

बोल

फुल्लो फुलिटु दाए।
फुल्लो फुलिटु दाए।।
ओंकी धीयाणी रोइ आए।
मेरी ना भीयुरी आए।।
बेलुआ बुल्बे भाई।
भीयुरी रो बोयुद जाए।।
जादा नी भाजदा ठकरानी।
पराण ना भीयुरी रो घर।।

भावार्थ:-उपर्युक्त लोक गायन के माध्यम से टोलियों में लोकगीत गाने वाली स्त्रियां गा रही है-कि बाक़ी सभी लड़कियां अपने ससुराल से मायके आ गई है परंतु'भीयुरी' नहीं आई। इसके पश्चात'भीयुरी'की माता बेलुआ संदेशवाहक को बुलाने के लिए भेजती है। बेलुआ इस पर कहता है कि मैं जाने से मना नहीं करता किंतु मैं'भीयुरी' के घर को नहीं पहचानता।

बोल

सेजों ए भीयुरी रो घर।
जिंदा ए कुकड़ा चम्बी।।
बेलुआ बुल्बे भाई।
गांव घर कैइ जाय।।
बेलुआ थूआ परेसु।
भीयुरी रो पछना लाए।।
ख़ुशी अस बाबा और माई।
ख़ुशी अस भाभी और भाई।।

साक्षात्कार :- 'निशा शर्मा','रवीना शर्मा'। [7]

भावार्थ:-उपर्युक्त लोकगीत गाने वाली लड़कियां कह रही हैं कि- माता जी 'भीयुरी' के घर की पहचान बताते हुए कहती है कि उसका पूरा घर लकड़ी से बना हुआ है । घर में लंबी सीढ़ियां तथा मुर्गा है। उसके बाद बेलुआ'भीयुरी' के घर चला जाता है। वहां पहुंचकर उसका हाल-चाल जान लेता है। 'भीयुरी' भी अपने सभी मायके वालों का हाल-चाल जान लेती है।

बोल

परेसु बुलुबे साथिया।
भीयुरी पांवणी गई आय।।
बीच जानि रास्ते।
भीयुरी उदी गई जाए।।
बेलुआ बुल्बे भाई।
भीयुरी उदी गई जाए।।

भावार्थ:-उपर्युक्त लोकगीत गाने वाली स्त्रियां गा रही हैं कि- बेलुआ 'भीयुरी' से मायके चलने के लिए प्रार्थना करता है कि वह उसके साथ मायके चले। उसके उपरांत बहुत दोनों 'भीयुरी' के मायके के लिए प्रस्थान करते हैं। गिरिपार अत्यंत दुर्गम तथा पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण 'भीयुरी' की रास्ते में चलते समय गिरने के कारण मृत्यु हो जाती है।

'गिरिपार' क्षेत्र के संपूर्ण लोकगीतों में 'भीयुरी' लोकगीत का अपना एक ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक महत्व है वह 'गिरिपार' के किसी एक गांव की आदर्श, शालीन तथा कर्तव्य परायण लड़की मानी जाती थी। जिस कारण गीत में बताया गया है की 'भीयुरी' की मायके जाते समय गिरकर मृत्यु हो गई थी। इसी कारण संपूर्ण 'गिरिपार' लोक में 'भीयुरी' को अमर करने के लिए गीत गया जाता है ताकि 'बूढ़ी दिवाली' भी ना टूटे और 'भीयुरी' जैसी आदर्श स्त्री को अमरता मिले। इस गीत के महत्व तथा प्रासंगिकता को देखकर पता चलता है कि 'गिरिपार' क्षेत्र में तत्कालीन समय में महिलाओं को सम्मान देने के लिए उसके मृत्यु शोक पर अमरता के गीत गाए गए। आज भी सिरमौर के 'गिरिपार' क्षेत्र में 'भीयुरी' लोकगीत गांव की धीयांटी द्वारा उसी प्रकार गाया जाता है जिस प्रकार पहले गाया जाता था जिससे 'गिरिपार' के सांस्कृतिक संरक्षण का पता चलता है।

निष्कर्ष:-'बूढ़ी दिवाली' त्योहार कृषि समृद्धि, धार्मिक आस्था , पितरों की स्मृति और सामूहिक मेलजोल का प्रतीक है। यह पर्व सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण को एक ऐसा सूचक है जो प्राचीन समय से ही अपनी महक एवं मिठास को जीवंत रखे हुए हैं। इस त्यौहार का सुखद पहलू यह है कि आधुनिकता की चकाचौंध में भी ग्रामीण क्षेत्र में यह पर्व अपनी मौलिकता एवं परंपरागत स्वरूप को संजोए रखते हुए दिखाई पड़ता है। इस सांस्कृतिक त्योहार को संरक्षित और संवर्धित करना हम सभी का कर्तव्य है, ताकि भविष्य में आने वाली पीढ़ियां भी इस समृद्ध परंपरा का आनंद ले सकें और इससे प्रेरणा प्राप्त करे।

****

संदर्भ :-

1.जगमोहन बलोकरा,'अलौकिक हिमाचल प्रदेश' नई दिल्ली,2016।
2. साक्षात्कार, अमर सिंह, गांव-द्राबिल, दिनांक 13.9. 2025 तहसील, शिलाई।
3. साक्षात्कार,वंशी राम शर्मा, गांव- टीटीयाना, दिनांक,18.9.2025 तहसील,कमराऊ।
4. कंवर रणजोर सिंह, 'सिरमौर रियासत का इतिहास', हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी- शिमला,2007।
5. पवन बक्शी, 'हिमाचल गिरिपार का हाटी समुदाय', आज़मी प्रकाशन पावटा साहिब-सिरमौर, 2011।
6. साक्षात्कार 'प्रोमिला देवी', 'जानकी देवी', 'मालो देवी', गांव-शीला, दिनांक 5.10.2025 तहसील, कमराऊ- कफ़ोटा।
7. साक्षात्कार 'रवीना शर्मा', 'निशा शर्मा', गांव- खड़काहा दिनांक 18.10.2025 तहसील-शिलाई।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

वेणु गोपाल की कविता को पढ़ते हुए

नंदकिशोर प्रसाद
सह –प्रोफेसर
राजधानी कॉलेज (यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली)

हिन्दी साहित्य लेखन परंपरा में खेमेवादी लेखन की अपनी परंपरा रही है । एक विशेष विचारधारा के अंतर्गत लेखन परिपाटी रही है । ऐसे में लीक से हटकर अलग लेखन करने वालों को प्राथमिकता नहीं दी जाती या उसकी लेखन को गैर जरूरी कहकर रचनधर्मिता पर ही सवाल पैदा कर दिया जाता है । वेणुगोपाल ऐसे ही एक कवि है जिन्हें लंबे अरसे तक तरजीह नहीं दिया गया । प्रस्तुत शोध में वेणुगोपाल की रचनधर्मिता और उनकी सामाजिक भागीदारी पर विचार किया गया है ।

हिंदी पट्टी में खेमेवादी की एक लंबी परम्परा रही है।यद्यपि पुराने खेमेबंदी से अब के खेमेबंदी अधिक खतरनाक है और खेमेबंदी से ही उस रचनाकार की कीमत का पता चलता है।जहाँ तक प्रतिबद्धता की बात है तो हम जानते है कि प्रतिबद्धता हमेशा रचनात्मक होती है लेकिन जब एक व्यक्ति किसी विचारधारा या धेरेबन्दी से जुड़ता है तो जुड़ने से पहले गणित का इस्तेमाल करता है। मसलन गुणा, भाग, जोड़ , घटा, लाभ, हानि के माध्यम से वह प्राइवेट स्कूलों के बच्चों की तरह रटंत -पद्धतियां अपनाकर कभी उल्टी करता है तो कभी तारीफ का पूल बांधता है। ऐसे में यह अत्यधिक जटिल हो गया है कि विचारधारा या घेरेबंदी की पहचान करते हुए उस व्यक्ति के पाखंड की पहचान की जाय तब रचना के भीतर घुसा जाय।जबकि सरल तरीका यह है कि रचना को पढ़कर रचनाकार के भीतर और फिर समाज के भीतर घुसा जाय।

बात वेणुगोपाल की है और विषय कविता है।मेरे पास तीन कविता संग्रह 'हवाएँ चुप नहीं रहती' वे हाथ होते है ' चट्टानों का जलगीत ' उपलब्ध है। इन रचनाओं में कवि को अपनी कुछ सफाई, कुछ तर्क व जिज्ञासाएं है। सवाल यह नहीं है कि रचनाकार रचना के प्रति कितना ईमानदार है बल्कि रचना इतिहास के भीतर कितना स्वंय को जोड़ पाती है, कहना ज्यादा उचित होगा। कवि मौत की बात करता है । जबकि मौत विश्व समाज व्यवस्था में सामान्य प्रक्रिया नहीं है। **"मैंने पूरी तैयारी कर ली थी।दरवाजे बंद ।तेज चाकू। बस ,खोलकर सामने फैला देना है । और उस पर गिर पड़ना है ।पेट के बल ।लेकिन पहले ये कविताएं जला देनी है"**

कवि के हिसाब से आत्महत्या करने की बात है। यह शहरी जीवन के संदर्भ में जीवन सफल न होने अर्थात आकांक्षाओं के पूरा न होने या संघर्ष संघर्ष करने की ताकत खत्म हो जाने के बाद की प्रक्रिया है। जो व्यक्ति गेंग्रीन अवस्था में भी अपनी जीविका के लिए संघर्ष करता है और एक पैर कट जाने के बाद भी जिंदगी जीने का प्रयत्न करता है वह बार-बार आत्महत्या क्यों करना चाहता है।

क्या सामाजिक ,राजनीतिक, धार्मिक व आर्थिक व्यस्थाओं से तंग आ गया है या प्रथमिक जरूरतें पूरा नहीं हो पाने की वजह से । कवि ने लिखा है कि कविता उसे कई बार आत्महत्या करने से रोक दी है। कविता का स्वयं पर आत्मपरीक्षण और तब समय से उसे वितरण कर देना ऐसे में समाज का क्या होगा। क्या कविता पढ़कर आत्म हत्याएं कम हो जाएगी या बढ़ जाएगी। दरअसल कवि का अपना सच समाज का सच तब बनता है जब भावुकता का स्थान बाजार ले लेता है और सामान की तरह जान भी लेनदेन में बदल जाती है अतः कवि अपनी कविता की ताकत से बच जाता है वही कविता आज लोगों के लिए निरर्थक व बेकार की चीज़े रह गई है।

"देखों की जंगल आज भी उतना खूबसूरत है / अपने आशावान हरेपन के साथ बरसात में झूमता हुआ /उस काले भेड़िए के बावजूद/ जो शिकार की टोह में / जो झाड़ियों से निकल कर खुले में आ गया है / ख़रगोशों और चिड़ियों /और पौधों की दूधिया वत्सल निगाहों से/ जंगल को देख भर लेना दरअसल उस काले भेड़िए के ख़िलाफ़/ खड़े हो जाना है जो सिर्फ़ अपने भेड़िए होने की वज़ह से जंगल की ख़ूबसूरती का दावेदार है।" (काले भेड़िये के खिलाफ कविता से)

यह जो भेड़िया है वह समय और स्थान के भीतर परिवेश एवं परिस्थितियों के अंतः क्रियाओं से पैदा हुआ है। दूसरों के लिए पीएच.डी.की उपाधि हेतु शोध प्रबंध लिखने वाले वेणुगोपाल को नौकरी नहीं मिलती जबकि जिसकी पीएच.डी.वे लिखते है उसको नौकरी मिल जाती है।यह अपने समय के सच और आत्महत्या करने का मुख्य कारण है इसलिए कवि सर्वप्रथम मौत के बारे में लिखता है । इसे स्पष्टत देख जा सकता है कि जो दिखता है वह बिकता है, शेष भकु नारायण है। विद्वान लोग लकीर खींच दिये है , इधर फकीर उधर अमीर।

"हवाओं ने सरापा समझा अंधेरे को/ झूठ नहीं कहा था उसे/ लेकिन अंधेरे ने ग़लत समझा हवाओं को/ क्योंकि उजाले को सच कहा था उन्होंने।" (हवाएं चुप नहीं रहती कविता से)

यह वेणुगोपाल के जीवन का सच के साथ आज के समय का भी सच है। मौत के बाद कवि देखने और सुनने की बात करता है । दरअसल यह इतना आसान नहीं है इससे जान भी चली जाती है।कबीर का आंखिन देखी और वेणुगोपाल आखिन देखिन एक जैसा है । वेणुगोपाल देखते है और सुनते है ।"देखना अपने से बाहर जाना है।और अपने से बाहर जाकर अपने को देखना ।कैसा जादू!! कि ऑखें मूँदो तो सारी दुनिया गायब! और खोलते ही सारा तिलिस्म एक बारगी सामने। इसलिए देखना ताकत देता है ।सुनना भी लेकिन उसका नंबर बाद में ।"श्रोत की विविधताओं को देखना और उसे महसूस कर स्वयं को आत्महत्या के करीब पहुँचाना बहुत चिंता और चिंतन की बात है । मसलन विज्ञान व मशीन की दुनिया में आप परिवर्तन कलम से नहीं कर सकते जबकि कवि के पास कलम की ताकत है, ऐसे में अपनी प्रतिक्रियाएं कोरे कागद पर उधेड़ देता है। कवि देखता है अपना बचपन, परिवार, दोस्त,अपने सगाई में आयी चीज़े। एक निश्छल संबंध लेकिन जब वही ध्यान से इस बदलाव को देखता है तो एक बेचैनी ,एक अंधेरा उसके सामने छाने लगती है ।

"देखने के नाम पर मेरे पास सिर्फ़ वह अंधेरा है / जो बढ़ता ही चला जा रहा है लेकिन सुनने के नाम पर ढेर सारी किलकारियाँ हैं/ घुटनों के बल खिसक -खिसक कर आते हुए बच्चे की/ मैं जो कुछ भी देख पा रहा हूँ वह आज है/ लेकिन जो सुन रहा हूँ वह आने वाला कल है।" (देखना और सुनना कविता से)

यह भारतीय समाज व्यवस्था का वह सामंतीय ढांचा है जो आदमी को नक्सल बनाता है। स्थितियों की जकड़न को देखना उसे संघर्ष की ओर प्रेरित करती है और वह अंधेरे में ,जंगलों में अपने जीवन को काटता है।क्योंकि उसने जो सुना है वह अत्यंत मत्त्वपूर्ण है।हर बदलाव मौत मांगती है। आज वह बदलाव के लिए मौत की परवाह नहीं कर रहा क्योंकि कल उसे कुछ सुनना भी है। वेणुगोपाल नक्सल आंदोलन से भी जुड़े हुए थे।नक्सलियों की स्थिति के बारे में उन्हें पता

था लेकिन किस सामाजिक हैसियत के लिए वे लड़ रहे थे वह बहुत कम समय में ही देखने व सुनने को मिल गई। यह कविताएं समय और स्थान के दबाव के कारण पैदा हुई है। कवि पत्थर, पहाड़ ,गुफा, जंगल, बरसात का जो चित्रण करता है वह अनायास नहीं है उसके भीतर कवि मन की पीड़ा है। **" तो यह सन् 1975 है और इन्हें मेरा इंतजार करना चाहिए/और राख के ढेर में ढूंढना चाहिए/ ढूंढते रहना चाहिए/ शोला नहीं तो कोई चिंगारी ही मेरे लौटने तक।"**यह चिंगारी जिसे कवि के तलाश और उम्मीद भी है एक तरह से उनकी प्रगतिशीलता का सूचक है।कवि प्रत्येक कविता से एक लड़ाई के रूप में देखता है ।ऐसा लगता है कि कविता और रोटी की बात एक साथ हो सकती है जबकि आज यह धारणा काफी प्रबल हो चुकी है कि कविता और रोटी का कोई संबंध नहीं है। दरअसल वेणु जी के जीवनशैली और उनके जीवन से संबंधित तमाम विवरणों को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि कविता कवि को साहस देती है और रोटी उन्हें ऊर्जा।दोनों मिलाकर अपना काम करते हैं।इसलिए कविता में जो जीवन है वह किसी खाका विवेक से बाहर एकदम रूटलेस है।उसे हर तरह से देखा-परखा जा रहा है।**"कई-कई दिन हुए एक दाना तक नहीं गया है उनके मुँह में/और / अब यह तय हैकि जंगल से वही निकल पाएगा/ जो दूसरे को काटकर अपनी ख़ुराक हासिल करे /और ताक़त पाए/और भविष्य ही बताएगा कि जंगल से निकलने / और दुश्मन से लड़ने के लिए कौन बचता है – कवि या कविता?"**

कविता के प्रति और कवि के प्रति वेणु जी चिंता अधिक मत्वपूर्ण है।अर्थ की दुनियां में भावुकता की जगह चालाकी ने अपना स्थान बना लिया है,अंतः ह्रदय की सरलता ,सहजता एवं कोमलता की बात करना एक तरह का गदहपन है। इसके स्थान पर भाषा व व्यवहार का तिकड़म मत्त्वपूर्ण हो गया है। हमें यह ध्यान रखना है कि एक मॉल में साड़ी खरीदते समय अगर चार हजार रुपये दे रहे है और उससे अच्छी क्वालिटी हाथ से बनी साड़ियों में है और उसकी कीमत चार हजार रुपए है तो हम श्रम की अपेक्षा चमक और स्थान को अधिक महत्व देते है।यह जो श्रम को समझ पाने की दौड़ आज लोगों में खत्म होता जा रहा है,अत्यंत घातक है ,उसका निवारण जरूरी है। हिंदी पट्टी तो इस मामले में और भी कूप मंडूक है। जोगाड़तंत्र से आप कुछ कर डालिये जिसमें आपका गणिततंत्र छुपा है तो आप अव्वल है और दिनरात मेहनत कर अगर कोई लिखता पढ़ता है लेकिन किसी कारणवश दिख नहीं पाता तो वह फिसड्डी है।वेणु जी कविता को एक दस्तावेज मानते है।जबकि अर्थतंत्र इसे एक तरह से मनोरंजन का माध्यम मानता है। ऐसे में कवि वेणु की जो पीड़ा है वह अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। कवि ने एक जगह लिखा है कि

"घरों की पिछवाड़े हमारे नौनिहाल ,सेक्स के क्षेत्र में नए-नए साहसिक प्रयोग करते रहते है/ और/ साथ ही अपने माँ से रामायण और बाप से हनुमान चालीसा भी सुनते रहते है/और आप कह रहे है कि"-

ऐसा लगता है कि वेणुगोपाल संबंधों के बीच उलझे हुए व्यक्ति थे। 'जब भाभी के साथ टाके की बात चली तो शील भंग या यो कहे कि इज्जत जैसे प्रश्न सामने आ गया।भाभी के कहने पर वेणुगोपाल पढ़ने भी जाते है और कविता भी लिखतें है।' (वेणु गोपाल से प्रत्यूष जी की बातचीत का अंश) ऐसे में अफवाह या सत्य जो भी हो उनके एक कवि बनाने में भाभी के संबंधों को नकारा नहीं जा सकता ।वे स्वयं लिखते है कि मुझें भाभी,मां और मौसी ने नया जीवन दिया है। वेणुगोपाल की कविताएं जीवन के आस-पास की कविताएं है। उसमें निचले तबके के प्रति एक सहानुभूति है ।कवि का व्यक्तित्व दुख के साथ परिवेश एवं परिस्थितियों के प्रति एक आक्रोश है।गोपेश्वर गोपेश्वर सिंह ने वेणुगोपाल को याद करते हुए लिखा है कि 'हवाएं चुप नहीं रहती संग्रह में 'सपना मेरा ही है ' शीर्षक एक कविता है। यह आपातकाल में लिखी गई थी , लेकिन आज मैं इसे पढ़ रहा हूँ तो लगता है जैसे वेणु गोपाल ने गैगरिन और कैंसर जैसे अंधेरे से संघर्ष करते हुए यह कविता अभी –अभी लिखी है और लिखते- लिखते हमसे सदा के लिए दूर चले गए है ;

पहली बार ऐसा लग रहा है कि / इस बार लौटना नहीं हो सकेगा/मंजिल पर /उतर जाऊंगा तो बस उतर ही जाऊंगा /इस भीड़ के साथ /और/वह स्टेशन कभी नहीं / देख पाऊँगा जहां / मेरे पिछले सारे सफर शुरू होते थे /और खत्म भी।

मसलन वेणु गोपाल अपने लोगों के अंदर (जिनके लिए वे कविता लिख रहे थे)भय को खत्म करने की बात कर रहे है। भेड़िये के खिलाफ तभी खड़ा हुआ जा सकता है जब उसके घात –प्रतिघात को समझ लिया जाए। कवि सत्ता और जनता को बहुत बारीकी से समझकर जनता के साथ खड़ा होकर सत्ता को चुनौती देता है । " जानता मैं भी हूँ /कि बरसात में भिंगते हुए खुजैले कुत्ते के लिए / हिरावल दस्ता /युधिष्ठिर का रोल कभी नहीं निभाता /कभी नहीं " (इस हालत में भी)

कवि नदी , पहाड़ , पत्थर ,पेड़ –पौधे और उसके साथ रहने वाले लोगों की चिंता करता है। वे अपनी कविता से कुछ हो जाने की बात करते है ,उन्हे लगता है कि जीवन संघर्ष में कविता की भी भूमिका है , इसलिए जहां नदी ,पहाड़ ,जंगल , कन्दरा ,झाड़ी व फूल का जिक्र है वहा कविता की भी जिक्र है ,साथ ही जहां बंदक की बात होती है वहाँ कविता की भी बात होती है। " सफर मे निकेल तो पड़े हो लेकिन याद रखो /कि सफर के लिए जितनी जरूरत पैरों की होती है ,उतनी तैयारी की भी और / उतनी एक मंजिल की भी। "

****

संदर्भ सूची -

1 .अनुभव नहीं तो कोई भी सत्य बकवास है(कवि वेणु गोपाल से मुकेश प्रत्यूष की बातचीत के अंश) संपादन –अरुण कमल (आलोचना पत्रिका-अप्रैल-जून 2008)पृष्ठ-38
2 . कवि वेणुगोपाल को याद करते हुए - विजेंद्र नारायण सिंह (हंस पत्रिका -2008)पृष्ठ-18
3 . वेणुगोपाल का जल्दी और यूं जाना -गोपेश्वर सिंह
(हंस पत्रिका -2008) पृष्ठ-19
4 हवाएं चुप नहीं रहती - वेणुगोपाल /कविता संग्रह ,संभावना प्रकाशन , रेवती कुंज , हापुड़ 1972
5 .वे हाथ होते हैं -वेणुगोपाल /कविता संग्रह 1980
6 .चट्टानों का जलगीत -वेणुगोपाल /कविता संग्रह 1980

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

'नौकर की कमीज़' और 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' : विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

डॉ. के. भार्गवन
सह-प्राध्यापक
शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, कोझिकोड, केरल

विनोद कुमार शुक्ल समकालीन हिंदी साहित्य के अत्यंत विशिष्ट और संवेदनशील रचनाकार माने जाते हैं। वे मुख्यतः कवि, कथाकार और उपन्यासकार हैं, पर उनकी पहचान केवल विधाओं तक सीमित नहीं है। उनकी रचनाओं में एक अलग तरह की सरलता, सौंदर्य और गहराई मिलती है। वे सामान्य जीवन के साधारण अनुभवों को भी असाधारण संवेदना में बदल देने वाले लेखक हैं। हिंदी साहित्य में उनकी भाषा और शैली उन्हें एक अलग स्थान प्रदान करती है। बड़े-बड़े सामाजिक भाषण या नारेबाजी के लेखक नहीं हैं, बल्कि जीवन के छोटे-छोटे क्षणों, मामूली घटनाओं और साधारण लोगों के भीतर छिपी संवेदनाओं को अत्यंत गहराई से व्यक्त करते हैं।

उनकी साहित्यिक विशेषता यह है कि वे साधारण जीवन को भी काव्यात्मक बना देते हैं। उनकी भाषा अत्यंत सरल है, लेकिन उसका प्रभाव बहुत गहरा होता है। उनकी रचनाओं में एक प्रकार की मासूमियत, करुणा और मानवीयता दिखाई देती है। वे अपने पात्रों के माध्यम से समाज की वास्तविकता को दिखाते हैं, पर उनका स्वर क्रोध या आक्रोश का नहीं बल्कि एक शांत, भीतर तक असर करने वाला स्वर होता है। विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन, गरीबी, अकेलापन, जीवन-संघर्ष, मानवीय रिश्ते, और सपनों की दुनिया प्रमुख विषय के रूप में उभरते हैं। उनके पात्र अक्सर सामान्य नौकरीपेशा या साधारण जीवन जीने वाले लोग होते हैं। वे किसी बड़े संघर्ष के नायक नहीं, बल्कि रोजमर्रा के जीवन की कठिनाइयों में फँसे आम लोग होते हैं। इसी साधारणता में लेखक जीवन का बड़ा सत्य खोज लेता है।

उनकी रचनाओं में कल्पना और यथार्थ का अद्भुत मेल देखने को मिलता है। वे कई बार बहुत साधारण दृश्य को भी इस तरह लिखते हैं कि वह पाठक के मन में एक गहरी अनुभूति छोड़ जाता है। उनकी रचनाओं में चुप्पी का भी बहुत महत्व है। कई बार उनके पात्र कम बोलते हैं, लेकिन उनकी चुप्पी ही उनके दुख, संघर्ष और संवेदनाओं को व्यक्त कर देती है। उनके प्रमुख उपन्यासों में "नौकर की कमीज़" और "दीवार में एक खिड़की रहती थी" विशेष रूप से चर्चित हैं। "नौकर की कमीज़" में नौकरीपेशा व्यक्ति की असुरक्षा, आर्थिक दबाव और उसकी मानसिक स्थिति का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। वहीं "दीवार में एक खिड़की रहती थी" उपन्यास मानवीय जीवन की सीमाओं, इच्छाओं और भीतर की दुनिया को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है।

विनोद कुमार शुक्ल की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे पाठक को भावनात्मक रूप से झकझोरते नहीं, बल्कि धीरे-धीरे भीतर तक उतर जाते हैं। वे समाज की विसंगतियों को भी बहुत शांत स्वर में प्रस्तुत करते हैं। उनकी यही शैली उन्हें समकालीन साहित्य में एक अलग पहचान देती है। इस प्रकार विनोद कुमार शुक्ल हिंदी साहित्य के ऐसे लेखक हैं जिन्होंने साधारण जीवन की सादगी को साहित्य का सौंदर्य बना दिया। उनकी रचनाएँ आज भी पाठकों को मानवीय संवेदना, करुणा और जीवन की गहरी सच्चाई से जोड़ती हैं। वे समकालीन हिंदी साहित्य में एक अनोखी और महत्वपूर्ण उपस्थिति हैं।

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास

1. नौकर की कमीज़
2. दीवार में एक खिड़की रहती थी
3. खिलेगा तो देखेंगे
4. हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़

इनमें "नौकर की कमीज़" और "दीवार में एक खिड़की रहती थी" सबसे अधिक प्रसिद्ध और पढ़े जाने वाले उपन्यास हैं।

"नौकर की कमीज" -हिंदी साहित्य में विनोद कुमार शुक्ल का नाम एक ऐसे रचनाकार के रूप में लिया जाता है जिन्होंने साधारण जीवन के अनुभवों को असाधारण संवेदना और काव्यात्मकता के साथ प्रस्तुत किया। उनका उपन्यास "नौकर की कमीज" समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह उपन्यास केवल एक नौकरीपेशा व्यक्ति की कहानी नहीं है, बल्कि यह मध्यवर्गीय जीवन की विवशताओं, मानसिक तनाव, आर्थिक संघर्ष, सामाजिक असमानता और मनुष्य की आंतरिक टूटन का अत्यंत प्रभावशाली दस्तावेज है। इस उपन्यास में लेखक ने रोजमर्रा के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से समाज की बड़ी सच्चाइयों को उजागर किया है।

उपन्यास की कथावस्तु-"नौकर की कमीज" उपन्यास की कथा एक साधारण नौकरी करने वाले व्यक्ति के इर्द-गिर्द घूमती है। उसका जीवन सीमित संसाधनों, कम वेतन और लगातार बढ़ती जिम्मेदारियों के बीच संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। वह व्यक्ति अपने जीवन में बेहतर स्थिति की आकांक्षा रखता है, परंतु उसकी आर्थिक हालत उसे हर कदम पर रोकती है। नौकरी का दबाव, घर की जरूरतें, पत्नी की इच्छाएँ और समाज के ताने—सब मिलकर उसके जीवन को बोझिल बना देते हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु में कोई बहुत बड़ी घटना नहीं होती, बल्कि साधारण जीवन की छोटी घटनाएँ ही कथा को आगे बढ़ाती हैं। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। लेखक दिखाते हैं कि साधारण जीवन में भी संघर्ष कितना गहरा और पीड़ादायक हो सकता है।

मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण-इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता यह है कि यह मध्यवर्गीय जीवन का वास्तविक और सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। मध्यवर्गीय व्यक्ति न तो बहुत अमीर होता है और न ही पूरी तरह गरीब, लेकिन उसकी जिंदगी हमेशा असुरक्षा, दबाव और तनाव से भरी रहती है। वह अपने सपनों और इच्छाओं को पूरा करने के लिए लगातार संघर्ष करता है, परंतु उसकी सीमाएँ उसे बार-बार निराश कर देती हैं।

"नौकर की कमीज" में नौकरीपेशा वर्ग की विवशता को बहुत प्रभावशाली तरीके से चित्रित किया गया है। एक साधारण नौकरी करने वाला व्यक्ति समाज में सम्मान तो चाहता है, परंतु उसकी आर्थिक स्थिति और नौकरी की मजबूरी उसे आत्मसम्मान से भी समझौता करने पर विवश कर देती है।

'कमीज' का प्रतीकात्मक अर्थ-इस उपन्यास का शीर्षक "नौकर की कमीज" अत्यंत प्रतीकात्मक है। कमीज केवल एक वस्त्र नहीं है, बल्कि वह नौकरीपेशा व्यक्ति की पहचान, उसकी विवशता और उसके सामाजिक दर्जे का प्रतीक बन जाती है। 'नौकर' शब्द स्वयं में ही उस मानसिकता को दर्शाता है जिसमें नौकरी करने वाला व्यक्ति स्वतंत्र नहीं रह जाता, बल्कि व्यवस्था का गुलाम बन जाता है। कमीज उस गुलामी की वर्दी बन जाती है जिसे पहनकर व्यक्ति रोज अपने कार्यालय जाता है और अपने स्वाभिमान को दबाकर जीवन चलाता है।इस प्रतीक के माध्यम से लेखक यह दिखाते हैं कि नौकरीपेशा व्यक्ति का जीवन एक तरह से बंधन में बंधा हुआ जीवन है। वह अपने मन की नहीं कर सकता,

उसे हर समय व्यवस्था और जिम्मेदारियों के अनुसार चलना पड़ता है।

मानसिक तनाव और अकेलापन-उपन्यास में नायक के भीतर का अकेलापन और मानसिक संघर्ष बहुत गहराई से उभरता है। वह बाहर से सामान्य दिखता है, लेकिन भीतर से वह टूटता रहता है। नौकरी की अनिश्चितता, घर की जरूरतें और जीवन के छोटे-छोटे अपमान उसे भीतर ही भीतर कमजोर बना देते हैं। लेखक ने इस मानसिक तनाव को बहुत शांत और संवेदनशील भाषा में प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास बताता है कि मध्यवर्गीय व्यक्ति की पीड़ा केवल आर्थिक नहीं होती, बल्कि मानसिक भी होती है। वह समाज के सामने अपने दुख प्रकट नहीं कर पाता, क्योंकि उसे अपनी "इज्जत" बचानी होती है।

मानवीय रिश्तों का चित्रण-"नौकर की कमीज" में पति-पत्नी के रिश्ते को भी बहुत वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। पत्नी की इच्छाएँ, उसके सपने और उसकी अपेक्षाएँ भी उपन्यास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पत्नी भी एक तरह से सामाजिक दबाव और जरूरतों के कारण पति पर अपेक्षाओं का भार डालती है। इससे दोनों के बीच प्रेम और संघर्ष दोनों साथ-साथ चलते हैं। यह उपन्यास दिखाता है कि गरीबी और आर्थिक दबाव रिश्तों को किस तरह प्रभावित करते हैं। यहाँ रिश्तों में कोई बनावटी आदर्श नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन जैसा तनाव, शिकायतें और समझौते मौजूद हैं। यही इस उपन्यास को और अधिक सच्चा और प्रभावी बनाता है।

सादगीपूर्ण भाषा और काव्यात्मक शैली-विनोद कुमार शुक्ल की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सादगी है। वे बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग नहीं करते, बल्कि साधारण शब्दों में गहरी बात कह जाते हैं। उनकी शैली में कविता जैसी कोमलता और संवेदना दिखाई देती है। वे छोटे-छोटे वाक्यों और मामूली घटनाओं के माध्यम से एक बड़ा भावनात्मक संसार रच देते हैं। उनकी भाषा में एक तरह का ठहराव है, जो पाठक को धीरे-धीरे कथा के भीतर ले जाता है। वे घटनाओं को तेजी से नहीं दौड़ाते, बल्कि उन्हें महसूस कराते हैं। यही कारण है कि पाठक उपन्यास को पढ़ते हुए अपने आसपास के जीवन को पहचानने लगता है।

समाज व्यवस्था पर मौन व्यंग्य-यह उपन्यास प्रत्यक्ष रूप से किसी राजनीतिक भाषण की तरह नहीं है, परंतु इसके भीतर व्यवस्था के प्रति एक गहरा व्यंग्य छिपा है। यह व्यंग्य मौन है, पर अत्यंत प्रभावशाली है। उपन्यास यह बताता है कि नौकरीपेशा वर्ग किस तरह अपनी स्वतंत्रता खो देता है। वह समाज में एक मशीन की तरह काम करता है, और उसकी व्यक्तिगत इच्छाएँ धीरे-धीरे मर जाती हैं। कवि-लेखक यह संकेत देता है कि यह व्यवस्था मनुष्य को इंसान नहीं रहने देती, बल्कि उसे "नौकर" बनाकर रखती है। इस प्रकार उपन्यास एक सामाजिक आलोचना भी बन जाता है।

उपन्यास का साहित्यिक महत्व-"नौकर की कमीज" हिंदी उपन्यास साहित्य में इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक नए प्रकार का उपन्यास है। इसमें न तो अत्यधिक नाटकीयता है और न ही बड़ी घटनाएँ। इसकी विशेषता यह है कि यह साधारण जीवन को केंद्र में रखकर एक बड़ी सच्चाई सामने लाता है। यह उपन्यास पाठक को यह सोचने पर मजबूर करता है कि आधुनिक समाज में नौकरी और आर्थिक दबाव मनुष्य को किस तरह अंदर से कमजोर कर देते हैं। यह उपन्यास समकालीन हिंदी साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है। इसमें जीवन की वास्तविकता को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष-अंततः कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास संघर्ष का चित्रण है। यह उपन्यास हमें यह समझाता है कि नौकरीपेशा जीवन केवल रोजी-रोटी का साधन नहीं, बल्कि वह एक मानसिक और सामाजिक बंधन भी बन जाता है। इसमें मध्यवर्गीय जीवन की विवशताओं, आर्थिक संकट, मानसिक तनाव और रिश्तों की जटिलता को अत्यंत मार्मिक और वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया गया है।इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि यह पाठक को अपने आसपास के समाज और जीवन की सच्चाई से जोड़ता है। "नौकर की कमीज" न केवल एक उपन्यास है, बल्कि यह आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदी का संवेदनशील दस्तावेज है।

"दीवार में एक खिड़की रहती थी"-हिंदी साहित्य के समकालीन उपन्यासकारों में विनोद कुमार शुक्ल का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। उनकी रचनाएँ बाहरी घटनाओं की भव्यता से अधिक भीतर के संसार, संवेदना, अकेलेपन और साधारण जीवन की असाधारण अनुभूतियों को प्रस्तुत करती हैं। उनका उपन्यास "दीवार में एक खिड़की रहती थी" इसी विशेषता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह उपन्यास न केवल कथा के स्तर पर अलग है, बल्कि इसकी भाषा, शैली और दृष्टि भी इसे समकालीन हिंदी उपन्यासों में एक अलग पहचान देती है। यह उपन्यास जीवन की साधारणता में छिपे गहरे अर्थों को उजागर करता है और पाठक को एक संवेदनशील, कल्पनाशील तथा आत्मचिंतन की दुनिया में ले जाता है।

उपन्यास की कथावस्तु-"दीवार में एक खिड़की रहती थी" की कथा किसी बड़े संघर्ष या नाटकीय घटनाक्रम पर आधारित नहीं है। इसकी कहानी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है और पात्रों के जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों, परिस्थितियों और मनोभावों को केंद्र में रखती है। इस उपन्यास में जीवन की मामूली घटनाएँ भी कथा का आधार बनती हैं। लेखक ने दिखाया है कि व्यक्ति के जीवन में रोजमर्रा की छोटी बातें भी कितनी बड़ी भावनात्मक और मानसिक हलचल पैदा कर सकती हैं।उपन्यास का कथानक मुख्य रूप से एक साधारण व्यक्ति और उसके परिवेश के इर्द-गिर्द घूमता है। उसका जीवन सीमित साधनों में चलता है, लेकिन उसके भीतर भावनाओं, कल्पनाओं और इच्छाओं का एक विस्तृत संसार है। यह उपन्यास मनुष्य के बाहरी जीवन से अधिक उसके भीतरी जीवन को सामने लाता है।

शीर्षक का प्रतीकात्मक अर्थ-इस उपन्यास का शीर्षक "दीवार में एक खिड़की रहती थी" अत्यंत प्रतीकात्मक है। दीवार जीवन की सीमाओं, बाधाओं और मजबूरियों का प्रतीक है, जबकि खिड़की आशा, संभावना और खुलापन दर्शाती है। जीवन में दीवारें तो बहुत होती हैं—गरीबी, जिम्मेदारियाँ, समाज की सीमाएँ, अकेलापन, दबाव—लेकिन उन्हीं दीवारों के बीच कहीं न कहीं एक खिड़की भी होती है जो मनुष्य को सांस लेने का अवसर देती है।खिड़की का अर्थ केवल बाहर देखने का साधन नहीं है, बल्कि यह कल्पना, उम्मीद और सपनों का द्वार भी बन जाती है। यह उपन्यास इस बात को स्पष्ट करता है कि मनुष्य कठिन परिस्थितियों में भी अपने भीतर आशा की एक छोटी सी जगह बना लेता है, जो उसे जीवित रखती है।

आंतरिक संवेदना और मनोवैज्ञानिक चित्रण-विनोद कुमार शुक्ल की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। इस उपन्यास में पात्रों के भीतर की भावनाएँ, उनकी सोच, उनकी चुप्पी, उनकी इच्छाएँ और उनकी असुरक्षाएँ बहुत सूक्ष्मता से उभरती हैं। उपन्यास में बाहरी घटनाएँ कम हैं, लेकिन भीतर का संघर्ष अत्यंत गहरा है।पात्र जीवन की कठिनाइयों से लड़ते हुए भी एक शांत स्वभाव में जीते

हैं। उनके दुख बड़े शब्दों में नहीं आते, बल्कि उनकी छोटी-छोटी आदतों, व्यवहार और सोच के माध्यम से व्यक्त होते हैं। यह उपन्यास पाठक को दिखाता है कि व्यक्ति का असली संघर्ष उसके भीतर चलता है, जिसे समाज अक्सर समझ नहीं पाता।

साधारण जीवन का असाधारण चित्रण-यह उपन्यास साधारण जीवन के अनुभवों को असाधारण बना देता है। विनोद कुमार शुक्ल का लेखन यह सिद्ध करता है कि साहित्य केवल बड़े विषयों और घटनाओं का नाम नहीं है, बल्कि सामान्य जीवन की छोटी बातें भी साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा हो सकती हैं। लेखक रोजमर्रा की वस्तुओं, घर, दीवार, खिड़की, पड़ोस, रिश्तों और मौन संवादों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वे पाठक के मन में गहरी छाप छोड़ते हैं।

इस उपन्यास में साधारणता ही सौंदर्य बन जाती है। यही कारण है कि यह उपन्यास पाठक को जीवन के प्रति एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

भाषा और शैली की विशेषता-विनोद कुमार शुक्ल की भाषा अत्यंत सरल, सहज और काव्यात्मक है। उनकी शैली में एक प्रकार की कविता जैसी लय होती है। वे बहुत छोटे वाक्यों में बड़ी बात कह देते हैं। उनकी भाषा में भारीपन नहीं है, बल्कि वह हल्की, कोमल और भीतर उतरने वाली है।उपन्यास की शैली धीमी है, पर यह धीमापन ही इसकी सुंदरता है। लेखक घटनाओं को जल्दी नहीं दौड़ाते, बल्कि पाठक को हर दृश्य, हर भावना और हर क्षण को महसूस करने का अवसर देते हैं। उनकी भाषा पाठक को कथा से जोड़ती है और उसे एक अलग प्रकार की संवेदनशीलता प्रदान करती है।

अकेलापन और मानवीय रिश्ते-इस उपन्यास में अकेलापन एक महत्वपूर्ण तत्व है। पात्र समाज के बीच रहते हुए भी भीतर से अकेला महसूस करता है। उसके रिश्ते, बातचीत और जीवन के अनुभव उसके अकेलेपन को कम नहीं कर पाते। लेकिन यह अकेलापन निराशा का नहीं, बल्कि एक तरह का आत्मचिंतन और संवेदना का अकेलापन है।

मानवीय रिश्तों का चित्रण भी इस उपन्यास में अत्यंत वास्तविक है। रिश्तों में प्रेम है, दूरी है, चुप्पी है, और एक-दूसरे को समझने की कोशिश भी है। लेखक ने रिश्तों को आदर्श रूप में नहीं दिखाया, बल्कि जीवन की तरह जटिल और वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया है।

यथार्थ और कल्पना का मेल-इस उपन्यास में यथार्थ और कल्पना का अद्भुत संगम मिलता है। पात्र वास्तविक जीवन जीते हैं, लेकिन उनकी कल्पना उन्हें एक नई दुनिया में ले जाती है। यही कल्पना उनके जीवन में खिड़की की तरह है—जो उन्हें दीवारों के बीच भी खुलापन देती है। विनोद कुमार शुक्ल का लेखन इस बात को प्रमाणित करता है कि कल्पना केवल पलायन नहीं है, बल्कि वह मनुष्य को जीने की शक्ति भी देती है।

समाज और व्यवस्था पर मौन टिप्पणी-"दीवार में एक खिड़की रहती थी" में समाज और व्यवस्था की आलोचना प्रत्यक्ष रूप में नहीं है, लेकिन लेखक ने मौन रूप से सामाजिक परिस्थितियों पर प्रश्न उठाए हैं। गरीबी, सीमित साधन, जीवन की मजबूरी और मनुष्य की विवशता—ये सब उपन्यास में पृष्ठभूमि के रूप में मौजूद हैं। यह उपन्यास बिना भाषण दिए ही पाठक को सोचने पर मजबूर करता है कि समाज में साधारण व्यक्ति का जीवन कितना संघर्षपूर्ण है।

उपन्यास का साहित्यिक महत्व-यह उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य में इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह परंपरागत कथानक से हटकर है। इसमें घटनाओं की तेजी नहीं, बल्कि अनुभूतियों की गहराई है। यह उपन्यास पाठक को भीतर की दुनिया में झाँकने का अवसर देता है। यह जीवन को देखने का एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसमें साधारण चीजें भी महत्वपूर्ण बन जाती हैं। यह उपन्यास समकालीन हिंदी साहित्य में संवेदना, प्रतीकात्मकता और काव्यात्मक गद्य का एक सुंदर उदाहरण माना जाता है।

निष्कर्ष-अंततः कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास "दीवार में एक खिड़की रहती थी" एक संवेदनशील, प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक रचना है। यह उपन्यास जीवन की सीमाओं (दीवार) और उम्मीद की संभावना (खिड़की) को बहुत गहराई से प्रस्तुत करता है। यह साधारण मनुष्य के भीतर की दुनिया को उजागर करता है और बताता है कि कठिन परिस्थितियों में भी मनुष्य अपनी कल्पना और आशा के सहारे जीवित रहता है।यह उपन्यास पाठक को यह संदेश देता है कि जीवन चाहे जितना सीमित और कठिन हो, उसके भीतर कहीं न कहीं एक खिड़की हमेशा मौजूद रहती है—जो हमें आशा और संभावनाओं की ओर देखने की शक्ति देती है।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

From Equality to Excellence: The Role of Women in Transforming Organizational Culture – A Study of Varanasi District.

Prof (Dr.) Vandana Pandey
Department of Commerce.
Harishchandra P.G. College Varanasi.
Email: vandana21076@gmail.com

Abstract
This research paper examines the transformative role of women in shaping organizational culture with a specific focus on educational institutions in Varanasi district. Women educators, administrators, and academic leaders play an essential role in cultivating a culture of inclusiveness, empathy, academic excellence, and ethical functioning. The study analyses how women's participation, leadership approaches, and gender-inclusive practices influence organizational culture across colleges and universities in Varanasi. Using descriptive research design and data collected from 150 women faculty members and administrators across higher educational institutions in Varanasi, the study reveals that women significantly contribute to enhanced collaboration, transparency, and student-centred practices. Findings demonstrate a strong positive relationship between women's empowerment, workplace equality, institutional performance, and cultural transformation. The paper concludes that strengthening women's leadership in educational institutions is crucial for achieving excellence in academic governance and organizational sustainability.

Keywords-Women Empowerment, Organizational Culture, Gender Equality, Educational Institutions, Varanasi District, Women Leadership, Inclusivity, Academic Excellence.

1. Introduction-Organizational culture within educational institutions determines the quality of teaching, governance, discipline, and academic excellence. In India, and particularly in culturally rich regions like Varanasi, women have become central contributors to shaping academic environments. Colleges and universities in Varanasi have witnessed a gradual rise in women's participation in teaching, research, administration, and student mentoring.

Women educators often bring collaborative, compassionate, and value-driven approaches that strengthen institutional culture. Their leadership promotes inclusive learning, emotional support, fairness, and ethical decision-making. This transition—from simply ensuring women's equality to utilizing their strengths for institutional excellence—forms the basis of this study.

The research explores how women in Varanasi's educational institutions shape organizational culture, improve student outcomes, and contribute to transforming institutional practices.

2. Review of Literature

2.1 Women in Education Sector-Global and Indian studies show that women educators create supportive and nurturing learning spaces. UNESCO reports that women teachers encourage empathy, student engagement, and collaborative learning.

2.2 Gender Diversity in Academic Institutions-Institutions with gender-balanced faculties experience improved decision-making, ethical governance, and academic innovation. Studies suggest that women's involvement increases the credibility and trustworthiness of academic systems.

2.3 Transformational Leadership of Women-Women leaders in education emphasize mentorship, transparency, and collective problem solving. Research by Eagly (2019) highlights that transformational leadership—commonly practiced by women—significantly enhances institutional culture.

2.4 Organizational Culture in Indian Educational Institutions-Indian studies show that women educators drive cultural change by promoting value-based education, emotional well-being, and effective communication.

3. Research Objectives-To examine the role of women in transforming organizational culture in educational institutions of Varanasi.

To assess how gender-inclusive policies influence women employees' satisfaction and performance.

To analyze the relationship between women's participation and institutional excellence.

To provide recommendations for strengthening women's leadership in Varanasi educational institutions.

4. Research Questions-How do women contribute to organizational culture in educational institutions of Varanasi?

What is the impact of gender equality practices on faculty satisfaction and performance?

How does women's leadership affect institutional growth and culture?

What strategies can enhance women's excellence and

leadership in academic institutions?

5. Research Methodology

5.1 Research Design : The study based on Descriptive and analytical research design.

5.2 Area of Study : Higher educational institutions in **Varanasi district**, including government colleges, private colleges, and universities.

5.3 Sample Size: For the study purpose 150 respondents have been included and under this Women faculty members, Academic administrators, Department heads, Supporting staff have used as sample.

For the study purpose purposive Sampling Technique has used.. Structured questionnaire & Interviews with faculty and administrators have used as Tools for Data Collection.

6. Data Analysis and Interpretation

6.1 Profile of Respondents

Category	Percentage
1.) Women Faculty (Assistant Professors)	55%
2.) Associate Professors	25%
3.) Professors	10%
4.) Administrators/Support Staff	10%

Majority respondents are faculty members actively involved in teaching and administrative roles.

6.2 Women's Contribution to Organizational Culture in Varanasi Institutions

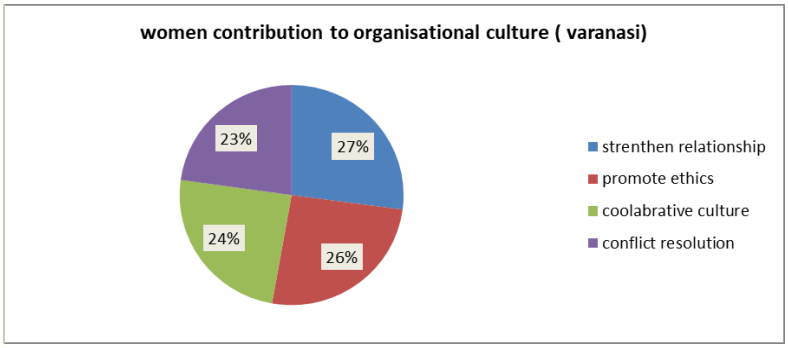

Survey findings:

- **82%** believe women strengthen student–teacher relationships.
- **78%** agree women promote ethical and disciplined academic environments.
- **74%** state women encourage collaborative work culture.
- **69%** mention women contribute to conflict resolution due to empathetic communication.

Interpretation:-Women significantly influence institutional culture through emotional intelligence, ethical practices, and inclusive teaching.

6.3 Role of Gender-Inclusive Policies

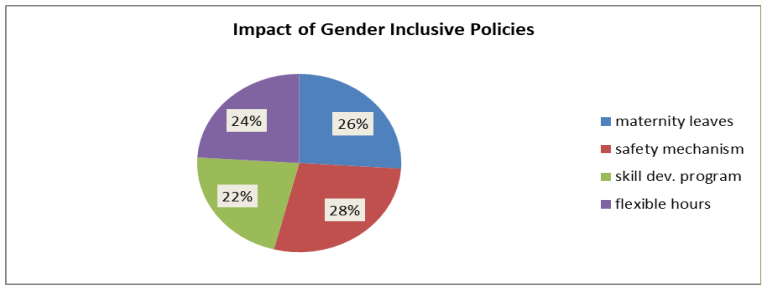

Respondents rated the impact of various policies:

- Maternity leave policies – **Highly impactful (76%)**
- Safety and grievance mechanisms – **Very impactful (81%)**
- Flexible working hours – **Moderately impactful (68%)**
- Skill development programs – **Needed improvement (64%)**

Interpretation:

Institutions with strong gender-inclusive policies experience higher satisfaction and reduced turnover among women faculty.

6.4 Impact of Women's Leadership on Institutional Excellence:

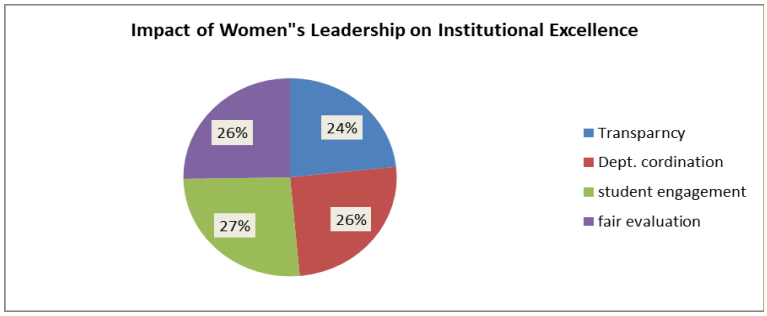

Survey finding :

- **72%** believe women leaders promote transparent academic governance.
- **79%** state women ensure fair student evaluation.
- **83%** agree women leaders improve communication and student engagement.
- **70%** mention women leaders improve departmental coordination.

Interpretation:

Women's leadership ensures ethical, transparent, and student-centered institutional functioning.

A positive correlation (r = **0.76**) was found between:

- Women's participation and institutional performance
- Women's leadership and organizational cultural improvement

This indicates that higher women representation leads to stronger academic culture and better outcomes.

A positive correlation (**r = 0.76**) was found between:

Women's participation and institutional performance, and
Women's leadership and organizational cultural improvement.
The value **0.76** indicates a **strong and meaningful positive relationship**. This means that as women's involvement in teaching, administration, and leadership increases, the overall performance of educational institutions also improves.
Similarly, institutions with higher representation of women leaders show noticeably better workplace culture, including improved transparency, communication, teamwork, and ethical governance.
Thus, the correlation value demonstrates that:
Higher women representation
Greater involvement in decision-making
Stronger leadership roles
→ **Directly contribute to a healthier organizational culture and better academic outcomes in Varanasi's educational institutions.**

7. Findings-

1.Women educators significantly improve institutional culture through empathy, fairness, and collaborative practices.
2.Gender-inclusive policies in Varanasi institutions play a crucial role in women's empowerment.
3.Women's leadership positively influences academic standards, ethical governance, and student satisfaction.
4.Institutions with higher women participation perform better in communication, discipline, and student mentoring.
5.Women are strong agents of cultural transformation in Varanasi educational institutions.

8. Discussion

The study highlights that women transform institutional culture not only through formal roles but also through informal mentoring, emotional support, and value-based interventions. In Varanasi, where traditional expectations and cultural norms influence women's professional engagement, the growth of women educators has created a shift in institutional climate. Women exhibit leadership qualities such as patience, empathy, discipline, accountability, and inclusivity, which are essential for academic environments. These traits help institutions create a balanced and ethical learning ecosystem.

9. Recommendations

1.Introduce leadership development programs for women faculty in Varanasi.
2.Strengthen gender-sensitive infrastructure such as safety units, childcare support, and flexible working.
3.Increase women's representation in decision-making bodies.
4.Conduct gender sensitization workshops for faculty and students.
5.Implement mentorship programs led by senior women educators.
6.Promote research opportunities and academic recognition for women faculty.

10. Conclusion

The study concludes that women play a transformative role in shaping organizational culture within Varanasi's educational institutions. Their contribution enhances academic quality, institutional ethics, and student development. Encouraging women's excellence and leadership is essential for institutional growth and for creating inclusive, innovative, and value-based academic environments.

****

References :

1. Alice H. Eagly, & Linda L. Carli. (2007). *Through the labyrinth: The truth about how women become leaders*. Harvard Business School Press.
2. Amartya Sen. (2001). The many faces of gender inequality. *The New Republic, 226*(17), 35–39.
3. Confederation of Indian Industry. (2020). *Women in leadership roles in India: Challenges and opportunities*. CII Research Report.
4. Edgar H. Schein. (2017). *Organizational culture and leadership* (5th ed.). Wiley.
5. Geert Hofstede, Gert Jan Hofstede, & Michael Minkov. (2010). *Cultures and organizations: Software of the mind* (3rd ed.). McGraw-Hill.
6. McKinsey & Company. (2022). *Women in the workplace report*. https://www.mckinsey.com
7. Ministry of Women and Child Development. (2016). *National policy for women 2016 (Draft)*. Government of India.
8. Naila Kabeer. (2005). Gender equality and women's empowerment: A critical analysis of the third Millennium Development Goal. *Gender & Development, 13*(1), 13–24.
9. National Sample Survey Office. (2021). *Periodic labour force survey report*. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
10. NITI Aayog. (2022). *Women entrepreneurship platform: Annual report*. Government of India.
11. Reserve Bank of India. (2022). *Handbook of statistics on the Indian economy*. RBI Publications.
12. Rosabeth Moss Kanter. (1977). *Men and women of the corporation*. Basic Books.
13. Sheryl Sandberg. (2013). *Lean in: Women, work, and the will to lead*. Alfred A. Knopf.
14. United Nations. (2022). *Gender equality and women's empowerment in leadership*. United Nations Publications.
15. World Economic Forum. (2023). *Global gender gap report 2023*. https://www.weforum.org

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

सिनेमा, नाटक और जनसंस्कृति

डा. सुधामणि.एस.
सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
सरकारी रामनारायण चेल्लाराम वाणिज्य तथा प्रबंध महाविद्यालय,रेस कोर्स रोड, बेंगळूरु. 560001
मो- 8971843352 ईमेल आईडी: sudhamani905@gmail.com

प्रस्तावना : सिनेमा और नाटक भारतीय जनसंस्कृति के जीवनस्तंभ है। सामजिक. यथार्थ,परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को दर्शाते है। सिनेमा और नाटक भारतीय जनसंस्कृति के जीवंत माध्यम है जो सदियों से सामाजिक चेतना की नींव रखी, सिनेमा ने उसे तकनीकी विस्तार दिया, जो समाज का आइना बनकर मनोरंजन के साथ-साथ परिवर्तन के सशक्त साधन के रूप में स्थापित है।भारतीय जनसंस्कृति के निर्माण और विकास में सिनेमा तथा नाटक की ऐतिहासिक एवं समकालीन भूमिका महत्वपूर्ण है। नाटक ने सामाजिक चेतना की नींव रखी और सिनेमा ने उसे तकनीकी विस्तार दिया

बीजक शब्द : जनसंस्कृति, नाटक और रंगमंच, सिनेमा, चलचित्र, सामाजिक सिनेमा

सिनेमा की परिभाषा :भाषा की ही तरह, सिनेमा एक ऐसा व्यापक तत्व है जो किसी विशिष्ट समय और स्थान में मानव होने के अर्थ को समाहित करता है। यह कहते है कि यह दुनिया के प्रति हमारे अनुभव को प्रभावित करता है , चीजों को समझने में हमारी मदद करता है, तथा दुनिया को मानवता का सुंदर रूप देने में मदद करता है।

सिनेमा चलते हुए चित्रों के माध्यम से कहानियों, भावनाओं और विचारों को व्यक्त करनेवाली एक लोकप्रिय कला, तकनीकी और व्यवसाय है। इसे " चलचित्र " भी कहते है। यह साहित्य, संगीत, न्रुत्य और अभिनय का मिश्रण है। यह दर्शकों को मनोरंजन करने के साथ-साथ समाज का दर्पण बनकर वास्तविकता का परिचय कराता है तथा सपनों को साकार करने का माध्यम भी कह सकते है।

सिनेमा मनोरंजन, शिक्षा और सामाजिक, जागरूकता का एक शक्तिशाली , माध्यम है जो समाज का दर्पण बनकर संस्क्रुती को सुरक्षित करने और मानवीय द्रुष्टिकोण को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा रचनात्मका को प्रेरित करता है, लोगों को जोडता है।

भारत का रंगमंच- भारत में रंगमंच की उत्पत्ति का इतिहास अत्यंत विवादास्पद है। कुछ विद्वानों के अनुसार, भारतीय रंगमंच का उद्भव 15वीं शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ था। ऋग्वेद जैसे वैदिक ग्रंथ यज्ञ समारोहों के दौरान नाट्य प्रस्तुतियों के प्रमाण प्रदान करते हैं । इन ग्रंथों में वर्णित संवाद एक व्यक्ति के एकालाप से लेकर तीन व्यक्तियों के संवाद तक हैं, जैसे कि इंद्र, इंद्रानी और वृषकापी के बीच का संवाद। ये संवाद न केवल धार्मिक संदर्भ में हैं, बल्कि धर्मनिरपेक्ष भी हैं।

नाट्यशास्त्र, जिसे 200 ईसा पूर्व का माना जाता है, हालांकि विभिन्न शिक्षकों का कथन है। संस्कृत नाटक के सबसे पुराने जीवित अंश पहली शताब्दी ईस्वी से मिलते हैं संस्कृत रंगमंच के प्रमाण का प्रमुख स्रोत नाट्यशास्त्र है , जो एक ग्रंथ है जिसकी रचना तिथि अनिश्चित है (अनुमान 200 ईसा पूर्व से 200 ईस्वी तक हैं) और जिसका लेखन भरत मुनि को समर्पित है । यह ग्रंथ प्राचीन विश्व में नाट्यकला का सबसे संपूर्ण ग्रंथ है। सातवीं शताब्दी के अंत तक, रंगमंच कला और शास्त्रीय संस्कृत नाटकों के प्रति सराहना को एक परिष्कृत विश्वदृष्टि का अनिवार्य हिस्सा माना जाता था। कालिदास को भारत का सर्वोत्कृष्ट संस्कृत नाटककार माना जाता है , जिन्होंने लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी से पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के बीच रचनाएँ कीं। अगले महान भारतीय नाटककार भवभूति (लगभग 7वीं शताब्दी ईस्वी) थे। उन्होंने निम्नलिखित तीन नाटक लिखे: मालती-माधव , महावीरचरित और उत्तर रामचरित । इन तीनों में से अंतिम दो नाटकों में रामायण महाकाव्य का पूर्ण सार समाहित है। शक्तिशाली भारतीय सम्राट हर्ष (606-648) को तीन नाटकों की रचना का श्रेय दिया जाता है: हास्य नाटक रत्नावली , प्रियदर्शिका और बौद्ध नाटक नागानंद ।कुछ विद्वानों के अनुसार, भारत के शास्त्रीय रंगमंच का सबसे प्रारंभिक रूप संस्कृत रंगमंच था, जो ग्रीक और रोमन रंगमंच के विकास के बाद अस्तित्व में आया । आक्रमणकारी सेना ने ग्रीक शैली के नाटक मंचित किए और भारतीयों ने इस प्रदर्शन कला को अपनाया।

मध्यकालीन भारत में रंगमंच -भारत की कलात्मक पहचान उसकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टियों में गहराई से निहित है। इसी कारण भारतीय सांस्कृतिक प्रथाओं को समझना आवश्यक है क्योंकि वे इस समय के कलाकारों और प्रदर्शनों से सीधे संबंधित हैं। नृत्य, संगीत और पाठ सहित प्रदर्शन भारतीय संस्कृति के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति करती हैं। भरत नाट्यशास्त्र, जिसे शास्त्र भी कहा जाता है, वेशभूषा, हाव-भाव, शरीर की मुद्राओं और मेकअप को सूचीबद्ध करने के लिए लिखा गया था। इसमें अनुपयुक्त समझे जाने वाले कथानकों की सूची भी शामिल है और यह सबसे पूर्ण दस्तावेज भी है। अधिकांश भारतीय रंगमंच में कोई दृश्यावली नहीं होती थी। आमतौर पर पीतल के दीपक जैसे कुछ सहायक उपकरण होते थे।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में रंगमंच- ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत, आधुनिक भारतीय रंगमंच की शुरुआत बेलगाछिया में एक रंगमंच की स्थापना के साथ हुई । इस काल में रचित और मंचित शुरुआती नाटकों में से एक माइकल मधुसूदन दत्त द्वारा लिखित 'बुरो शालीखेर घरे रोआ' (1860) था, जो बंगाली भाषा में था । लगभग उसी समय, दीनबंधु मित्रा द्वारा लिखित बंगाली नाटक ' नील दर्पण' (1858-59, पहला व्यावसायिक मंचन 1872 में गिरीश चंद्र घोष द्वारा कलकत्ता के राष्ट्रीय रंगमंच में) ने ग्रामीण बंगाल में नील की खेती की भयावहता और त्रासदी को दर्शाने के लिए प्रशंसा और विवाद दोनों को आकर्षित किया और नील विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । रवींद्रनाथ टैगोर एक अग्रणी आधुनिक नाटककार थे, जिन्होंने राष्ट्रवाद, पहचान, अध्यात्मवाद और भौतिक लालच जैसे विषयों की पड़ताल और उन पर प्रश्न उठाने वाले नाटक लिखे।

जनसंस्कृति' (Janasamskriti) का अर्थ है आम जनता की संस्कृति, जो लोक कलाओं, परंपराओं, और सामूहिक जीवन से जुड़ी होती है। यह अभिजात वर्ग के बजाय साधारण लोगों के विचारों, गीतों और नाटकों को प्रदर्शित करती है। यह शब्द अक्सर भारतीय लोक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों और वामपंथी या जन-केंद्रित सांस्कृतिक आंदोलनों के संदर्भ में उपयोग किया जाता है। सांस्कृतिक मूल्यों और विचारों का एक समूह जो किसी आबादी के सामान्य संपर्क से उत्पन्न होता है। वही सांस्कृतिक गतिविधियाँ, संचार माध्यम, संगीत और कला आदि। जन संस्कृति यह आधुनिक संचार माध्यमों के माध्यम से ही संभव हो पाता है। संस्कृति व्यक्तियों में संचारित होती है, न कि लोगों की दैनिक बातचीत से उत्पन्न होती है। जन संस्कृति व्यक्तिवाद के उदारवादी मूल्यों को पुन: उत्पन्न करने और एक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति रखती है।

जनसंस्कृति के मुख्य पहलू: लोक और सामुदायिक भावना: इसमें लोकगीत, नृत्य, नाटकों (जैसे पारसी थिएटर) और पारंपरिक कलाओं को शामिल किया जाता है, जो समुदाय की पहचान बताते हैं।

कला का जन-माध्यम: जनसंस्कृति फिल्मों और दृश्यों के माध्यम से लोक कथाओं को एक लोकप्रिय माध्यम के रूप में स्थापित करती है।

सांस्कृतिक आंदोलन: यह शब्द केरल में 'जनसंस्कृति' जैसे मंचों के लिए भी उपयोग होता है जो कला और सांस्कृतिक कार्यक्रमों (सरगोत्सवम) को बढ़ावा देते हैं।

भारतीय दृष्टिकोण: यह जनजातीय और स्थानीय परंपराओं (जैसे 'मध्यवर्ती भारत: जनसंस्कृति का भारतीय दृष्टिकोण') को शामिल करते हुए भारतीय समाज की विविधता को उजागर करती है।

जन संस्कृति (Mass Culture) उन सांस्कृतिक मूल्यों, विश्वासों और वस्तुओं का समूह है, जिन्हें आधुनिक जनसंचार माध्यमों (मीडिया, इंटरनेट, फिल्म) के जरिए समाज के एक बड़े हिस्से द्वारा अपनाया और उपभोग किया जाता है। यह तकनीकी विकास और उपभोक्तावाद से प्रेरित है, जो स्थानीय लोक परंपराओं के विपरीत, व्यापक स्तर पर मानकीकृत (standardized) मनोरंजन और जीवनशैली को बढ़ावा देती है।

जन संस्कृति की मुख्य विशेषताएं:

व्यापक प्रसार और खपत: इसका उत्पादन बड़ी कंपनियों द्वारा लाभ कमाने के लिए किया जाता है और यह मीडिया के माध्यम से जनता तक पहुँचती है।

मानकीकरण : संस्कृति के विभिन्न रूपों (जैसे- संगीत, फिल्में) को सरल और एकसमान बनाया जाता है ताकि वे अधिक-से-अधिक लोगों को पसंद आएं।

उपभोक्तावाद: यह विज्ञापनों और फैशन के माध्यम से लोगों को उपभोग के लिए प्रेरित करती है।

लोक संस्कृति से भिन्न: यह पारंपरिक, स्थानीय लोक संस्कृति के विपरीत है, जिसमें समुदाय की अपनी अनूठी परंपराएं होती हैं।

आधुनिकता का उत्पाद: यह शहरीकरण और औद्योगीकरण के साथ विकसित हुई, जो पूरे विश्व में साझा अनुभवों को आकार देती है।

निष्कर्ष : सिनेमा और नाटक को केवल मनोरंजन न मानकर, समाज के दर्पण और परिवर्तन के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित किया गया है। सिनेमा, नाटक या रंगमंच तथा जनसंस्कृती तो समाज को उत्तम मार्गदर्शन दिया। ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक तत्वों का प्रतिपादन भी किया है।

****

संदर्भ सूची:

1)https://www.google.com/search?q=cinema+in+hindi&rlz=1C1GIGM_enIN973IN973&oq=&aqs=chrome.0.35i39i362l8.3774279j0j15&sourceid=chrome&ie=UTF-8
2) samskriti+in+hindi&sca_esv=881c8779ce9071b0&rlz=1C1GIGM_enIN973IN973&biw=1366&bih=580&sxsrf=ANbL-n6mjRvsjezMnZmLPMM3DqYLDpeUgQ%3A1774451489723&ei=IfvDabfoK76
3)https://www.google.com/search?q=%E0%A4%9C%E0%A4%A8+%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF+%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE+%E0%A4%B9%E0%A5%88&rlz=1C1GIGM_enIN973IN973&oq=janasamskruti+ki+paribhaashaa+in+hindi&aqs=chrome.1.69i57j0i512i546l3j0i751j0i512i546.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

अक्टूबर - दिसंबर - 2025

https://shodhutkarsh.com

त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - 'शोध उत्कर्ष'